कन थोरे कांकर घने

दर्द दीवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।
एक अकीदा लौ रहे, ऐसे मन धीरा।।
प्रेम पियाला पीवते, बिसरे सब साथी।
आठ पहर यों झूमत, मैगल माता हाथी।।
उनकी नजर न आवते, कोई राजा-रंक।
बंधन तोड़े मोह के, फिरते निहसंक।।
साहेब मिल साहेब भए, कुछ रही न तमाई।
कहैं मलूक तिस घर गए, जंह पवन न जाई।।
आपा मेटि न हरि भजे, तेई नर डूबे।।
हरि का मर्म न पाइया, कारन का ऊबे।
करें भरोसा पुत्र का, साहब बिसराया।
बूड़ गए तरबोर को, कहुं खोज न पाया।।
साध मंडली बैठिके, मूढ जाति बखानी
हम बड़ करि मुए, बूड़े बिना पानी।।
तबके बांधि तेई नर, अजहूं नहिं छूटे।
पकरि पकरि भलि भांति से, जमपूतन लूटे।।
काम को सब त्यागि के, जो रामहिं गावै।
दास मलूका यों कहै, तेहि अलख लखावै।।

बाबा मलूकदास--यह नाम ही मेरी हृदय-वीणा को झंकृत कर जाता है। जैसे अचानक वसंत आ जाए! जैसे हजारों फूल अचानक झर जाए!

नानक से मैं प्रभावित हूं; कबीर से चकित हूं; बाबा मलूकदास से मस्त। ऐसे शराब में डूबे हुए वचन किसी और दूसरे संत के नहीं है।

नानक में धर्म का सारसूत्र है, पर रूखा-सूखा। कबीर में अधर्म को चुनौती है--बड़ी क्रांतिकारी, बड़ी विद्रोही। मलूक में धर्म की मस्ती है; धर्म का परमहंस रूप; धर्म को जिसने पीया है, वह कैसा होगा। न तो धर्म के सारतत्त्व को कहने की बहुत चिंता है, न अधर्म से लड़ने का कोई आग्रह है। धर्म की शराब जिसने पी है, उसके जीवन में कैसी मस्ती की तरंग होगी, उस तरंग से कैसे गीत फूट पड़ेंगे, उस तरंग से कैसे फूल झरेंगे, वैसे सरल अलमस्त फकीर का दिग्दर्शन होगा मलूक में।

झिर-झिर कर झरे फूल
 बरस गया हरसिंगार।
मेघ ये बरसते हैं
बूंद-बूंद रिसते हैं
 सजल मेघ बनकर सखी

बिखर गया हरसिंगार।
दूर-दूर छोरों तक
महंमे दे गंध दान
बिथुर गया हरसिंगार।
फूलों की अंजुली भर
कन-कन को सुरभित कर
बन कर सखी वीतराग
निखर गया हरसिंगार।

जैसे वृक्ष फूलों में झर जाता है, ऐसे बाबा मलूकदास अपने वचनों में झरे हैं। न किसी का समर्थन है, न किसी का विरोध है। जो भीतर भर गया है, उसका सहज प्रवाह है। जिन्हें मस्त होना है; जिन्हें डूबना है; जिन्हें न तो धर्म की कोई तार्किक व्याख्या करना है, न अधर्म के साथ कोई संघर्ष करना है; जिन्हें उस अपने भीतर पड़ी वीणा के तारों को झंकृत कर लेना है, जिसके झंकृत हुए बिना न तो सत्य को कोई जानता है और न असत्य से कोई संघर्ष संभव है।

मलूक वे ज्यादा सुंदर सरोवर और कहीं न मिलेगा। जिन्हें प्यास है और जो प्यास को बुझाने को आतुर है, और जल के संबंध में विवेचना की जिन्हें चिंता नहीं है; जो कहते हैं: हम प्यासे हैं और हमें प्रयोजन नहीं कि जल की व्याख्या क्या है, हम जल चाहते हैं...।

और प्यास मिटाने का जला को व्याख्या थोड़े ही समझनी पड़ती है। कितना ही तुम जान लो कि जल कैसे बनता है; कितना ही कोई समझा दे कि ऑक्सीजन और उदजन से मिलकर बनता है; तुम्हारे हाथ में सूत्र दे दे "एच टू ओ' का कि यह रहा जल का सूत्र--तो भी प्यास तो नहीं बुझती। प्यास तो जल से बुझती है। और प्यास बुझाने के लिए, जल कैसे निर्मित हुआ है, वह जानना तो जरूरी ही नहीं है। प्यास बुझाने के लिए तो झुकना और जल का अंजुली में भर लेना जरूरी है।

मलूक वैसे सरोवर हैं; तुम अगर झुके, तो तृप्त हो कर उठोगे। तुम अगर राजी हुए और तुम हृदय के द्वार खोले, तो मलूक की तरंगें तुम्हें झंकृत कर जायेंगी; तुम नाच उठोगे। उस नाच में ही रूपांतरण है। तुम्हारे भीतर भी गीत का आविर्भाव होगा और उस गीत के जन्म में ही परमात्मा है।

शेख ने काबा, बरहमन ने दैर
दर-ए-मैखाना हमने ताका है।

मौलवी है, वह काबा की तरफ देख रहा है। ब्राह्मण है, वह मंदिर की तरफ देख रहा है, काशी की तरफ देख रहा है। "देर-ए-मैखाना हमने ताका है'। लेकिन जो मस्त हैं, वे मधुशाला की तरफ देखते हैं। परमात्मा उनके लिए न काबा है, न काशी। परमात्मा उनके लिए मधुशाला है।

मलूकदास पियक्कड़ हैं। उनके शब्द-शब्द में शराब है, उनके शब्द-शब्द में रस है; अगर तुम डूबे तो उबर जाओगे। तो समझने की चेष्टा कम करना, पीने की चेष्टा ज्यादा करना। बुद्धि से संबंध मत जोड़ना। मलूकदास का बुद्धि से कुछ लेना-देना नहीं है। सरल बालक की भांति उनके वचन हैं।

उनका एक ही वचन लोगों का पता है, शेष वचनों का कोई स्मरण नहीं है। वह वचन बहुत प्रसिद्ध हो गया है उसकी बड़ी गलत व्याख्या हो गई।

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।

दास मलूका कहि गया, सबके दाता राम।।

यह खूब प्रसिद्ध हुआ--गलत कारणों से प्रसिद्ध हुआ। आलसियों ने प्रसिद्ध कर दिया। जिन्हें भी काम से बचना था, उन्हें इसमें आड़ मिल गई। आदमी बड़ा बेईमान है। मलूक का अर्थ कुछ और ही था। मलूक यह नहीं कह रहे हैं कि कुछ न करो। यह तो कह ही नहीं सकते हैं। मलूक यह कह रहे हैं कि परमात्मा को करने दो--तुम न करो।

अजगर करै न चाकरी--सच है। किसने अजगर को नौकरी करते देखा? लेकिन अजगर भी सतत काम में लगा रहता है। पंछी करै न काम--सच है। पंछी दफ्तर में क्लर्की नहीं करते, न मजिस्ट्रेट होते, न स्कूलों में मास्टरी करते, न दुकान चलाते हैं। लेकिन काम में तो चौबीस घंटे लगे रहते हैं। सुबह सूरज निकला नहीं कि पंछी काम पर निकले नहीं। सांझ सूरज ढलेगा, तब काम रुकेगा। अर्जित करेंगे दिन भर, तब रात विश्राम करेंगे।

काम तो विराट चलता है। काम तो छोटी-छोटी चींटी भी करती है। काम से यहां कोई भी खाली नहीं है। फिर क्यों कहा होगा मलूक ने "अजगर करै न चाकरी, पंछी करै काम'? मलूक का अर्थ है: इस काम में कहीं कर्ता का भाव नहीं है; "मैं कर रहा हूं,' ऐसी कोई धारणा नहीं है। जो परमात्मा कराये! जिहि विधि राखै रास! जो करा लेता है, वही कर रहे हैं। करने वाला वह है, हम सिर्फ उपकरण मात्र है।

दास मलूका कहि गया, सबके दाता राम।

तो न तो हम कर्ता हैं, न हम भोक्ता है। न हम कर्ता हैं और न हम करने में सफल या असफल हो सकते हैं। वही करता है--वही हो सफल, वही हो असफल। ऐसी जिसकी जीवन-दृष्टि हो, उसके जीव में तनाव न रह जायेगा, चिंता न रह जायेगी।

यह सूत्र तनाव को मिटाने का सबसे बड़ा सूत्र है। यह सूत्र काफी है--मनुष्य के जीवन से सारी चिंता छीन लेने के लिए। चिंता ही क्या है? चिंता एक ही है कि कहीं मैं न हार जाऊं। चिंता एक ही हैं कि कहीं और कोई न जीत जाए। चिंता एक ही हैं कि मैं जी पाऊंगा पा नहीं? चिंता एक ही है कि कोई भूल-चूक न हो जाए। चिंता एक ही है जिस मंजिल पर निकला हूं, वह मुझे मिलकर रहे।

जिसने समझा। "सबके दाता रात', उसकी सारी चिंता गई। अहंकार गया, तो चिंता गई। कर्ता का भाव गया, तो बेचैनी गई। फिर चैन ही चैन है। फिर असफलता में भी सफलता

है; निर्धनता में भी धन है। फिर मृत्यु में भी महाजीवन है। और अभी तो सफलता में भी असफलता ही हाथ लगती है।

तुमने देखा नहीं। सफल आदमी किसी बुरी तरह असफल हो जाता है! सफलता के शिखर पर पहुंच कर कैसा उदास हो जाता है! सफलता तो मिल गई, और क्या मिला? सफलता तो हाथ आ गई, सारा जीवन हाथ से निकल गया। और सफलता बड़ी थोथी है। सफलता सफलता लाती कहां है? धन इकट्ठा कर लिया जीवन भर गंवाकर--और तब पता चलता है कि धन को खाओगे, पीओगे, ओढ़ोगे--क्या करोगे? और मौत करीब आने लगी। धन मौत से बचा न सकेगा। तब याद आती है कि ध्यान ही कर लिया होता, ठीक था। क्योंकि ध्यान ही है एक सूत्र, जो अमृत से जोड़ देता है।

और अदभुत सूत्र हैं मलूकदास के, लोगों की याददाश्त में नहीं रहे। आज जिन सूत्रों से हम मलूकदास पर बात शुरू करेंगे, वे सूत्र अपूर्व हैं। पहली तो बात, वे संन्यास के संबंध में हैं। दुनिया में बहुत मनीषी हुए, वे सभी संसार से शुरू करते हैं बात; मलूकदास ने संन्यास से शुरू की है बात।

तलाश तो तुम खूब करते हो; परख तुम्हारे पास नहीं है। दौड़ते नहीं हो, ऐसा नहीं है; गलत दिशाओं में दौड़ते हो। तो चलो, ठीक दिशा की बात हो।

इसलिए मैं भी संन्यास की बात करता हूं और मेरा मलूकदास से बहुत ताल-मेल है, गहरी आत्मीयता है। एक ही जैसी तरंग है। मेरी भी दृष्टि यही है कि असार छोड़ने से नहीं छूटता, सार के अनुभव से छूटता है। श्रेष्ठ को पा लो,

संन्यासी इस दर्द मग मस्त है और संसारी इस दर्द को भुलाने की चेष्टा मग लगा है। संसारी का अर्थ है: जो इस बात को भुलाने की चेष्टा में लगा है कि प्रभु के न मिलने से कोई दर्द होता है। संसारी इस खोज में लगा है कि मैं किसी तरह प्रभु को भुलाने में पूरी तरह समर्थन हो जाऊं। पीठ किये है प्रभु की तरह। जीवन क्या है, जीवन का सत्य क्या है--इस सबकी तरफ पीठ किये है। खिलौनों से खेल रहा है। पीठ करने का कारण है।

यह याद भी आ जाये कि प्रभु है, तो पीड़ा शुरू हो जाती है। इस याद के साथ ही तुम्हारे जीवन में क्रांति का सूत्रपात होता है। और प्रभु है, तो फिर तुम क्या कर रहे हो--धन बटोर कर? अगर प्रभु है, तो दुकान चला कर तुम क्या कर रहे हो? अगर प्रभु है, तो पद-प्रतिष्ठा पा कर तुम क्या कर रहे हो? अगर प्रभु है, तो फिर सारी जीवन-ऊर्जा उसी की दिशा में लगा दो, क्योंकि उसी को पाने से कुछ पाया जायेगा और तो कुछ भी पाने से कुछ न होगा। मगर प्रभु है, यह बात ही पीड़ादायी है। प्रभु है और मुझे तो मिला नहीं, तो पीड़ा तो होगी। प्रभु है और मैं क्या करता रहा जन्मों-जन्मों तक, मैं कहां भटकता रहा, मैं किन दुःख स्वप्न में खोया रहा? प्रभु है और मैंने उसके द्वार पर दस्तक भी न दी! तो पीड़ा होगी।

इस पीड़ा से बचने की जो कोशिश करता है, वह संसारी है। इस पीड़ा में जो मस्त हो जाता है; जो कहता है: धन्यभागी मैं,

परमात्मा नहीं है, ऐसा कह कर हम उस विरह से अपने को बचा रहे हैं, जो परमात्मा की मौजूदगी स्वीकार करते ही जीवन में खड़ा हो जायेगा; एक तूफान की भांति, एक आंधी की भांति आयेगा और हमें झकझोर देगा। हम पतझड़ से बच रहे हैं।

लेकिन ध्यान रहे। पतझड़ बसंत के लिए मार्ग बनाता है। सूखे पत्ते गिरते हैं, तो नई कोंपल के आने के लिए द्वार खुलता है। नहीं तो कोंपल के लिए आने के लिए द्वार कहां? सूखे पत्ते अड्डा जमाए रहें, तो ये पत्ते पैदा न हो सकेंगे। सूखे पत्ते स्थान खाली कर देते हैं, तो नये पत्ते आते हैं। रात सुबह के लिए आयोजन करती है। रात के अंधेरे में ही सुबह निर्मित होती है। रात्रि के गर्भ में ही सुबह का जन्म है।

संसारी वह जो कहता है: मुझे कोई विरह इत्यादि नहीं। है ही नहीं ईश्वर तो विरह क्या होगा? अगर मुझे विरह इत्यादि है भी, तो धन का विरह हो रहा है कि धन होना चाहिए, वह नहीं है; पत्नी का विरह हो रहा है, पत्नी मायके गई है; कि पति का विरह हो रहा है कि पति ने मुझे छोड़ दिया; कि बेटे का विरह हो रहा है कि बेटा नहीं जन्मा; कि पद का विरह हो रहा है कि पद मिलना था, मैं योग्य था--और नहीं मिला। इस तरह के हमारे हजार विरह हैं। एक विरह से बचने के लिए हमने हजार थोथे विरह पैदा कर लिए हैं और इनमें से कोई भी विरह मिलन नहीं लाता। यह तुमने देखा।

धन का विरह होता है, तो आदमी पीड़ित होता है और धन जब मिल जाता है तो कोई तृप्ति नहीं आती। ये विरह नपुंसक हैं, क्योंकि इनके बाद मिलन नहीं आता। पद न हो तो पीड़ा होती है, यह सच है; लेकिन पद के मिलने से तुमने कब किसी को सुखी देखो? कोई पद के मिलने से सुख नहीं आता। निश्चित ही विरह झूठा रहा होगा। पुराना पत्ता तो गिर गया, नया पत्ता पैदा नहीं होता; तो पुराना पत्ता प्लास्टिक का रहा होगा, झूठा रहा होगा। धोखा था, मान्यता थी, आभास था। अगर पुराना पत्ता सच था, तो उसके गिरने से नये पत्ते को जगह मिलनी चाहिए थी।

अलेक्जेंडर दुःखी मरा, रोते हुए मरा, क्योंकि सारी दुनिया तो जीत ली, लेकिन अपना जीवन गंवा दिया। पूछो बड़े से बड़े धनपतियों से। अगर वे ईमानदार हों, तो वे कहेंगे कि जीवन में राख के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं मिला; राख मिली। सब चुका कर बैठे हैं, हार कर बैठे हैं।

दर्द दीवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।

और जो प्रभु के मिलन-विरह में दुःखी हो रहा है, लेकिन दुःख में मस्ती है। दर्द-दीवाने बावरे? जो दुःख नहीं मान रहा है; अब कैसे दुःख! प्रभु का विरह भी सुख है। प्रेमी की याद भी परम आनंद है। रो रहा है, लेकिन आंसुओं में उसके आने की पगध्वनि है।...अलमस्त फकीरा। रो रहा है, लेकिन मस्ती है। रो रहा है, लेकिन निर्द्वंद्व है, अलमस्त है।

फकीरा का अर्थ होता है: जिसके पास अपना कुछ भी नहीं। इसका ठीक वही अर्थ होता है, जो जीसस के इस वचन का है--जीसस ने कहा: धन्य हैं दरिद्र, क्योंकि प्रभु का राज्य उनका ही होगा। धन्य हैं दरिद्र!

किन दरिद्रों की बात कर रहे हैं ईसा? उन दरिद्रों की, जो कहता है: हमारा अपने पास कुछ भी नहीं है; जो है, सब परमात्मा का है, हमारा क्या है; जिनकी कोई मालकियत का दावा नहीं है। खयाल करना फर्क। यह भी हो सकता है कि तुम सब धन छोड़ कर फकीर हो जाओ। लेकिन धन छोड़कर भी तुम यह दावा करते रहो कि वे लाखों तुम्हारे थे, तुमने त्यागे, तुमने बड़ा कृत्य किया! तो तुम फकीर नहीं हो! तुम अभी धन का हिसाब रखे हो।

फकीर का अर्थ है: जिसने यह जाना कि मेरा यहां क्या हो सकता है! मैं नहीं था, तब यह संसार था। मैं नहीं रहूंगा, तब भी यह संसार रहेगा। मेरे न होने, होने से कुछ भी तो अंतर नहीं पड़ता। तो मैं थोड़े दिन के लिए बीच में आ जाता हूं और दावे कर लेता हूं!

तुम देखते हो, जमीन पर लोग लकीरें खींच कर दावे कर लिए हैं कि यह मेरी जमीन, यह मेरा देश! सीमाएं खींच ली हैं। जमीन को पता ही नहीं है कि किसकी जमीन। तुम आये और तुम चले जाओगे। तुम जमीन से पैदा हुए और जमीन में डूब जाओगे और खो जाओगे, और बीच में तुमने थोड़ी देर को बड़े सपने देखे, दावे कर लिए!

दावेदार जो नहीं है, वही दरिद्र, वही फकीर। जो कहता है, मेरा तो कुछ था ही नहीं, तो त्याग कैसे हो सकता है? इसको समझना।

भोगी है, तो वह कहता है: मेरे पास लाखों रुपये हैं। और त्यागी है, तो कहता है, मैंने लाखों छोड़ दिये हैं। मगर दोनों एक बात में राजी हैं कि लाखों उनके थे या उनके हैं। फकीर वह है, जो कहता है: मेरा कुछ भी नहीं। उपयोग कर लेता हूं, लेकिन मेरा नहीं है। उपयोग छोड़ दूं, लेकिन मेरा नहीं है। है तो सब परमात्मा का। सबै भूमि गोपाल की। सब उसका है।

दर्द-दीवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।

जिसने कह दिया, सब उसका है, मेरा कुछ भी नहीं, उसका अहंकार अपने आप विसर्जित हो जायेगा। क्योंकि अहंकार के लिए सहारे चाहिए। मेरा मकान, मेरा धन, मेरा पद, मेरी प्रतिष्ठा--मैं के लिए मेरे का सहारा चाहिए। अगर मेरे की बैसाखियां अलग कर लो, तो मैं तत्क्षण गिर जाता है। मैं बिलकुल लंगड़ा है।

तुम में से बहुत लोग सोचते हैं: अहंकार कैसे छूटे? अहंकार न छूटेगा; जब तक मेरा न छूटे, तब तक मैं न छूटेगा। मेरा जाए, तो फिर तुम मैं को बचाना भी चाहो, तो न बचा सकोगे। मेरा मेरा मेरा--इसका जो जोड़ है, वही मैं है। इसलिए तुम्हारे पास जितना मेरा कहने को होगा, उतना बड़ा मैं होगा।

तुम देखते हो एक आदमी पद पर पहुंच गया, तो उसका मैं खूब फूल जाता है! फिर यही आदमी पद पर न रहा, तब तुम उसे देखने जाओ; उसको मैं बिलकुल सिकुड़ जाता है, जैसे गुब्बारे में से हवा निकल गई हो! वह सारा फैलाव गया। वह सिकुड़ गया।

तुम्हारे पास धन है, तुम एक तरह से चलते हो। तुम्हारे पास धन नहीं है, तुम्हारी चाल में से प्राण निकल जाते हैं।

मैंने सुना है: दो फकीर एक नाला पार कर रहे थे। छोटा-सा नाला था। एक फकीर तो छलांग लगा गया और निकल गया उस पर। दूसरा फकीर बड़ा चकित हुआ, क्योंकि नाला यद्यपि

छोटा था, फिर भी काफी बड़ा था और छलांग...। उसने कभी सोचा भी न था कि कोई आदमी लगा सकेगा इतनी बड़ी छलांग। उसने भी लगाने की कोशिश की, लेकिन बीच में ही गिर गया। वह बड़ा हैरान हुआ। पानी से कपड़े तरह-बतर हो गए। बाहर निकला किसी तरह, उसने अपने मित्र से पूछा कि भाई, तुमने यह छलांग लगानी कहां सीखी! इतने दिन साथ रहे हो गए, मुझे बताया भी नहीं तुमने कभी! इतनी लंबी छलांग! तुम तो अगर ओलम्पिक प्रतियोगिता में जाओ तो विश्व-रिकार्ड तोड़ दो। मगर साखी कहां? उसने कहा, इसका सीखने इत्यादि से कोई संबंध नहीं।

पर तुम छलांग इतनी लगाए कैसे? मैं भी लगाया; बीच में गिर गया!

उसने फकीर से कहा, इसका राज है कि मेरे जेब में रुपये हैं। जब जेब में रुपये होते हैं तो आदमी में गरमी होती है! उसने कहा, तुम्हारे जेब में क्या है? खाली जब छलांग लगाओगे कैसे?

आदमी के पास रुपये हों, तो उसकी देखते हैं चला! उसकी सींग निकल आते हैं। रुपये न हों तो सिकुड़ जाता, ऊंचाई कम हो जाती है। गुब्बारा फूट जाता है; हवा निकल जाती है।

फकीर अर्थ है: जिसने यह कहा कि मेरा कुछ भी नहीं है। यह कहते ही उसने कह दिया: मैं कुछ भी नहीं हूं। तो फकीर का पहला परिधिगत अर्थ तो होता है कि मेरा कुछ नहीं गहरा केंद्रगत अर्थ होता है कि मैं कुछ नहीं।

जिसके पास कुछ भी नहीं है, स्व भी नहीं, वही फकीर। फिर स्वभावतः मस्ती का क्या कहना! जितना तुम्हारे पास है उतनी चिंता है, उतना द्वंद्व है, उतनी फिक्र है, उतनी सुरक्षा करनी, व्यवस्था करनी। जब तुम्हारा कुछ भी नहीं है, फिर कैसी चिंता, फिर कैसा द्वंद्व, फिर कैसी सुरक्षा? फिर तुम सो सकते हो--पैर पसार कर।

एक प्रधानमंत्री संन्यस्थ हो गया। जंगल चला गया। सम्राट उसे बहुत चाहता था। धीरे-धीरे खबरें आने लगी कि वह परम ज्ञानी हो गया। तो सम्राट उसके दर्शन करने को गया। लेकिन पुराना मंत्री था सम्राट का ही, तो अनजानी अपेक्षाएं भी थी। जब सम्राट वहां पहुंचा, तो वह प्रधानमंत्री पैर फैलाए एक वृक्ष के नीचे बैठा था, नंग-धड़ंग; एक ढपली बजा रहा था। न तो उसने ढपली बजाना बंद किया, न उठ कर नमस्कार किया, न पैर सिकोड़े। यह जरा सीमा के बाहर थी बात। यह जरा अशिष्ट था। सम्राट ने कहा, और सब तो ठीक है। मैंने सुना है, तुम ज्ञानी हो गए; मगर यह कैसा ज्ञान? तुमने पैर भी न सिकोड़े! तुमने ढपली भी अपनी बंद नहीं की। तुम उठ कर खड़े भी नहीं हुए। आखिर मैं तुम्हारा पुराना मालिक हूं। कम से कम पैर सिकोड़ो। शिष्टाचार तो न भूल जाओ।

वह फकीर हंसने लगा। उसने कहा, जाने दो जी। अब क्या पैर सिकोड़ने? पैर सिकोड़ता था, क्योंकि भीतर द्वंद्व था; पद को बचाना था। तुम्हारे लिए पैर सिकोड़े थे, इस भूल में तुम पड़ना भी मत; अपने ही लिए पैर सिकोड़े थे। और तुम्हारे लिए उठ-उठ खड़ा होता था, इस झंझट में तुम पड़ना ही मत; इस भ्रांति में मत रहना। अपने लिए ही उठ-उठ कर खड़ा होता था। भय था, पद को बचाना था। प्रतिष्ठा बचानी थी। धन बचाना था, नौकरी बचानी थी।

अब किसलिए उठना जी? किसके लिए उठना? अब तो जब उठना होगा उठेंगे, नहीं उठना होगा नहीं उठेंगे। अब कैसा शिष्टाचार और कैसा आचार? वे सब बातें थी, बकवास थीं; भीतर तो अहंकार था।

फकीर का अर्थ होता है: जिसके पास अब अपना कुछ भी नहीं।

अलमस्त शब्द के दो अर्थ होते हैं। एक अर्थ तो होता है: अपनी मस्ती में डूबा हुआ है, असीम मस्ती में डूबा हुआ। और दूसरा अर्थ होता है: निर्द्वंद्व; जिसके भीतर अब कोई द्वंद्व न रहा। अब कोई नहीं उठती। अब जो है, ठीक है। अब जैसा है, बिलकुल ठीक है। अब जिसके भीतर, अस्तित्व में कुछ भेद होना चाहिए तब वह सुखी होगा--ऐसा भाव नहीं उठता। वह सुखी है ही। जैसा जगत चलता हो चलता रहे, उसके सुख में कोई अंतर नहीं पड़ता।

दर्द दीवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।
एक अकीदा ले रहे, ऐसे मन धीरा।।

और संन्यासी का अर्थ है: जो एक पर आस्था ले आया। एक अकीदा ले रहे...जिसने एक पर आस्था जमा ली--और एकजुट आस जमा ली; जिसने उस एक पर अपना सब समर्पित कर दिया; जिसने उस एक पर सब न्योछावर कर दिया, सब भेंट कर दिया।

एक अकीदा ले रहे, ऐसा मन धीरा।

और फिर जो प्रतीक्षा का रहस्य जानता है...ऐसे मन धीरा। उस एक पर जिसने सब छोड़ दिया और जो प्रतीक्षा करने को अनंत रूप में तैयार है। क्योंकि तुम्हारे छोड़ते ही सब नहीं मिल जाता। छोड़ते-छोड़ते-छोड़ते-छोड़ते छूटता है। तुम जब कहते हो: मैंने सब छोड़ दिया तब भी सब नहीं छूटता; कुछ न कुछ बचा रह जाता है। पर्त-पर्त बचाव है। बड़ी गहराई तक तुम्हारा अहंकार छाया है। जितना तुम जानते हो उतना तुम्हारा अहंकार नहीं, उससे बहुत ज्यादा है। तुमने तो ऊपर-ऊपर की भनक सुनी है, भीतर अचेतन तक गहरे में जड़ चली गई हैं अहंकार की। तुम पते समर्पित कर देते हो, फूल समर्पित कर देते हो, शाखाएं काट डालते हो, वृक्ष काट डालते हो; लेकिन जड़े छिपी हैं--गहरे अंतसचेतन में। धीरे-धीरे-धीरे-धीरे जिस दिन तुम सब समर्पित कर देते हो, वस्तुतः सब समर्पित हो जाता है, उस दिन क्रांति घटती है। पर उसकी प्रतीक्षा करनी जरूरी है।

तो प्रभु को पाने के लिए दो उपाय है--प्रार्थना और प्रतीक्षा। प्रार्थना का अर्थ है: दास मलूका कहि गया, सबके दाता राम। प्रार्थना का अर्थ है: तुम जो करोगे होगा। तुम जैसा करोगे, वैसा होगा। तुम जब करोगे, तब होगा। और प्रतीक्षा का अर्थ है: मैं राजी हूं; मैं प्रतीक्षा करूंगा; जल्दी नहीं है। तुम अगर अनंत तक भी प्रतीक्षा कराओगे, तो मैं प्रतीक्षा करूंगा। जल्दबाजी किसकी हो?

जल्दबाजी भी अहंकार की है। जल्दबाजी भी अहंकार का हिस्सा है। अधैर्य अहंकार की छाया है। अहंकारी जल्दी चाहता है--अभी हो जाए। उसका कारण भी समझने जैसा है।

अहंकारी इतनी जल्दी क्यों चाहता है? क्योंकि उसे पता है: मौत आ रही है। मौत के आने के कारण जल्द बाजी है। समय जा रहा है। एक दिन गया, एक दिन कम हुआ। दो दिन गए , दो दिन कम हुए।

तुम देखते हो, पश्चिम के मुल्कों में ज्यादा जल्दबाजी है--बजाय पूरब के मुल्कों के! कारण? कारण है ईसाइयत की धारणा कि एक ही जीवन है। जब एक ही जीवन है, तो घबड़ाहट ज्यादा है। मौत आ रही है और एक ही जीवन है; अभी भोग भी नहीं पाये, कुछ भी नहीं पाये, यह मौत की पगध्वनि सुनाई पड़ने लगी। यह ब्लड-प्रेशर बढ़ा; यह हार्ट-अटैक होने लगा; ये मौत के दो कदम पास पड़ने लगे; यह द्वार पर दस्तक साफ होने लगी; ये मौत की छायाएं दिखाई पड़ने लगीं। और अभी तो कुछ कर भी नहीं पाये और अभी कुछ हो भी नहीं पाया और एक ही जीवन है। तो घबड़ाहट--बेचैनी!

पूरब के मुल्कों में इतनी बेचैनी नहीं है। अनंत जीवन है। यह जीवन गया, कुछ गया नहीं; और जीवन आयेगा। यह ऋतु खो गई, कोई हर्जा नहीं; और ऋतु आयेगी। इस वसंत में फूल न खिले, अगले वसंत में खिलेंगे; वसंत आता रहेगा।

ऋतु शब्द बना है ऋतु से। वेद में शब्द है--ऋत्। ऋत् का अर्थ होता है, जो सदा लौटा-लौटा कर आ जाए; जो आता ही रहे; जो जाता है और आता है; जिसके जाने में आना छिपा है; जो इधर गया, उधर से आयेगा। जो अंतहीन परिभ्रमण है संसार का--उसका नाम ऋत्। ऋत् उसी से बना है। इस बार नहीं बो पाये बीज और वर्षा रीत गई, वर्षा चली गई, मेघ घुमड़े और बिदा हो गए--घबड़ाना मत; यह खाली आकाश खाली न रहेगा; फिर मेघ उठेंगे, फिर आषाढ़ आयेगा, फिर गरजेंगे बादल, फिर दामिनी दमकेगी। फिर तुम बो लेना बीज।

तो पूरब में प्रतीक्षा है। इसलिए पूरब में समय की बहुत धारणा नहीं है। पश्चिम में बड़ी समय की धारणा है, बड़ा समय-बोध है। अगर तुम किसी पश्चिमी से कह दो; मैं पांच बजे आता हूं और पांच मिनिट देर हो जाओ, तो वह नाराज होता है। अब हिंदुस्तान में पांच बे का मतलब छः बजे भी होता है, चार बजे भी होता है; चलता है। पांच बजे को मतलब कोई पांच बजे ही नहीं होता। और तुमने कहा: सोमवार को आयेंगे, मंगल को आये, तो भी चलता है। यहां कुछ इतना समय-बोध नहीं है। कुछ ऐसी पकड़ नहीं है समय पर।

घड़ी पश्चिम में बनी, पूरब में हनीं बनी। पूरब में अधिकतर लोग घड़ी पहनते है--केवल आभूषण की तरह; ऐसा मेरा अनुभव है। कम से कम स्त्रियां तो निश्चित आभूषण की तरह पहनती है। साज-सिंगार है। घड़ी का बोध नहीं है। वह पश्चिमी बुद्धि नहीं है, भीतर, जो आतुर है, एकदम जल्दी से सब हो जाए, समय पर हो जाए, एक मिनिट न चूक जाए। मिनिट-मिनिट बचाना है। फिर करना क्या है--मिनिट-मिनिट बचा कर? करने को कुछ भी नहीं है। जाना कहां है?

मैंने सुना है: एक जंगली इलाके में, एक आदिम इलाके में रेलगाड़ी को पटरियां बिछाई जा रही थी। जो प्रधान आफिसर था, रेलगाड़ी का पटरियां बिछा रहा था, उसने एक दिन देखा कि एक आदिम आदमी, एक आदिवासी वृक्ष के नीचे बड़े आनंद से लेटा हुआ, एक चट्टान

पर सिर टिकाए; काम देख रहा है। लोग काम कर रहे हैं, वह मजे से लेटा है। वह आफिसर उसके पास गया, उसे बोला, तुम क्या करते हो? उसने कहा कि मैं लकड़ियां काटता हूं और शहर बेचने जाता हूं। कितना समय लगता है आफिसर ने पूछा। उसने कहा कि दो दिन जाने में लगते हैं, दो दिन आने में लगते, दो दिन कम से कम बेचने में लग जाते हैं--कभी एक दिन भी दो दिन, कभी तीन दिन भी। तो उसने कहा: ऐसे तो पूरा सप्ताह ही खराब हो जाता है! अब तुम देखो ट्रेरन बनी जा रही है, जल्दी ही, अलग वर्ष से तुम्हें दिक्कत न रहेगी। घंटे में पहुंच जाओगे, घंटे में आ जाओगे।

लेकिन यह आदमी प्रसन्न न दिया। तो आफिसर ने पूछा, तुम प्रसन्न नहीं दिखाई पड़ते! उसने कहा, वह तो ठीक है: घंटे में चला गया, घंटे में आ गया; फिर सात दिन क्या करूंगा? और एक झंझट। अभी तो एकाध दिन बचता है; छः दिन का थका-मांदा आता हूं; देखो, आज लेटा हूं, विश्राम कर रहा हूं। एक दि ठीक है। जब बच जाता है, तो मजे से विश्राम कर लेता हूं मगर एक घंटे चले गए, एक घंटे में आ गए--फिर? फिर उन सात दिनों का क्या होगा?

उसकी चिंता स्वाभाविक है।

पश्चिम में लोग समय को बचा लेते हैं, फिर नहीं जानते कि क्या करें? फिर उस समय का क्या हो? फिर उस समय का क्या उपयोग है?

समय के संबंध में एक अधैर्य है, वह भी अहंकार का हिस्सा है। और अहंकार स्वभावतः मौत से डरता है। क्योंकि मौत सिर्फ अहंकार को मारती है, तुम्हें नहीं मारती।

दर्द दीवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।
एक अकीदा लौ रहे, ऐसे मन धीरा।।

एक भरोसा कर लिया प्रभु पर, की उसकी प्रार्थना और छोड़ दिया सब उस पर--ऐसा संन्यास है। और फिर अनंत प्रतीक्षा की तैयारी: ऐसा नहीं है कि अनंत प्रतीक्षा करी होगी। बड़ी विरोधाभासी बात है, खूब मन में सम्हाल कर रख लेना।

जितनी जल्द बाजी करोगे, उतनी देर लगेगी। और जितना धैर्य रखोगे, उतना जल्दी हो जायेगा। जो जितना प्रतीक्षा करने को राजी है, उतनी ही जल्दी घटना घट जाती है। अगर तुम अनंत प्रतीक्षा करने को राजी हो, तो इसी क्षण परमात्मा मिलेगा। तुम्हारी प्रतीक्षा का भाव ही परमात्मा के मिलने के लिए द्वार बन जाता है।

...ऐसे मन-धीरा

संन्यास का अर्थ है: प्रार्थना।

संन्यास का अर्थ है: निरहंकार

संन्यास का अर्थ है: उसके मिलन में, उसके विरह में मस्ती।

संन्यास का अर्थ है: उसके आगमन की अनंत प्रतीक्षा।

प्रेम पिलाया, पीवते, बिसरे सब साथी।
आठ पहर यों झूमत, मैगल माता हाथी।।

कहते हैं मलूक: प्रेम पिलाया पीवते, बिसरे सब साथी। संसार भूल गया, जब से उसके प्रेम के प्याले से दो बूंद भी पी ली है। जब से उसके प्रेम का प्याला पिया जब से उसकी प्रार्थना में लगे, जब से मस्त हुए उसकी याद में, जब से उसका स्मरण आया--तब से सब साथी बिसर गए। फर्क समझना।

संसार छोड़ना नहीं है--प्रभु को चखना है। प्रभु को चलते हो संसार विस्मृत होने लगता है। संसार को छोड़ने की जो चेष्टा में लगता है, और प्रभु को चखता नहीं है, उससे संसार छूटता नहीं; लौट-लौट कर आ जाता है; नये-नये ढंग में आ जाता है। और दमन ही होता है भीतर। वासनाएं भीतर कुलबुलाती हैं। वासना के कीड़े भीतर अंधेरे में सरकते हैं; सब तरफ से झांकते हैं, सब तरफ से संसार में खींच लेने की कोशिश करते हैं।

तुम अगर अपने तथाकथित त्यागी के जीवन में उतर कर देख सको, तो बहुत हैरान हो जाओगे; उसकी दशा भोगी से भी बुरी है! भोगी तो कम से कम भोग रहा है, इसलिए उतना चिंतित-परेशान नहीं है। त्यागी भोग भी नहीं रहा है, और परमात्मा उसे मिला नहीं है। उसकी दशा त्रिशंकु की है; वह बीच में अटक गया है; न यहां का रहा--न वहां का: धोबी का गधा, न घर का न घाट का। संसार छोड़ दिया, इस आशा में कि प्रभु मिलेगा; लेकिन संसार छोड़ने से प्रभु के मिलने का कोई भी संबंध नहीं है। असल में संसार तो प्रभु का ही है। इसको छोड़ने से प्रभु के मिलने का क्या संबंध हो सकता है?

संसार को समझने से प्रभु को मिलने का संबंध है, छोड़ने से नहीं। भागने से नहीं, जागने से। और जागना बड़ी अलग प्रक्रिया है। और निश्चित रूप से यही है। कि जब तुम्हें प्रभु का थोड़ सा स्वाद लगा जाए, तो संसार पर तुम्हारी पकड़ अपने से छूटने लगती है। तुम्हें असली हीरे मिल जाए, तो नकली कांच के टुकड़ों को कौन ढोता है! किसलिए? किस कारण?

प्रेम पियाला पीवते, बिसरे सब साथी।
आठ पहर यों झूरत, मैगल माता हाथी।।

जैसे हाथी मस्त होकर झूमता है, मदमस्त होकर झूमता है, ऐसे कहते हैं मलूकदास: आठ पहर यों झूमत...। संन्यासी आठों पहर झूमता रहता है। उसका नृत्य भीतर चलता ही रहता है। वह मगन है। उसके भीतर एक गुनगुन चलती ही रहती है।

मैं सांसों के दो तारे लिए फिरता हूं
मैं स्नेह-सुरा का पान किया करता हूं
मैं कभी न जग का ध्यान किया करता हूं
जग पूछ रहा उनको जो जग की गाते
मैं अपने मन का गान किया करता हूं।
मैं निज उर के उदगार लिए फिरता हूं
में निज उर के उपहार लिए फिरता हूं
है यह अपूर्ण संसार, न मुझको भाता

मैं स्वप्नों का संसार लिए फिरता हूं।
कर यत्न मिटे सब, सत्य किसी ने जाना?
नादान वहीं हैं हाय जहां पर दाना
फिर मूढ न क्या जग जो इस पर भी सीखे
मैं सीख रहा हूं सीखा ज्ञान भुलाना
मैं दीवानों का वेश लिए फिरता हूं
मैं मादकता निश्शेष लिए फिरता हूं
जिसको सुनकर जग झूम उठे, लहराए
मैं मस्ती का संदेश लिए फिरता हूं।

संन्यासी के संबंध में तथाकथित त्यागियों के कारण बड़ी गलत धारणा बन गई है। संन्यास से हम समझते हैं: कोई उदास, हारा-थका, पराजित, रोता-सा आदमी जिसके चेहरे पर कभी हंसी नहीं आती; जिसके जीवन में कभी कोई मस्ती का दर्शन नहीं होता; जहां रस की धारा नहीं बहती। त्यागी से हमने अर्थ समझा है, कोई आदमी जो मरुस्थल जैसा सूख गया; सूखा-साखा दरख्त, जिस पर अब नई कोंपलें नहीं फूटतीं; वसंत आता है, तो खाली लौट जाता है; पक्षी जिस पर अब घोंसला भी नहीं बनाते; जिसकी छाया भी खो गई है; जिसकी छाया में कोई यात्री विश्राम भी नहीं करता। ऐसे सूखे-साखे आदमी को हम कहते हैं विरक्त--जिसमें रस बिलकुल सूख गया। यह संन्यासी की विकृत धारणा है। संन्यासी तो सदा मस्ती में होगा। उसका नृत्य तो सदा चलता होगा। उसकी धु तो आठों पहर रहेगी। तुम उसके पास सदा ही उत्सव पाओगे। जिसकी हवा में उत्सव हो और जिसके आसपास तरंगें उल्लास की हों, वहीं जानना की संन्यास घटित हुआ है। उदास और रोते हुए लोग संन्यासी नहीं हैं--संन्यास के धोखे में हैं। संसार उन्होंने त्याग दिया, यह सच है; लेकिन परमात्मा के प्याले से एक बूंद भी उनके कंठ में नहीं उतरी। आठ पहर यों झूमत, मैगल माता हाथी।
उनकी नजर न आवते, कोई राजा रंक।

संन्यासी को न तो अमीर दिखाई पड़ता है--न कोई गरीब। क्यों? क्योंकि जिसको यही दिखायी पड़ गया कि सभी उसका है, फिर कौन अमीर और कौन गरीब! उसके लिए तो अमीर भी गरीब हैं और गरीब भी गरीब हैं। क्योंकि दोनों ही धन के पीछे दीवाने हैं। दोनों ही निर्धन हैं दोनों को असली धन का कोई अभी संदेश नहीं मिला है।

उनकी नजर न आवते, कोई राजा-रंक।
बंधन तोड़े मोह के, फिरते निहसंक।।

और जैसे ही प्रभु के प्रेम के प्याले से थोड़ी सी भी घूंट पी ली, फिर सारे मोह के बंधन छूट जाते हैं। क्यों? क्योंकि मोह में हम उसी प्रेम को खोजते थे। मिलता नहीं था, तो पकड़ते थे। तुमने जिन-जिन को पकड़ रखा है--किसलिए?--सोचना इसलिए कि शायद आज नहीं मिला, कब मिले, परसों मिले।

हम परमात्मा के प्यासे हैं; पत्नी को पकड़ बैठे हैं, कि पति को पकड़े बैठे हैं, मित्र को पकड़ बैठे हैं, कि बेटे को कि बाप को कि मां को पकड़ बैठे हैं। सोचते हैं: शायद परमात्मा मिल जायेगा। इसलिए तो हमारे सभी संबंधों में विषाद है और सभी संबंधों में क्रोध है। तुम अपी पत्नी से वस्तुतः कभी प्रसन्न नहीं हो सकते, क्योंकि तुम इतनी बड़ी मांग कर रहे हो जो उस गरीब के पास है नहीं। तुम मांग रहे हो कि वह देवी हो, परमात्मा जैसी हो। पत्नी तुमसे मांग रही है कि तुम परमात्मा जैसे होओ। वह हो नहीं सकता; जो नहीं हो सकता; तो फिर बेचैनी है, क्रोध है; वैमनस्य है, कलह है; हजार तरह के उपद्रव हैं। लेकिन अगर गौर से देखोगे, तो तुम्हारी पत्नी चाहती है कि तुम परमात्मा जैसे होओ। तुम्हारी पत्नी जब नाराज होती है कि तुम धूम्रपान मत करो, तो वह क्या कह रही है? वह कहती है कि धूम्रपान करे मेरा पति! कि तुम जब जाते जुआ खेलने, तो तुम्हारी पत्नी रोती है, पीड़ित होती है, क्योंकि वह सोचते है कि उसका पति! उसने पति में परमात्मा खोजना चाहा है। यह बात जरा जंचती नहीं कि परमात्मा जुआ खेलने चले! शायद उसे भी साफ न हो कि क्यों वह तुमसे इतनी नाराज है। आखिर अगर एक दफा खेल भी आये, तो क्या हर्ज है? अगर तुमने थोड़ी सिगरेट पी भी ली, तो क्या हर्ज है; कि कभी शराब भी पी ली, तो ऐसा क्या बिगड़ गया? नहीं, उसकी धारणा! तुम्हें थोड़े ही चाहा है उसने; चाह में परमात्मा को खोजना चाहा है। उसे भी शायद साफ न हो।

तुम भी पत्नी में कुछ अपूर्व खोज रहे हो--कुछ दिव्य, कुछ शाश्वत। वह नहीं मिलता। मिलता है: एक साधारण स्त्री--साधारणर् ईष्या, वैमनस्य, क्रोध, घृणा से भरी। मन व्यथित हो जाता है, जैसे धोखा हुआ; जैसे किसी ने धोखा दे दिया। तुमने चाहा था--एक अपूर्व सौंदर्य, जो कभी न कुम्हलाया--और यह पत्नी कुम्हलाने लगी। तुमने चाहा था--कुछ परलोक का, वह मिलता नहीं, तो तुम उदास होने लगते हो। उदास हो जाते हो, तो तुम किसी दूसरी स्त्री में खोजते हो, किसी दूसरे पुरुष में खोजते हो।

मगर परमात्मा को खोजना हो, तो यह कोई उपाय नहीं है। जिन्होंने परमात्मा की तरफ सीधी नहर उठाई, जो थोड़े से भी सीमा को छोड़ कर असीम की तरफ सरके और सीमा में जिन्होंने जरूरत से ज्यादा मांग न की--सीमा की शर्त हैं, सीमा की सीमाएं हैं--जिन्होंने असीम की मांग न की और असीम को जिन्होंने सीधा खोजने का प्रयास किया, उनके जीवन में मोह के बंधन अपने-आप छूट जाते हैं। जितना गठबंधन परमात्मा से हो जाता है, उनके और सब गठ-बंध अपने-आप खुल जो हैं। बंधन तोड़े मोह के, फिरते निहसंक।

साहेब मिल साहेब भए, कुछ रही न तमाई।
कहैं मलूक तिस घर गए, जंह पवन न जाई।।

साहेब मिल साहेब भए...। और परमात्मा से मिलने का सबसे बड़ा अपूर्व जो परिणाम है, वह यह है कि परमात्मा से जो मिला, वह परमात्मा हो गया। इससे छोटे में मन राजी होगा भी नहीं। इससे छोटे में बेचैनी रहेगी। तुम छोटे आंगन में न समा सकोगे। तुम्हें यह पूरा आकाश चाहिए। तुम्हारी नियति यह पूरा आकाश है। तुम्हें विराट चाहिए, विभु चाहिए। तुम जब तक

साहब ही न हो जाओ, तुम जब तक मालिकों के मालिक न हो जाओ, तब तक तुम अतृप्त रहोगे। अतृप्ति जलती रहेगी, काटती रहेगी भीतर--छुरे की धार की तरह, तुम्हारे प्राणों को सताती रहेगी।

साहेब मिल साहेब भए, कुछ रही न तमाई।

तमाई बड़ा प्यारा शब्द उपयोग किया मलूक ने इसका अर्थ होता है: तम, अंधेरा, तामसिकता, क्षुद्रता। इसका अर्थ होता है वासना। इसका अर्थ होता है: मूलत: अब भीतर कोई अंधेरा न रहा, दीया जलने लगा।

साहेब मिल साहेब गए, कुछ रही न तमाई।

अब कोई अंधेरा न रहा।

कहैं मलूक तिस घर गए, जंह पवन न जाई।

यह सूत्र बड़ा अनूठा है।

बुद्ध ने कहा है अपने भिक्षुओं को, श्वास को देखना--अनापानसतियोग या सतिपत्थान। श्वास को देखना। क्यों? क्योंकि बुद्ध ने कहा है, श्वास को देखते-देखते तुम्हें यह दिखाई पड़ेगा कि श्वास तुम नहीं हो। तुम वहां हो, जहां श्वास भी नहीं जाती। श्वास शरीर के लिए जरूरी है, तुम्हारे लिए जरूरी नहीं है। श्वास आत्मा और शरीर के बीच सेतु है, जोड़ है। इसलिए श्वास टूट जाती है, तो आत्मा और शरीर का संबंध छूट जाता है। लेकिन इससे मृत्यु नहीं घटती, इससे केवल संयोग छूट जाता है। श्वास के प्रति जागे रहो; अगर श्वास को देखते रहो--भीतर आई, बाहर गई, भीतर आई, बाहर गई--इसके प्रति होश को प्रगाढ़ करते जाओ, बुद्ध ने कहा, तो एक दिन पाओगे कि तुम श्वास नहीं हो। जिस दिन यह जाना कि मैं श्वास नहीं हूं, उसी दिन तुम मृत्यु के बाहर हो गये, अमृत का दर्शन हो गया।

यह मलूक की पंक्ति कहती है:

साहेब मिल साहेब भए, कुछ रही न तमाई।

कहैं मलूक तिस घर गए, जंह पवन जाई।।

--जहां श्वास नहीं पहुंचती, उस घर में पहुंच गए। जहां श्वास नहीं पहुंचती, वहीं अमृत का वास है। जहां तक श्वास जाती है, वहां तक संसार है। जहां श्वास नहीं जाती, वहीं परमात्मा हो जाते हो। ऐसा नहीं कि तुम परमात्मा का दर्शन करते हो कि अहो, कैसे सुंदर! तुम ही परमात्मा हो जाते हो।

जब तक इतनी भी दूरी रही कि तुम देखने वाले और परमात्मा दृश्य रहा, तक बेचैनी रहेगी। इतनी दूरी भी सही नहीं जाती। यही तो प्रेम की पीड़ा है। तुम जिसे प्रेम करते हो, उससे दूरी नहीं सही जाती। लेकिन इस जगत में कुछ भी करो, दूरी तो रहेगी। कितना ही तुम पत्नी को प्रेम करो, पति को प्रेम करो, दूरी तो रहेगी। तुम दो हो, दूरी तो रहेगी। मिल जाओगे क्षण भर को, लेकिन क्षण भर का मिलन होगा, फिर दूरी खड़ी हो जायेगी--और भी प्रगाढ़ हो कर खड़ी हो जायेगी; पहले से भी ज्यादा दूरी मालूम होगी।

ऐसा होता है, तुम रास्ते से निकल रहे हो, अंधेरी रात है। धीरे-धीरे अंधेरे में चलते-चलते तुम्हें थोड़ा-थोड़ा दिखाई भी पड़ने लगा है। फिर एक अचानक तेज प्रकाश वाली कार तुम्हारे पास से निकल गई, एकदम रोशनी हो गई। कार के जाने पर तुम पाओगे; अंधेरा और भी ज्यादा हो गया; अब कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। पहले अंधेरे में चलते-चलते थोड़ा दिखाई भी पड़ता था; अब यह कार और तुम्हें चकाचौंध से भर गई, कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता।

जब भी पति और पत्नी क्षण भर को प्रेम के आवेग में मिलते हैं, तो उसके बाद और भी दूर हो जाते हैं--पहले से भी ज्यादा दूर। यही तो दुःख है संभोग का। संभोग के बाद सभी लोग विषाद से भर जाते हैं। यह तो पास आना चाहा था, और दूर फिक गए। यहां तो अद्वैत सध नहीं सकता। अद्वैत तो सध सकता है सिर्फ परमात्मा से, क्योंकि वहां देह का सवाल नहीं है। देह दो कर रही है। देह अलग-अलग कर रही है। देह के पार को जानते ही भेद समाप्त हो जाते हैं।

साहेब मिल साहेब भए, कुछ रही न तमाई।
कहैं मलूक तिस घर गए, जंह पवन न जाई।।

जल-सा तरल बनूं
सूरज की किरण-डोर पकड़
गगन चढ़ूं
बाष्प बन विचरूं
फिर बरसूं
चंदा की शीतल छाया छू
हिमखंड बनूं
फिर पिघलूं, बहूं
चाहे चहां ढलूं
चाहे जो रूप-रंग
आकृति ग्रहण करूं
जो हूं अंततः वही रहूं!

इस प्रार्थना की जरूरत नहीं है। जो हम हैं, हम वही रहते हैं। अनंत-अनंत काल में अनंत-अनंत भटकावों में पड़ने के बाद भी साहब हमारे भीतर मौजूद है, हम वही के वही हैं। इसलिए तो साहेब मिल साहेब भए।

अगर हम साहब से अलग होते, तो मिल कर एक नहीं हो सकते थे। साहब के साथ एक हैं ही। इसीलिए स्मरण आते ही, बोध आते ही तत्क्षण भेद गिर जाते हैं। साहब के साथ हमारी एकता शाश्वत है। हम परमात्मा से कभी अलग हुए नहीं। हम परमात्मा से अलग हो नहीं सकते हैं। जैसे सागर में लहर अलग नहीं हो सकती, कितनी ही उछले-कूदे, कितने ही रूप धरे, दूर आकाश में उठ जाये उत्तुंग, जहाजों को डूबा दे, पक्षियों के साथ होड़ करे, सूरज को छूने की चेष्टा करे--लेकिन सागर से दूर नहीं हो सकती, सागर से अलग नहीं हो सकती;

सागर की ही है, फिर गिर पड़ेगी, फिर सागर में खो जायेगी। यह जो बल है लहर का, वह भी सागर का बल है। हम तो लहरें हैं। जिस दिन लहर जाग कर देखती है, उस दिन वह कहेगी: अरे, तो मैं लहर--सागर हो गई! मगर लहर सागर थी।

साहेब मिल साहेब भए, कुछ रही न तमाई।

कहैं मलूक तिस घर गए, जंह पवन न जाई।।

आपा मेटि न हरि भजे, तेई नर डूबे।

कहते हैं मलूक: वही डूबता है, जो अपने को भूल कर परमात्मा को नहीं याद करता। हम अपने को याद कर रहे हैं, और परमात्मा को भूले हैं।

दुनिया में दो ही ढंग हैं जीने के। अपने को याद करो, परमात्मा को भूलो--यह ढंग, कहो संसारी का ढंग। अपने को भूलो, परमात्मा को याद करो--दूसरा ढंग, कहो संन्यासी का ढंग। अपने को नंबर दो रखो और परमात्मा को नंबर एक, फिर देर न लगेगी--साहेब मिल साहेब भए। अपने को नंबर एक रखो और परमात्मा को नंबर दो, तो तुम ही नास्तिक हो।

तुमने देखा आस्तिक भी मंदिर में प्रार्थना करने जाता है तो परमात्मा को नंबर दो रखता है, नंबर एक नहीं! वह परमात्मा से कहता है; जो मैं चाहता हूं, वह तू कर। वह यह नहीं कहता कि जो तू करे, वह मुझे स्वीकार। वह यह ही कहता कि तेरी मरजी में स्वीकार, मैं आनंद से स्वीकार करने आया हूं। वह कहता है कि देखो, मेरे लड़के को नौकरी नहीं मिल रही, नौकरी लगवा दो; कि मेरी पत्नी बीमार है और मैं कितना भक्ति-भाव कर रहा हूं; सुनो सब कुछ, बहरे मत बनो, इसे ठीक कर दो। नंबर एक वह खुद ही है, परमात्मा की भी सेवा लेना चाहता है। मालिक वही है। मालिक अपने को समझ रहा है, परमात्मा का भी उपयोग करना चाहता है। यह आस्तिकता नहीं है।

आपा मेटि न हरि भजे, तेई नर डूबे।

वही डूबता है, जो अपने को तो भूलता नहीं और परमात्मा को भूला रहता है।

हरि का मर्म न पाइया, कारन कर डूबे।

और इसीलिए डूबता है कि हरि का मर्म न पा सका। जिसने अपने को भूला और परमात्मा को याद दिया, उसकी बड़ी और गति है।

तुम रहो यदि साथ मैं तो पार क्या, मझधार क्या है
हर लहर तट है मुझे तो, सिंधु की ललकार क्या है
फिर भरे तूफान में मेरी अपने करों से
तुम डुबाओ, तट न पाऊं, यह कभी संभव नहीं है।

फिर तो परमात्मा अगर डुबाए भी, तो भी तट मिल जाता है। यह थोड़ा समझना।

जीसस का बड़ा प्रसिद्ध वचन है कि जो अपने को बचाएगा, वह खो देगा और जो अपने को खो देगा, वह पा लेगा। बड़ा विरोधाभासी वचन है, पर बड़ा बहुमूल्य भी। जो अपने को बचाएगा, वह खो देगा।

करें भरोसा पुन्न का, साहब बिसराया।

और वे लोग भी जिनको तुम धार्मिक कहते हो--करें भरोसा पुन्न का साहब बिसराया--उसको भी साहब से कुछ मतलब नहीं है। वे भी भरोसा करते हैं कि देखो हमने इतना दान दिया, इतना पुण्य किया, इतनी मस्जिदें बनवा दीं, इतने मंदिर, इतने गुरुद्वारे, इतने ब्राह्मणों को भोजन करवाया, इतने अस्पताल खोल दिये, इतने स्कूल चलाए, हमने इतना पुण्य किया। इस पुण्य के बल पर वे सोचते हैं कि पा लेंगे सत्य को, तो भ्रांति है उनकी। क्योंकि वह पुण्य भी अहंकार की ही घोषणा है। यह पुण्य भी अहंकार का ही आभूषण है। यह पुण्य भी जंजीर है। माना कि सोने कि है, मगर है जंजीर ही। पाप होगी जंजीर लोहे की, पुण्य होगी जंजीर सोने की; मगर इससे क्या फर्क पड़ता है, जंजीर तो जंजीर है, दोनों बांध लेती हैं।

करें भरोसा पुन्न का, साहब बिसराया।

यह आदमी जो कहता है: मैंने पुण्य किया, यह भी तो कर्ता बन रहा है। कर्ता बन रहा है कि चूका, कि आपे से घिरा, कि फिर सागर में मर्म को नहीं समझ पाया। एक ही पुण्य है इस जगत में और वह पुण्य है: यह जानना कि मैं कर्ता नहीं हूं, परमात्मा कर्ता है। और एक ही पाप है इस जगत में--यह जानना कि मैंने किया और परमात्मा कर्ता नहीं है, कर्ता मैं हूं।

करें भरोसा पुन्न का, साहब बिसराया।

बूड गए तरबोर को, कहूं खोज न पाया।।

ऐसे लोग कितना ही खोजते रहें, कभी खोज न पायेंगे। इतनी खोज ऐसी है, जैसे कोई चम्मच से ले कर और सागर को नापने चले। अहंकार की छोटी-सी चम्मच--तुम अथाह सागर को नापने चले हो!

मैंने सुना है: यूनान के सागरतट पर एक आदमी एक छोटा सा गड्ढा खोद कर बैठा था और एक चम्मच हाथ में ले कर भाग कर जाता, सागर से पानी भरता और आ कर गड्ढे में डालता। अरस्तू घूमने निकला था। उसने यह देखा। वह घूम रहा था सुबह। बार-बार उसने देखा। वह थोड़ा हैरान हुआ। उसे बड़ी बेचैनी भी हुई। किसी के काम में बाधा तो नहीं डालनी चाहिए। लेकिन फिर जिज्ञासा को रोक न सका, तो उसने पूछा कि भई, तुम यह क्या कर रहे हो? चम्मच से पानी भर-भर कर इस गड्ढे में डाल रहे हो! उसने कहा, मैंने तय किया है कि सागर को उलीच कर रहूंगा। अरस्तू हंसा। उसने कहा कि भाई पागल हो जाओगे? पागल तुम हो ही, नहीं तो ऐसा विचार ही कैसे उठता! यह छोटा-सा गड्ढा, यह जरा-सी चम्मच, इतने विराट सागर को...जरा हिसाब तो लगाओ!

और वह पागल खूब खिल-खिल कर हंसने लगा। तो अरस्तू ने पूछा कि तुम हंसते क्यों हो? बात क्या है? उसने कहा, मैं इसलिए हंसता हूं कि अगर मैं पागल हूं, तो तुम कौन हो! मैंने सुना है कि छोटी सी खोपड़ी से परमात्मा को समझने की चेष्टा में लगे हो। तुम अपने छोटे से तर्क की चम्मच से अथाह को थाह पाने चले हो!

कहते हैं, अरस्तू बहुत उदास हो गया। बात तो सच थी। अरस्तू यूनान का सबसे प्रसिद्ध दार्शनिक था और सबसे बड़ा तार्किक। कहते हैं, पश्चिम के तर्कशास्त्र का वही पिता है। तो

जिसने भी यह गड्ढा खोदने का नाटक किया होगा, वह आदमी अदभुत रहस्यवादी संत रहा होगा। रहा होगा बाबा मलूकदास जैसा कोई! ठीक ऐसा ही कोई अलमस्त आदमी रहा होगा। चेताने की चेष्टा करता होगा अरस्तू को कि इस छोटी-सी खोपड़ी में भर न सकोगे विराट को। और तर्क की जरा सी चम्मच!

करें भरोसा पुन्न का, साहब बिसराया।
बूड़ गए तरबोर को, कहुं खोज न पाया।।

यह अथाह है। यह जो सत्य है, चारों तरफ से तुम्हें घेरे हुए, अथाह है। इसे तुम पुण्य की चम्मच से न खोज पाओगे। इसे तुम अहंकार के छोटे से तराजू पर न तौल पाओगे। इसे तो तौलना हो, इसे तो जानना हो, पहचानना हो, तो एक ही उपाय है: इसमें डूब जाओ! इसमें गल जाओ! इसके साथ एक हो जाओ!

साहेब मिल साहेब भए, कुछ रही न तमाई।
कहैं मलूक तिस घर गए, जंह पवन न जाई।।
साध मंडली बैठिके, मूढ जाति बखानी।
हम बड़ा हम बड़ करि मंए, बूड़े बिन पानी।।

और कहते हैं मलूक कि साधुओं के सत्संग में भी बैठने जाते हो, तो वहां भी सत्संग नहीं करते तुम।

साध मंडली बैठिके, मूढ जातिब खानी। वहां भी तुम यही फिक्र करते हो कि मैं ब्राह्मण हूं, कि मैं क्षत्रिय हूं, कि मैं राजा हूं, कि मैं ज्ञानी हूं, कि मेरे पास इतना धन, कि मेरे पास इतना पद! वहां भी तुम मूढता की बातें करते हो। साधुओं के सत्संग में बैठ कर भी तुम सत्संग नहीं कर पाते।

साधु के पास बैठने से थोड़े ही सत्संग होता है। अगर तुम्हारे पास अहंकार की चादर चारों तरफ लिपटी हो, तो साधु बरसता रहेगा और तुम बिना भीगे रह जाओगे। सत्संग तो तभी होता है, जब तुम सब चादरें उतार कर रख दो--नग्न; सब द्वार-दरवाजे खोल दो--निर्भय। सत्संग तो तभी होता है, जब तुम किसी सदगुरु की तरंग को, अपने भीतर जाने दो, अपने हृदय को उसके साथ नाचने दो, जब तुम उसकी तरंग के साथ एक हो जाओ; जब कुछ घड़ियों को तुम मिट जाओ, भूल जाओ।

गुरु के पास तो पहला पाठ सीखना है मिटने का, ताकि फिर एक दिन तुम उस महागुरु के साथ मिट सको। गुरु समझो कि एक छोटा सा सरोवर है, इसमें तुम जैसे झरोखा है, अगर तुम इसमें उतार जाओ तो किसी दिन विराट आकाश में पहुंच जाओगे।

साध मंडली बैठिके, मूढ जाति बखानी। वहां भी तुम अपने अहंकार की ही चर्चा में लगे रहते हो! चर्चा जरूरी नहीं कि तुम प्रकट रूप से करते हो।

यहां लोग हैं। वे खबर भेजते हैं कि हम आना तो चाहते है सुनने, लेकिन पीछे नहीं बैठ सकते। खबर भेजता हैं: आगे बैठने का इंतजाम होना चाहिए। क्यों? जो आगे आये, वह आगे बैठ जाये। जो पीछे आये, वह पीछे बैठ जाये। उन्हें यह बात खलती है कि उनको पीछे

बैठना पड़े। अगर ऐसा कोई आ भी जाये, कुछ कहे भी न तो पीछे बैठा-बैठा तड़फता रहेगा कि पीछे बैठा हूं। सुन नहीं पायेगा कि क्या हो रहा है। यहां क्या घट रहा है, उसमें लीन भी नहीं हो पायेगा, डूब भी नहीं पायेगा। मजबूत लोहे की चादर उसके चारों तरफ जकड़ी है।

कुछ लोग खबर भेजते हैं कि वे नीचे नहीं बैठ सकते, फर्श पर नहीं बैठ सकते। क्यों? क्या तकलीफ है? किसी को कलेक्टर होने की बीमारी है; किसी को कमिश्नर होने की बीमारी है; किसी को मेयर होने की बीमारी है; किसी को मिनिस्टर होने की बीमारी है। बीमारियां इतनी हैं! तो मैं उनसे कहता हूं, आओ ही मत, क्योंकि बेकार होगा आना। नाहक चल कर आओगे-जाओगे, इतनी तकलीफ, इतना समय गंवाओगे, इस बीच कुछ और कर लेना। उपमंत्री हो, तो इस बीच थोड़े चढ़ कर मंत्री बन जाना। डिप्टी कलेक्टर हो, तो कलेक्टर बनने की कोशिश में लगा देना इतना समय। तो कुछ सार होगा। यहां आने से क्या फायदा होगा? वह जो तुम्हारे भाव है, वह तुम्हें वंचित कर देगा। साध मंडली बैठिके, मूढ जाति बखानी।

हम बड़ हम बड़ करि मुए, बूड़े बिन पानी।।

और ऐसे, मलूक कहते हैं, तुम बिनना पानी के डूब मरोगे। चुल्लू भर पानी की भी जरूरत न होगी। हम बड़ कर मुए, बूड़े बिना पानी।

तबके बांधे तेई नर, अजहुं नहिं छूटे।

और जन्मों से तुम बंधे हो इसी मूढता से और अभी तक नहीं छूटे! अब तो चेतो; अब तो जागो! अजहूं चेत गंवार!

तबके बांधे तेई नर...कब के बंधे हो! कितना दुःख पाया! कितनी पीड़ा झेली! कितने दंश, कितने कांटे! लहूलुहान हो गए तुम्हारे पैर। हृदय तुम्हारा छिन्न-छिन्न हो गया है। कहीं कोई शांति नहीं, कहीं कोई आनंद नहीं। फिर भी इस अहंकार को पकड़े हो! कब जाओगे?

तबके बांधे तेई नर, अजहुं नहिं छूटे। कितने जन्मों-जन्मों से यह तुम्हें पकड़े हुए लिए जा रहा है! और भी तुम्हें पकड़े रहेगा। अगर आज नहीं छोड़ा, तो कल कैसे छोड़ोगे? क्योंकि जब भी समय आता है, आज की तरह आता है।

मैंने सुना, एक होटल में, होटल ठीक नहीं चलती थी तो मैनेजर ने एक तरकीब की; उसने एक तख्ती लगा दी होटल पर कि भोजन मजे से करिये, आपको पैसे न चुकाने पड़ेंगे। आपके नाती-पोते चुका सकते हैं। हम आपके नाती-पोतों से ले लेंगे, आप फिक्र न करें।

बड़ी भीड़ हो गई। मुल्ला नसरुद्दीन भी पहुंच गया--अपनी पत्नी, बच्चों, मोहल्ले के बच्चों को भी ले कर और मित्रों को भी लेकर कि आओ। जो भी श्रेष्ठतम भोजन उपलब्ध हो सकता था, खूब डट-डट कर उसने खिलवाया। अब कोई कमी न थी। अब नाती-पोतों की नाती-पोते जानेंगे, क्या लेना-देना उसका! जब बाहर निकलने लगा, तो मैनेजर ने आ कर छः सौ रुपये का बिल उसके हाथ में दे दिया। छः सौ रुपये, और उसने कहा, बिल कैसा! तख्ती को देखो। उसने कहा, वह तो ठीक है। यह आपके बाप-दादे जो भोजन कर गए थे, उसका बिल है। आज का बिल तो हम नाती-पोतों सो ले लेंगे।

ऐसे पीछे से बंधे, आगे से बंधे हम सरकते रहते हैं। तुमने अपने पिछले जन्मों में जो किया है, उससे भी नहीं छूट पाये हो। अभी जो कर रहे हो, वह कल तुम्हें और बांध लेगा।

तबके बांधे तेई नर, अजहुं नहिं छूटे।
पकरि पकरि भलि भांति से, जमदूतन लूटे।।

और कितनी दफे मौत ने तुम्हें लूटा और भलीभांति पकड़-पकड़ कर लूटा, फिर भी तुम अब तक नहीं समझ पाये! कितनी बार मरे, कितनी बार जन्मे; कितनी बार फिर पैदा होते ही फिर उसी दौड़ में लग गए! कितनी बार धन इकट्ठा किया, कितनी बार गंवाया! कितनी बार पत्नी-पति के राग-रंग में पड़े, कितनी बार राग-रंग टूटा! मौत आई--सब छीनती गई। फिर भी तुम जागते नहीं।

तबके बांधे तेइ न, अजहुं नहिं छूटे।
पकरि पकरि भलि भांति से, जमदूतन लूटे।।

हार गए यमदूत भी तुमसे। खूब भलीभांति से पकड़-पकड़ कर खूब तुम्हें पीटते, मारते, खींचते! मगर जैसे ही तुम यमदूतों के हाथ से छूटते हो, तुम फिर उसी काम में लग जाते हो।

काम को सब त्यागी के, जो रामहिं गावै।
दास मलूका यों कहै, तेहि अलख लखावै।।

कहते हैं मलूकः काम को सब त्यागी के, जो रामहिं गावै, एक काम भर कर लो, जो तुमने कभी नहीं किया। अब तक तुम कामवासना में ही पड़े रहे, तुमने सारी ऊर्जा कामवासना में लगा दी, कामना में लगा दी। वही ऊर्जा का थोड़ा सा हिस्सा राम के गुणगान में लगाओ। काम से थोड़ी सी ऊर्जा मुक्त करो, राम से डुबाओ।

दो दिशाएं हैं--काम और राम। काम का अर्थ हैः अंधे की तरह अहंकार की बातों का मान कर चले जाना। राम का अर्थ हैः विराट को सुनना, अनंत की तरफ आंखें उठाना, शाश्वत को गुनगुनाना। जो रामहिं गावै...थोड़ा राम का गीत गुनगुनाओ, थोड़ी राम की मस्ती में लगो।

दास मलूका यों कहै, तेहि अलख लखावै।

और जिसने राम का गीत गाना सीख लिया, जिसने भजा अल्लाह को, जिसने थोड़ी सी गुनगुन की भीतर प्रभु की, उसे वह मिल जाता है जो लक्ष्य है और किसी तरह से साधे नहीं सधता।

तेहि अलख लखावै। जो दिखाई नहीं पड़ता आंखों से, वह दिखाई पड़ता है फिर। जो कानों से सुनाई नहीं पड़ता, वह मधुर, अपूर्व संगीत सुनाई पड़ता है फिर। तो हाथ से छुआ नहीं जाता, वह प्राणों से छुआ जाता है फिर। तेहि अलख लखावै। असंभव संभव हो जाता है राम के साथ।जो नहीं होता किसी भी तरह, वह संभव हो जाता है। अकेले-अकेले संभव हो संभव नहीं होता, असंभव की तो बात ही छोड़ दो।

जो लहर अकेले ही जीने को कशिश कर रही है, विक्षिप्त हो जायेगी। और जो लहर सागर के साथ जीने लगी, जिसने सागर के साथ संबंध घोषित कर दिया और कहा, तुम्हारी हूं;

तुम्हीं गुनगुनाना मुझसे...रामहिं गावै, अब मैं नहीं गाती, तुम ही गाओ मुझसे; अब तुम्हीं धड़को मेरी धड़कन में; तुम्हीं उठो लहर बन कर; तुम्हीं छुओ चांदत्तारों को; तुम्हीं नाचो; मैं हटती हूं, मैं तुम्हें द्वार दरवाजा देती हूं...रामहिं गावै...तेहि अलख लखावै--फिर उसे जो अलक्ष्य है, वह भी उसका लक्ष्य बन जाता है। जो नहीं मिल सकता है, वह भी मिलता है। जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि कभी पा सकेंगे, वह कल्पनातीत भी हमारे ऊपर झरत जाता, बरस जाता।

जरा राम की तरफ आंख उठाओ, तो राम तुम्हारी तरफ आंख उठाये।

मैं समझता हूं तेरी इश्वागिरी को साकी।
काम करती है नजर, नाम है पैमाने का।।

कुछ पीने-पिलाने की जरूरत नहीं, बस उसकी नजर से थोड़ी नजर मिल जाए, काम करती है नजर, नाम है पैमाने का। उस परम प्रियतम की आंखें से थोड़ी आंख मिल जाए, बस एक दरस--सब हो गया! परम कीमिया तुम्हारे हाथ आ गई। उस एक झलक में ही, उसकी आंख से तुम्हारी आंख के मिल जाने में ही, तुम समझ लोगे कि जब तक भूल-चूक कहां हो रही थी।

और ध्यान रखना, परमात्मा तुम्हारी तरफ सादा से देख ही रहा है। उसकी नजर तुम पर गड़ी है। सिर्फ तुम्हीं उसकी तरफ नहीं देख रहे। इसलिए तुम्हारे ही लौटने की बात है। और जब तक तुम उसे न देखोगे, तब तक भूल-चूक होती रहेगी; तुम कंकड़-पत्थरों को हीरे समझोगे।

जो शै है फना उसे बका समझा है
जो चीज है कम उसे सिवा समझा है
है बहरे जहां में उम्र मानिंदे हबाब
गाफिल इस जिंदगी को क्या समझा है?

जो शै है फना, उसे बका समझा है। जो कुछ नहीं है, उसे सब कुछ समझ बैठे हैं। जो मिटने को ही है, उसे जीव समझ बैठे हैं। जो चीज है कम, उसे सिवा समझा है। जो सीमित है, उसे असीम मान बैठे हैं। जो चुक जायेगी। आज नहीं कल, उस पर ऐसा भरोसा किये बैठे हैं, जैसे कभी न चुकेगी। यह जिंदगी चुक जायेगी, ये हाथ खाली रह जायेंगे। इसे ऐसे समझे बैठे हैं, जैसे हमें मरना ही नहीं है; जो और लोग मरते हैं, हम थोड़े ही मरते हैं। हम तो दूसरों को मरघट तक पहुंचा आते हैं। हम तो कभी मरते नहीं।

खयाल रखना, जब भी कोई अर्थी निकले, जानना तुम्हारी ही अर्थी है। जब भी कोई मरता है, तुम्हीं मरते हो। हर मौत तुम्हारी ही मौत की खबर लाती है।

जो चीज है कम उसे सिवा समझा है
है बहरे जहां में उम्र मानिंदे हबाब।

जैसे पानी का बुलबुला, ऐसी है जिंदगी। मानिंदे हबाब!

गाफिल इस जिंदगी को क्या समझा है?

पानी का बुलबुला उठता है; सूरज की किरणें पड़ती हैं, इंद्रधनुष के रंग फैल जाते हैं। अभी है, अभी गया--ऐसी ही जिंदगी है--खूब इंद्रधनुषी! हाथ कुछ भी नहीं आता। इंद्रधनुष को पकड़ो, हाथ खाली के खाली रह जाते हैं; दूर से बड़े सुहावने, पास से शून्य।

है बहरेजहां में उम्र मानिंदे हबाब
गाफिल इस जिंदगी को क्या समझा है?

ईश्वर की तरफ थोड़ी आंख उठे, तो तुम्हारे पास कसौटी आये, तौलने का तराजू आये, मापदंड मिले। तो फिर उस एक छोटी सी किरण से जो उसकी आंख से तुम्हारी आंख में उतर जायेगी, तुम इस सारी जिंदगी को नाप लोगे। एक क्षण में तुम्हें अहसास हो जायेगा--सब असार है। फिर जरूरी नहीं कि तुम इसे छोड़कर भाग जाओ। अगर परमात्मा यही मरजी है कि इसमें रहो, की इसी में बढ़ो, तो तुम इस में ही रहोगे, इसी में ही बढ़ोगे। अगर उसकी मरजी है कि हटा ले तुम्हें यहां से, तो तुम हट जाओगे। लेकिन अब न अपनी मरजी से रहोगे, न अपनी मरजी से जाओगे। जिहि विधि राखे राम! फिर तुम उसी विधि से रहने लगोगे।

जिहि विधि राखे राम--यही संन्यास का मूल सूत्र है, क्योंकि यह समर्पण का मूल सूत्र है। संन्यास यानी समर्पण।

मलूकदास ने संन्यास की यह जो व्याख्या की है, इस पर खूब ध्यान करना। इसमें कुंजी छिपी है, जिससे जीवन के मंदिर के द्वार खोले जा सकते हैं।

आज इतना ही।

क्रांतिद्रष्टा संत गूंगी प्रार्थना काम पक जाए, तो राम
नाचो--गाओ--डूबो प्रभु-मिलन
दूसरा प्रवचन
श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः दिनांक १२ मई, १९७७

प्रश्न-सार

बाबा मलूकदास जैसे अलमस्त फकीरों की परंपरा क्यों नहीं बन पाती?
प्रार्थना में क्या कहें? प्रभु-कृपा कैसे उपलब्ध हो?
शरीर और मन के संबंध तृप्त नहीं करते, क्या करूं?
कुछ समझ में नहीं आता?
जब खो ही गये, तो परमात्मा से मिलन कैसा?

पहला प्रश्नः मलूक बाबा जैसे पियक्कड़ों की परंपरा तो क्या, संगी-साथी भी कम सुनाई पड़ते हैं! पियक्कड़ों के साथ पीने में सदा से क्या भय और एतराज रहा है? कृपा करके कहें।

परंपरा आंखवालों की बनती ही नहीं; परंपरा अंधों की बनती है। अंधों के पीछे जो अंधों की कतार है, उसका काम है--परंपरा। आंखवाले तो अकेले होते हैं। आंखवालों की भीड़ नहीं होती। भेड़ें चलती हैं भीड़ में। "सिंहों के नहिं लेहड़े'।

संतों की कोई जमात नहीं है। जमात के पीछे ही, भीड़ के पीछे ही भय छिपा है। भेड़ चलती है भीड़ में--भय के कारण। अकेले होने का साहस नहीं है। दूसरों के संग-साथ में भय छिपा रहता है। अकेले होते ही भय उभर आता है।

समाज है इसीलिए--कि आदमी भयभीत है। जैसे-जैसे आदमी निर्भय होगा वैसे-वैसे समाज तिरोहित होगा। व्यक्ति होंगे फिर; समाज जैसी चीज शिथिल होती जायेगी।

समाज का अर्थ ही यही है अकेले हम बहुत अधूरे हैं, चलो, हाथ में हाथ डाल लें। एक भ्रम पैदा करें--कि अकेले नहीं हैं।

तुमने देखा: एक अकेला आदमी गुजरता हो मरघट से, तो डरता है। दूसरा आदमी साथ हो जाए, तो डर कम हो जाता है। दूसरा भी इतना ही डर रहा था। दोनों डरे हुए हैं; दोनों अलग-अलग डरे हुए हैं। लेकिन दोनों साथ होकर सोचते हैं कि शायद कोई आश्वासन मिल गया।

दो डरे हुए आदमियों के साथ होने से क्या फर्क पड़ता है? डर दुगुना हो जाना चाहिए; और क्या होगा! लेकिन भ्रम पैदा होता है--कि चलो, दूसरा है। दूसरे की मौजूदगी से एक आभास पैदा है कि जरूरत पड़ेगी, तो कोई संग-साथ है। इसलिए हम परिवार बनाते हैं। अकेले में भय है। समाज बनाते हैं। राष्ट्र बनाते हैं। राज्य बनाते हैं। समूहों पर समूह निर्मित करते हैं। लेकिन सब के पीछे गहरे में भय है।

संत तो अकेला है। और संत के पीछे और संत के साथ तो केवल वे ही हो सकते हैं, जिनकी अकेले होने की हिम्मत है। फर्क को समझना। ऐसा नहीं कि बुद्ध के साथ लोग नहीं चले। चले--हजारों लोग चले। लेकिन वही लोग चले, जो भीड़ की तलाश में न थे; जिन्हें अकेले होने की हिम्मत थी। संतत्व का अर्थ ही है; अकेले होने का साहस।

अगर तुम बुद्ध के पास गये होते, तो तुम पाते: दस हजार भिक्षु बैठे है। ऊपर से तो ऐसा ही दिखेगा कि यह भीड़ है। मगर तुम भ्रांति में पड़ गये। यह भीड़ नहीं है। यहां एक-एक आदमी अपनी वजह से बैठा है। ऊपर से तो भीड़ दिखाई पड़ती है, क्योंकि दस हजार लोग बैठे हैं, लेकिन ये दस हजार में एक भी आदमी ऐसा नहीं है, जो नौ हजार नौ सौ निन्यानबे के कारण बैठा है। अगर नौ हजार नौ सौ निन्यानबे चले जायेंगे, तो उठ जायेगा उनके साथ--ऐसा नहीं है। अपने कारण बैठा है। यहां एक-एक अकेला बैठा है। यहां दस हजार एक बैठे हैं। इसको खयाल में लेना।

तुम दस आदमियों के साथ ध्यान में बैठ सकते हो। लेकिन जैसे ही तुम ध्यान में जाओगे, वहां दस इकट्ठे न रह जायेंगे। प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग हो गया। ध्यान में उतरने ही अलग-अलग हो गया। आंख बंद होते ही भीड़ खो गई। तुम बचे। तुम अकेले बचे; दूजा कोई न रहा।

यह जो भीड़ से जुड़ा हुआ आदमी है, परंपरा से जकड़ा हुआ आदमी है, वह ध्यान भी नहीं कर पाता, क्योंकि ध्यान में अकेला होना पड़ेगा। ध्यान तो मार्ग है--संतत्व का।

तुम पूछते हो: बाबा मलूकदास जैसे पियक्कड़ों की परंपरा क्यों नहीं बनी? परंपरा बन नहीं सकती।

कभी-कभी कोई बिरला व्यक्ति उस ऊंचाई तक उठता है। ऐसे तारे कभी-कभी उगते हैं और खो जाते हैं। फिर सदियों प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

तुम भी ऐसे तारे बन सकते हो, अगर भय छोड़ो। तुम भी ऐसे ज्योति पिंड बन सकते हो, अगर भीड़ से नाता छोड़ो।

तुम खयाल करते हो: तुमने कहां-कहां अपने को भीड़ से बांध रखा है? कोई कहता है: मैं हिंदू। कोई कहता है: मैं मुसलमान। कोई कहता है: मैं ईसाई। कोई कहता है: मैं सिक्ख। कोई कहता कि मैं भारतीय; कोई कहता; मैं चीनी; कोई कहता: मैं जापानी। कोई कुछ कहता; कोई कुछ कहता। हजार-हजार समूहों से हमने संबंध बांध रखा है।

एक आदमी न मालूम कितने समूहों से बंधा है! इन सारे बंधनों के ऊपर उठते ही तुम भी संतत्व को उपलब्ध हो जाओगे।

संतों की भीड़ नहीं होती--और न संतों की कोई जमात होती है।

फिर मलूकदास जैसे लोगों की जमात तो और भी मुश्किल है। इतने मस्त लोगों के साथ तो तुम चलने में घबड़ाते हो। इनकी मस्ती तुम्हें और भी भय से भर देती है।

मस्ती से बड़ा भय है। क्यों? क्योंकि मस्ती के लिए एक अनिवार्य शर्त है कि तुम अपना नियंत्रण छोड़ो। डोलना हो--मस्त हाथी की भांति, तो नियंत्रण न रख सकोगे। शराबी की भांति चलना हो तरंग में, तो फिर नियंत्रण न रहेगा। और नियंत्रण गया--कि अहंकार गया।

अहंकार नियंत्रण है। अहंकार पूरे समय बैठा हुआ है--नियंत्रण जमाये। अहंकार तानाशाह है तुम्हारे भीतर। अहंकार जो कहता है, वही तुम कहते हो। जो कहता है: मत करो, वह तुम नहीं करते। अहंकार तुम्हें चलाता है, तो तुम चलते हो। अहंकार बिठाता है, तो बैठते हो।

मस्त आदमी का क्या अर्थ होता है? मस्त आदमी का अर्थ होता है: अब कोई चलानेवाला नियंत्रण भीतर न रहा। अब तो छोड़ दिया सब परमात्मा पर। जहां उसकी मरजी हो, ले जाए। डुबाना हो--डुबा दे; हम गीत गुनगुनाते डूब जायेंगे। मिटना हो--मिटा दे; हम मुस्कुराते मिट जायेंगे। जो उसकी मरजी; जैसी उसकी मरजी।

अहंकार कहता है: हिसाब से चलो; कदम-कदम फूंक कर रखो; कहीं भटक मत जाना। होशियारी रखो; चालाकी रखो। तो मस्तों के साथ नहीं चल पाते।

बाबा मलूकदास तो पियक्कड़ हैं। पियक्कड़ के साथ जाने का मतलब ही यह होता है कि तुम भी पीने की हिम्मत जुटाओगे। नहीं तो पियक्कड़ के साथ बैठने का क्या सार? और खतरा यह है कि पीने वालों के साथ बैठो, तो सत्संग के परिणाम होते हैं। शराबियों के पास बैठोगे, शराब पीने लगोगे। संतों के पास बैठोगे, शराब पीने लगोगे।

सत्संग का अर्थ ही क्या है? सत्संग का अर्थ है कि तुम संत की बीमारी के लिए खुले हो। अगर संतत की बीमारी तुम्हारे तरफ आने लगेगी, तो तुम प्रतिरोध न करोगे। तुम कहोगे: आओ, द्वार खुले हैं।

संतों से लोग डरते हैं! डर के कारण पूजा भी कर लेते है। पूजा--डर का ही एक उपाय है। पैर छू कर--और भोगे! बैठते नहीं है--पास में। पैर छूते हैं और कहते हैं: बाबा, बख्शो। पैर छूकर यह कहते हैं कि आप भले, हम भले; आपकी कृपा बनी रहे। आपका आशीर्वाद बना रहे। लेकिन संतों के पास ज्यादा देर रुकते नहीं। खतरा है।

कठिन है
बहुत कठिन है
बैठे-बैठे सहना--सौंदर्य को
धुली धुली दुखा का
बिखरा बिखरा हुआ रूप
हलके हलके बादल
खुली-मुंदी हलकी धूप
कठिन है
झांक कर रह जानना
इन्हीं खिड़की से
वृक्षों पर नये पत्ते
पत्तों की हर-हर
पड़े बिस्तर पर सुनना
बाहर बरसा की झड़ी
कठिन है
बहुत कठिन है।

पुकार आती है। बाहर निकला सूरज--पुकार आती है। वसंत आया, फूल झरे-पुकार आती है गंध लाती--हजार हजार संदेश। कहती: आओ बाहर। फिर कठिन है पड़े रहना--द्वार-दरवाजे बंद किए।

जैसे प्रकृति बुलाती है।...सुनते हैं--इन पक्षियों को! ऐसे परमात्मा भी बुलाता है--संतों से।

संतों के पास अगर अपने को रखोगे, तो उनके हृदय की धड़कन में तुम्हें परमात्मा की गूंज सुनाई पड़ेगी।

कठिन है
बहुत कठिन है
बैठे बैठे सहना--सौंदर्य को

चलना पड़ेगा; उठना पड़ेगा; साथ होना पड़ेगा।

जब पुकार आयेगी, तो तुम पुकार को झुठला न सकोगे। इसलिए लोग होशियार हैं--दूर ही रहते हैं। दूर रहने के हजार बहाने खोज लेते हैं। कोई दूर रहता कह कर--कि संतत्व में कुछ धरा नहीं है; परमात्मा इत्यादि सब बातें हैं; बकवास है। स्वर्ग, नरक, मोक्ष--कुछ होते नहीं हैं। कहां की आत्मा? कैसी आत्मा? बस मनुष्य तो मिट्टी है। दो दिन का खेल है--खेल को। फिर गये--सो गये।

कोई नास्तिक बन कर संतों के पास आने से बचता है। यह एक तरकीब है--नकारात्मक तरकीब है। यह भी तरकीब बचने की है--खयाल रखना। नास्तिक संतों से बचने के उपाय खोज रहा है। अपने चारों तरफ बागुड़ लगा रहा है--कि है ही नहीं, तो जाना क्यों? जब यही बात पक्की मन में बिठा ली, दृढ़ कर लिया विचार--कि ईश्वर नहीं, स्वर्ग नहीं, मोक्ष नहीं, समाधि नहीं, सब पाखंड है; सब वितन्डा है--जब ऐसा पक्का कर लिया, जाने का भाव ही न उठेगा। और अगर कभी भूल-चूक से पहुंच भी गए, तो कानों में इतना सीसा भरा है--इन धारणाओं का--कि कुछ सुनाई पड़ेगा। अगर संत को कभी देखा, भी तो जो गलत है, वही दिखाई पड़ेगा; सही दिखाई ही न पड़ेगा। आंखें तुमने पहले से तैयार कर रखी हैं--गलत को देखने के लिए।

एक दूसरी तरकीब भी है, जो आस्तिक की तरकीब है। तुम यह तो जानते हो, कि नास्तिक शायद बचने की कोशिश कर रहा है, लेकिन मैं तुमसे कहना चाहता हूं: आस्तिक भी बचने की कोशिश कर रहा है। आस्तिक भी उपाय खोजता है कि न जा पाए संत के पास। उसके उपाय क्या हैं? एक उपाय उसका--कि वह मुर्दा संतों की पूजा करता है। राम में कोई खतरा नहीं है। कृष्ण में कोई खतरा नहीं है। क्राइस्ट में अब कोई खतरा नहीं है। कबीर, नानक में अब कोई खतरा नहीं है। जब जिंदा थे, तब खतरा था।

मरा संत क्या करेगा! तुम तो मरे मरे हो ही, तुम्हारा संत भी मरा हुआ! दो मुरदों के बीच खूब बन जाती है; दोस्ती बन जाती है। मुरदा संत तुम्हें बदल नहीं सकते। इसलिए आस्तिक मुरदा संतों को पूजता है; और जिंदा संतों से बचता है। क्योंकि जिंदा संत खतरनाक हैं; चिनगारी हैं। गिरेगी, तो तुम्हारा घास-फूस जल जायेगा।

कबीर ने कहा है: जो घर फूंके अपना, चले हमारे संग। तुम्हारा घर फूंक जायेगा। तो राख की पूजा...। राख को तुम कहते--विभूति। राख की पूजा करो। राख को लगाते तिलक की तरह, टीके की तरह।

जीवित संत अंगारा है; तुम राख पूजते।

तो या तो उपाय है कि मुरदा संतों को पूजो। या अगर कभी भूल-चूक जिंदा संत के पास पहुंच जाओ, तो कहो कि महाराज आऊंगा कभी। माना कि आप बिलकुल ठीक हैं...। यह माना कि आप बिलकुल ठीक हैं--बचने की तरकीब है। क्योंकि जब मान ही लिया कि बिलकुल ठीक हैं, तो अब करने को क्या बचा? बेचैनी गई। मान ही लिया कि आप बिलकुल ठीक हैं। मान नहीं लिया--कि मैं पापी; मैं पतित; आप महान। कहां आप, कहां मैं! मैंने

स्वीकार ही कर लिया सब कि आप जो कहते हैं, सब अक्षरशः ठीक है। मगर अभी मेरा समय नहीं आया है। जब मेरा समय आयेगा, तब आऊंगा।

तो पैर में दो फूल चढ़ा कर चले आये!

पूजा भी उपाय है--संत से बचने का।

संत के पास वही पहुंचता है, जो सारे उपाय बचने के छोड़ देता है। जो कहता है कि चलो, साहस से एक बार आंख खोल कर देखें कि संतत्व क्या है। कौन जाने, जिस जीवन-निधि को हम खोज रहे और-और, अलग-अलग दिशाओं में, संतत्व में ही छिपी हुई पड़ी हो। कौन जाने...।

न तो संत के पास न-कार में भर कर जाना, और न अ-कार से भर कर जाना। न नास्तिक की तरह जाना, न आस्तिक की तरह जाना। संत के पास तो खुला हृदय ले कर जाना; खुली आंख लेकर जाना; दर्पण हो कर जाना--कि जो है, वह दिखाई पड़ जाए। और जो है--वह दिखाई पड़ जाए, तो निश्चित ही...।

कठिन है
बहुत कठिन है
बैठे-बैठे सहना--सौंदर्य को
धुली धुली दुखा का
निखरा बिखरा हुआ रूप
हलके हलके बादल
खुली-मुंदी हलकी धूप
कठिन है
बहुत कठिन है
झांक कर रह जाना
इन्हें खिड़की से
वृक्षों पर नये पत्ते
पत्तों की हर-हर
पड़े-पड़े बिस्तर पर सुनना
बाहर बरसा की झड़ी
कठिन है
बहुत कठिन है।

जब तुम परमात्मा की झर-झर सुनोगे--संत के हृदय में; परमात्मा कल-कल नाद सुनोगे--संत के हृदय में; जब तुम संत के हृदय के पास कान लगा कर बैठ जाओगे, वही तो शिष्यत्व का अर्थ है।...

शिष्यत्व का अर्थ नहीं है: पूजन। शिष्यत्व का अर्थ है: श्रवण, सुनने की क्षमता। शिष्यत्व का अर्थ है: जो है, उसे वैसा ही देखूंगा; बदलूंगा नहीं; व्याख्या न करूंगा। अपने को बीच

में न लाऊंगा; अपने को हटा कर देखूंगा। एक बार तो सही: खिड़की से झांक कर देख लूं कि बाहर क्या हो रहा है। एक बार तो देख लूं कि मनुष्य के भीतर क्या हो सकता है--क्या संभावना है? जिसके भीतर हुआ है, उसके भीतर एक बार झांक कर देख लूं, तो अपनी भी सुधि आ जाए।

तो लोग संतों से डरते हैं। फिर पियक्कड़ों संतों से तो और भी ज्यादा संत भी दो तरह के हैं। एक ती संत हैं, जिनको हम कहें--मर्यादा, समाज, संस्कृति, सभ्यता--उसके अनुकूल। जैसे हम राम को कहते हैं: मर्यादा पुरुषोत्तम। तो एक तो संत होते--राम जैसे; जो रती भर समाज की मर्यादा से हटते नहीं।

एक संत होते हैं--क्रांति-द्रष्टा; कृष्ण जैसे; जिनके जीवन में कोई मर्यादा नहीं होती। यह कुछ संयोग की बात नहीं कि इस देश ने राम को आंशिक अवतार कहा और कृष्ण को पूर्ण अवतार कहा। जिन्होंने जाना, उन्हें यह कहना ही पड़ा। जो परंपरा के अनुकूल चलता है; वह अंश ही है--पूरा नहीं। जो परंपरा को ध्यान में रख कर चलता है--लीक-लीक, उसमें अभी अंश ही परमात्मा उतरा है--पूरा परमात्मा नहीं।

पूरा परमात्मा तो जब उतरेगा, जब कैसी मर्यादा? कैसी सीमा? बाढ़ की तरह उतरेगा। पूरा परमात्मा कुछ नल की टोंटी नहीं है--कि तुमने खोला और अब तुम्हारी मर्यादा में उतरा! पूरा परमात्मा तो बाढ़ की तरह हैं--कि बादल खुल गये, और हुई मूसलाधार वर्षा; कि भर गये नदीतालाब, सर-सरिताएं; कि कंप गई--सारी पृथ्वी।

तो एक तो संत का सौम्यरूप है; राम उसके प्रतीक हैं। एक संत का क्रांतिरूप है; कृष्ण उसके प्रतीक हैं। मलूक कृष्ण की धारा में आते हैं। वह पियक्कड़ों की धारा है।

राम का उपयोग इतना ही है--कि अगर तुम में हिम्मत न हो, तो चलो मूसलधारा वर्षा में स्नान नहीं कर सकते हो, कोई हरजा नहीं है। अपने घर की नल की टोंटी के नीचे बैठ कर ही कम से कम स्नान तो कर लो। आज नल की टोंटी के नीचे स्नान करोगे, तो शायद स्नान का रस लग जाए। तो कल शायद हिम्मत जुटा कर नग्न खड़े हो सको--वर्षा के नीचे; और आनंदित हो सको--निसर्ग में।

परंपरागत संत की इतनी ही उपयोगिता है कि वह तुम्हें किसी दिन क्रांतिकारी संत के पास पहुंचा दे। वह सीढ़ी है; सीढ़ी से ज्यादा नहीं है। अंततः तो किसी न किसी दिन बाबा मलूकदास जैसे किसी आदमी के हृदय में झांक कर देखना होगा। वहां परमात्मा अपने पूरे रूप में प्रकट होता है।

मयाल-ए-सोज ए गमहा ए निहानी।

देखते जाओ भड़क उठी है सम्मे से जिंदगानी देखते जाओ।

जब कभी कोई मलूक जैसा व्यक्ति पैदा होता, तो उसकी जीवन की मशाल पूरी भड़क उठी है सम्मे जिंदगानी देखते जाओ। मगर उतनी विराट लपट को शायद तुम न झेल पाओ; शायद वैसी आंच को तुम न झेल पाओ; तुम अंधेरे के आदी हो, तो कोई हरजा नहीं है। छोटा-सा दीया जलाओ। राम ऐसे ही छोटे दीये हैं।

जो संतत तुम्हारी धारणाओं के अनुकूल पड़ता है, वह मिट्टी का दीया है, जिसे तुमने जला लिया है। रोशनी भी होती है। फिर एक मशाल भी है--दोनों छोरों से जलती हुई मशाल है; रोशनी उससे भी होती है। रोशनी का पूरा मजा तो मशाल में है। मगर चलो, स्वाद। कम से कम अंधेरे से रोशनी में आये। छोटे टिमटिमाते दीये को रोशनी ही सही; फिर भी भली है।

मलूकदास जैसे व्यक्ति, जिस भाषा में बोलते हैं, वह भाषा भी घबड़ा देती है--पंडित को, पुरोहित को। विशेषकर उनको, जो अपने को धार्मिक मानते हैं और धार्मिक नहीं हैं, उनके पैरों के नीचे की जमीन खिंच जाती है। उनके पैरों के नीचे संदूक हो जाती है। वे घबड़ा उठते हैं।

मलूक जैसे व्यक्तियों का विरोध होने लगता है। उनके पास आना तो दूर, उनसे दूर ले जाने के सब उपाय होने लगते हैं।

वह आ रहा है असा टेकता हुआ वाइज।

बहा दे इतनी कि साकी कहीं न थाह मिले।।

वह जो धर्मगुरु चला आ रहा है--अपनी लकड़ी टेकते हुए...। मलूक जैसे संत तो कहते: हे प्रभु, इतनी शराब बहा दे कि यह डूब ही जाए। इसके कहीं थाह भी न मिले।

उठे कभी घबरा के तो मयखाने से हो आये।

पी आये तो फिर बैठा रहे याद-ए-खुदा में ए रियाज।।

एक ऐसी परम दृष्टि है, जहां जीवन का अखंड रूप में देखा जाता; जहां जीवन के साधारण सुख और परमात्मा के विराट सुख में विरोध नहीं है। जहां जीव के साधारण सुख में भी परमात्मा के ही परम सुख की किरण है। जहां हमें इस जगत में जो सौंदर्य प्रकट हो रहा है, उस सौंदर्य को भुलाने के लिए नहीं, उस सौंदर्य में गहरे उतर जो का नियंत्रण है। फूल में भी परमात्मा है; काश! तुम फूल में गहरे उतर सको! हरे-हरे नये-नये आये पत्तों में भी परमात्मा ही आया है; काश, तुम पत्तों में गहरे उतर सको! तुममें भी परमात्मा ही विराजमान है।

जहां-जहां तुमने सुख की थोड़ी झलक भी पाई है--झूठी ही सही--सपना ही सही; लेकिन जहां भी तुमने सुख की थोड़ी-सी झलक पाई है, वहां परमात्मा ही करीब था। उसकी ही सुगंध आई थी।

वह तो क्रांतिद्रष्टा संत है, उसके लिए सृष्टि में और स्रष्टा में विरोध नहीं है। यह सृष्टि भी स्रष्टा का ही रूप है। यह तथाकथित साधु-संन्यासी को, तथाकथित महात्मा को, तथाकथित धर्मगुरु को बहुत खटकने-अखरने वाली बात है।

धर्मगुरु का तो सारा व्यवसाय इसमें है, कि वह तुम्हें संसार के विरोध में खड़ा कर दे। परमात्मा के पास तो नहीं पहुंचा पाता, लेकिन संसार के विरोध में खड़ा कर देता है। संसार को तुम्हारे भीतर से मिटा भी नहीं पाता, लेकिन विषाक्त कर देता है। परमात्मा का सुख तो उठाता ही नहीं, इसी जीवन का जो थोड़ा बहुत सुख उतरता था, वह भी उतरना बंद हो जाता है। तुम बिलकुल रूख-सुख जाते हो।

मस्ती से भरे हुए संतों की धारणा बड़ी और है। वे तुमसे कहते हैं: छोड़ने को यहां कुछ भी नहीं है; पाने को सब कुछ है। वे तुमसे कहते हैं: छोड़ने की बात ही गलत शुरुआत है। संसार छोड़ना नहीं है; प्रभु को पाना है। फिर उसको पाने से जो छूट जाए--छूट जाए। उसको पाने से जो अपने से छूट जाए--छूट जाए।

गर यार मय पिलाये, तो फिर क्यू न पीजिये
जाहिद नहीं, मैं शेख नहीं, कुछ बली नहीं।।

अगर परमात्मा ही पिला रहा हो, तो फिर क्यों न पीजिये! जाहिद नहीं, मैं शेख नहीं, कुछ वली नहीं। परमात्मा जो पिलाये--पीयो। परमात्मा जो दिखाये--देखो। परमात्मा जैसा नचाये--नाचो।

यह जो परमात्मा का परम स्वीकार है, इसके कारण मलूकदास जैसे लोगों को समाज की प्रताड़ना झेलनी पड़ती है। मलूकदास जैसे लोगों को समाज का विरोध झेलना पड़ता है।

समाज की बड़ी टुच्ची धारणाएं हैं, जिनको कोई भी मूल्य नहीं है। लेकिन समाज इन्हीं धारणाओं से जीता है और घबड़ाता है कि वहीं वे धारणाएं छूट न जाए। उन धारणाओं से कुछ मिला भी नहीं है; कुछ पाया भी नहीं है। लेकिन उन धारणाओं में इतने दिन रहे हैं कि छूट जाए धारणा, टूट जाए धारणा, तो प्राण कंपते हैं।

ऐसा ही समझो कि जैसे कोई आदमी बहुत दिन तक जंजीरों में रह गया हो, बहुत दिन तक कारागृह में रहा हो, फिर उसकी तुम जंजीरें तोड़ो, तो उसे बेचैनी होती है। वे जंजीरें तो अब उसके आभूषण बन गई हैं। वे जंजीरें तो अब उसके शरीर का हिस्सा हो गई हैं।

ऐसा हुआ: फ्रांस की क्रांति में वेस्टाइल के किले को क्रांतिकारियों ने तोड़ दिया और उसे किले में बंद कारागृह में बड़े पुराने कैदी थे। कोई चालीस साल से बंद था, कोई तीस साल से बंद था, कोई तो ऐसा था कि पचास साल से बंद था। उस किले में केवल आजीवन जिनको सजाएं मिली थीं, ऐसे हजारों कैदी थे। उन्होंने उन सबको छुट्टी दे दी; बाहर निकाल दिया। सोचा था क्रांतिकारियों ने कि वे बड़े प्रसन्न होंगे। लेकिन वे बड़े नाराज हुए। उनमें से तो कुछ ने साफ इनकार कर दिया--बाहर जाने से। उन्होंने कहा: हम चालीस साल से, पचास साल से यहां हैं; बूढे हो गये हैं, अब कहां जायेंगे? अब तो हमें याद भी नहीं है कि हम किस को खोजेंगे! किसी घर में। निवास करेंगे? और अब तो हम सब काम-धाम भी भूल गये हैं। अब हम काम-धाम इस बुढापे में क्या करेंगे? और फिर हमें हमारी कोठरी रास आती है। पचास साल जो कोठरी के अंधेरे में गया हो, बाहर की रोशनी तिलमिलायेगी।

और तुम चकित होओगे जानकर...।फिर भी क्रांतिकारी तो जिद्दी, उन्होंने बाहर निकाल ही दिया; जबरदस्ती बाहर निकाल दिया। दुनिया में तुम किसी आदमी को जबरदस्ती स्वतंत्र नहीं कर सकते। जबरदस्ती परतंत्र तो कर सकते हो, लेकिन जबरदस्ती स्वतंत्र नहीं कर सकते। कैसे करोगे?

आधी रात होते-होते अनेक उनमें से लौट आये। और उन्होंने कहा कि उन्हें नींद ही नहीं आती! एक ने तो कहा कि मेरी जंजीरें मुझे वापस लौटा दो। क्योंकि उनके बिना मुझे लगता

है, मैं नंगा-नंगा हूं। मैं सो ही नहीं सकता। तुम थोड़ा सोचो: पचास साल जिस आदमी के हाथ में लोहे की मजबूत जंजीरें, पैर में मजबूत बेड़ियां पड़ी हों; वह उन्हीं के साथ सोया--पचास साल तक। अब करवट लेता है, तो खाली-खाली लगता है। न जंजीर बजती, न आवाज होती! न वजन मालूम होता। नींद उसकी टूट-टूट जाती है। आदत!

साधारण आदमी आदत से जीता है। और क्रांतिद्रष्टा संतों का एक ही आग्रह है: आदम से जागो; होश से जीओ।

और मजा यह है कि यह कुछ ऐसा होश है कि एक तरफ होश बढ़ता है और एक तरफ मदमस्ती बढ़ती है। यह कुछ ऐसा होश है कि पुरानी बेहोशी चली जाती है और एक नये तरह की, एक अभिनव तरह की बेहोशी आती है। पुराना अज्ञान चला जाता है और एक नये तरह की निर्दोषता का आविर्भाव होता है।

अब तुम्हें धन के कारण मस्ती नहीं आती; न पद के कारण मस्ती आती है; अब तुम्हें अकारण मस्ती आती है। तुम मस्ती में डोलते ही रहते हो। जैसे मस्त हाथी डोलता हो--कहां मलूक ने; कि जैसे शराबी पी कर चलता हो--ऐसा जिसने परमात्मा को पी लिया है, उसकी चौबीस घड़ियां मस्ती में डूबी हुई बीतती हैं।

मगर ऐसा आदमी समाज के लिए बहुत झंझट का कारण हो जायेगा। क्योंकि इतने मस्त आदमियों को गुलाम नहीं बनाया जा सकता। इतने मस्त आदमी मस्ती से जीते हैं। इतने मस्त आदमियों को तुम भेड़ें नहीं बना सकते। ऐसे मस्त आदमी सिंहों की तरह जीते हैं। और समाज भेड़ें चाहता है। राजनेता, पंडित, पुरोहित भेड़ें चाहता हैं; ऐसे आदमी नहीं चाहते। इतने खतरनाक आदमी झेलने की क्षमता अभी समाज की नहीं है।

समाज अभी संतों को झेलने के योग्य नहीं हो पाया है। अभी संतों का कोई समाज नहीं हो पाया है। अभी धर्म के नाम पर पाखंड जीता है, धर्म के नाम पर सत्य नहीं।

अभी तुम उस संत की पूजा करते हो, जो तुम्हारे आंगन में समा जाता है। तुम उस संत से तो भयभीत हो जाते हो, जो तुम्हारे आंगन को तोड़ दे; तुम्हारी दीवालों को उखाड़ दे; तुम्हें खुले आकाश के नीचे ले आये।

इसलिए मलूक जैसे लोगों के पीछे कोई परंपरा नहीं बनती; संगी-साथी भी पैदा मुश्किल से होते हैं--कभी-कभार।

समाज इनसे भयभीत रहा है। अक्सर तुम भय के कारण पूजा भी करते हो।

तुम्हारी पूजा में भी भय ही होता है।

सभी दुनिया की भाषाओं में एक बहुत ही अरुचिपूर्ण, कुरुचि से भरा हुआ शब्द उपयोग में आता है, वह है: ईश्वर भीरु--गाड फीयरिंग। धार्मिक आदमी को हम कहते हैं: ईश्वर भीरु। यह कोई बात हुई! धार्मिक आदमी और ईश्वर से भयभीत?

महात्मा गांधी कहते थे: मैं किसी से नहीं डरता--सिवाय ईश्वर के। मगर ईश्वर से डरते हैं! सबसे डरो; कम से कम ईश्वर से तो न डरो। क्योंकि जिससे डर होगा, उससे प्रेम न हो

सकेगा। भय के साथ प्रेम का संबंध नहीं है। जहां भय है, वहां प्रेम मर जाता है। जिससे भय है, उससे घृणा हो सकती है, प्रेम कैसे होगा?

तुमने किसी से भयभीत होकर प्रेम किया है? कोई तुम्हारी छाती पर छुरा रख दे, उससे तुम प्रेम करोगे? हां, तुम बतला सकते हो कि मैं तुम्हारे प्रेम में हूं। लेकिन उससे तुम प्रेम करोगे?

मैंने सुना हैं...। आदमियों की बीमारियां जंगलों जंगलों तक पहुंच जाती हैं। एक बार जंगल में जानवरों ने एक प्रतियोगिता का आयोजन किया। जैसे आदमी करते हैं। तो सब तरह के खेल--कबड्डी, और वालीबाल, और फूटबाल--और जो जो जंगली जानवर कर सकते थे, उन्होंने सब खेलों का आयोजन किया। सिंह भी आया। बैठा देखता रहा। और प्रतियोगिता में तो उसने भाग न लिया; बड़े आनंद से देखता रहा; लेकिन आखिरी प्रतियोगिता थी, लतीफे सुनाने की। चुटकुले सुनाने की, उसमें वह भी भाग लेना चाहता था। उसने सोचा: कम से कम एक में तो मैं भी भाग लूं।

पहले एक खरगोश खड़ा हुआ; उसने एक लतीफा सुनाया। लेकिन खरगोश की जान कितनी? भीड़-भड़क्का और जानवरों को देख कर बहुत घबड़ा गया। आधा ही लतीफा सुना पाया और उसको पसीना बह गया; वह बैठ गया। फिर लोमड़ी ने सुनाया। लोमड़ी कुशल; पुरानी राजनीतिज्ञ; उसने लोगों को खूब हंसाया। ऐसे और भी जानवर कहे।

आखिर में सिंह खड़ा हुआ। सन्नाटा छा गया। अब उत्सुक हुए कि सिंह कौन सा लतीफा सुनाता है--देखें। माइक के पास आकर लतीफा तो दूर उसने बड़ी जोर से सिंह-गर्जना की। इतने जोर से...। एक तो वैसे ही सिंह-गर्जना--और फिर लाउड स्पीकर पर! छोटे-मोटे प्राणियों के तो प्राण निकल गये। खरगोश सामने ही बैठा था, प्रतियोगिता में पहले नंबर भाग लेने आया था, वह तो वहीं ढेर हो गया। कई प्राणी एकदम बेहोश हो गये। जो बचे उनकी भी छातियां धड़क गई।

दहाड़ने के बाद सिंह ने कहा, अब मूर्खो हंसो। हंसते क्यों नहीं? यही लतीफा था। हंसों। हंसी किसी को भी नहीं आ रही है। हंसी का कोई कारण नहीं है। लेकिन हंसना पड़ा। जब सिंह कहे...। तो लोग हंसने लगे। ऐसे हंसने लगे कि कई जानवरों को खांसी आने लगी--हंसी के मार। मगर जब तक सिंह कहे ना कि रुको, तब तक रुक भी नहीं सकते!

स्वभावतः पहला पुरस्कार सिंह को गया।

जहां शक्ति है और जहां शक्ति के साथ जबरदस्ती है, वहां भय पैदा होता है। भय में तुम हंस भी सकते हो। अब सिंह कहता है कि हंसो मूर्खो, हंसो। यही लतीफा था। हंसी किसी को भी नहीं आ रही है। लेकिन यह कोई हंसी होगी! इसमें हंसी होगी? इसमें सिर्फ एक धोखा होगा, एक प्रवंचना होगी; कि अभिनय होगा, एक पाखंड होगा।

ईश्वर से भयभीत--तो फिर प्रेम कैसे करोगे? और अगर ईश्वर से तुम भयभीत हो, तो भीतर गहरे में तुम्हारे घृणा होगी। तुम बदला लेना चाहोगे।

नीत्शे ने कहा है कि ईश्वर मर गया। और यह भी कहा है कि और किसी ने नहीं, आदमी ने ही उसकी हत्या कर दी है। नीत्शे से लोग बहुत नाराज हैं--कि उसने ऐसी अभद्र बात कही। लेकिन मेरे देखे, मेरे समझे नीत्शे ने जो कहा, वह स्वाभाविक परिणाम है--ईश्वर-भीरुता का। जब आदमी इतने दिन तक डराया गया है ईश्वर से, तो कोई तो हिम्मतवर आदमी कहेगा--कि मारो गोली; खतम करो ईश्वर को; बहुत हो गया भय।

अगर उस दिन जंगल के जानवरों में कोई एकाध भी हिम्मतवर होता, तो खड़े होकर कहता कि बंद करो यह बकवास। यह कोई चुटकुला है? यह कोई लतीफा हुआ?

नीत्शे ने यह भी कहा है कि ईश्वर मर गया है और आदमी अब स्वतंत्र है। अब आदमी जो चाहे, कर सकता है। क्योंकि अब तक आदमी ने ईश्वर के डर से ही बहुत कुछ नहीं किया है।

आदमी बदला नहीं है; सिर्फ भय के कारण ग्रसित है। और जब महात्मा गांधी जैसे व्यक्ति भी कहे हैं कि मैं और किसी से नहीं डरता, सिर्फ ईश्वर से डरता हूं, तो जाहिर होती है बात कि ऐसे व्यक्तियों को भी ईश्वर की कोई प्रतीति नहीं है। प्रतीति हो नहीं सकती।

ईश्वर यानी प्रेम। प्रेम में कहां भय है! प्रेम में कैसा भय? प्रेम कोई तलवार थोड़े ही है। प्रेम में फुसलावा हो सकता, मनुहार हो सकती; प्रेम में कोई जबरदस्ती थोड़ी ही है।

लेकिन आदमी अब तक ऐसे ही मानता रहा है--कि भय के कारण।...तो तुमने जो एक समाज बना रखा है, उसमें सारी व्यवस्था भय के कारण है। तुम नैतिक हो, तो भय के कारण। तुम चोरी नहीं करते--तो भय के कारण। तुम झूठ नहीं बोलते--तो भय के कारण। तुम्हारे सब सदगुण भय पर टिके हैं! इसलिए तुम्हारे सब सदगुण दो कौड़ी के हैं।

जब मलूक जैसे व्यक्ति जगत में आते हैं, तो वे कहते हैं: छोड़ो भय; आओ, प्रेम की बात करें। छोड़ो भय--आओ, मस्त हों। छोड़ो भय--आओ, प्रेम के गीत गुनगुनाये। आनंद में, प्रेम में। प्रभु--प्रेम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। आओ, प्रभु के हाथ में हाथ डालें, प्रभु को आलिंगन में लें। नाचें प्रभु के साथ--रास रचायें।

जब ऐसी कोई बात कभी कोई संत कहते हैं, तुम घबड़ा जाते हो। क्योंकि तुम्हारे भय के जन्मों-जन्मों के जाल, जंजीरें, तुम्हारी आदतें, तुम्हारी धारणायें, तुम्हारे संस्कार--सब एकदम घबड़ा कर ठिठक कर खड़े हो जाते हैं--कि यह तो बात खतरनाक है।

तुम जानते हो कि तुमने भय छोड़ा, तो तुम्हारी सब नीति गई; तुम्हारा। सब आचरण गया। सब झूठा है, इसलिए जाने का डर है।

मलूक एक नये तरह का आचरण जगत में लाते हैं--एक आचरण, जो प्रेम पर निर्भर है; एक आचरण, जो आनंद पर निर्भर है। तुम बुरा इसलिए नहीं कर सकते, क्योंकि तुम इतने आनंदित हो कि बुरा कैसे कर सकोगे! तुम बुरा नहीं कर सकते, क्योंकि इतने प्रेम से प्लावित हो कि बुरा कैसे कर सकोगे!

प्रेम ही एकमात्र नीति है; और प्रेम ही एकमात्र चरित्र है।

इस प्रेम की मस्ती से जो सुगंध उठती है, उस सुगंध को बहुत कम लोग ही जान पाते हैं। क्योंकि तुम्हारे नासापुट खराब हो गये हैं।

मैंने सुना है कि देहात--दूर देहात से मछलियां बेचने एक आदमी गांव आया था--शहर आया था। जब वह मछलियां बेच कर वापस जा रहा था, भरी दुपहरी थी; बड़ी तेज धूप थी और सूरज आग बरसा रहा था। वह एक सड़क पर भूखा-प्यासा, थका-मांदा बेहोश हो कर गिर पड़ा।

वह सड़क उस गांव की, उस शहर की गंधियों की गली थी, जहां सुगंध बेचने वालों के दुकानें थीं। एक गंधी भागा; उसने अपनी तिजोड़ी से बड़ा बहुमूल्य इत्र निकाला, जिस इत्र की यह खूबी थी कि खूबी थी कि बेहोश आदमी को सुंघा दो, तो वह होश में आ जाए।

उसने ले जाकर, वह इत्र, उस आदमी के जो बेहोश पड़ा था, उसकी नाक पर रखा। वह आदमी तो और जोर से हाथ-पैर फेंकने लगा और बड़ी बेचैनी उसके चेहरे पर उतर आई। वह गंधी तो बड़ा हैरान हुआ।

भीड़ आ गई थी। एक आदमी भीड़ में खड़ा था उसने कहा: ठहरो भाई, तुम उसको मार डालोगे। तुम्हें पता नहीं, यह कौन है। यह मछुआ है। तुम्हारी इस बहुमूल्य गंध का इसको क्या पता? यह गंध तो इसे दुर्गंध जैसी लगेगी। यह तो एक ही गंध जानता है--मछली की गंध। उसी को सुगंध मानता है। ठहरो।

उस आदमी के पास उसकी टोकरी, और गंदी टोकरी में गंदे कपड़े, और उन गंदे कपड़ों में ही बांध कर वह मछलियां लाया था, वे पड़ी थीं। वह आदमी भागा; पास के नल से उसने थोड़-सा पानी लिया; उन गंदे कपड़ों पर पानी छिड़का; टोकरी पर पानी छिड़का। लौटकर टोकरी और वे गंदे कपड़े उसकी मुंह पर रख दिये।

मछली की बंध उठी। लोग तिलमिला गये। मगर वह आदमी होश में आ गया। और उस आदमी ने आंखें खोल देखकर कहा: धन्यवाद, किसने यह कृपा की! किसीने मेरी मछलियों की बंध मेरे पास ला दी? अन्यथा मैं मर जाता।

अगर मछलियों की बंध में ही जीवन भर जिये हो, तो इत्र की गंध तुम्हें दुर्गंध मालूम होगी। तुम उसे न सह पाओगे। और आदमी ऐसी ही मछलियों की गंध में जीया है।

बाबा मलूकदास जैसे लोग उस पर इत्र को जगत में ले आते हैं, जिसकी एक झलक, जिसकी एक लहर तुम्हें जगा दे--सदा के लिए जगा दे। मगर तुम्हारे नासापुट खराब है।

इसलिए न तो संगी-साथी मिलते, न परंपरा बनती।

लेकिन अपने भीतर खोजबीन जारी रखना। अगर तुम कभी बाबा मलूकदास जैसे किसी आदमी के साथ पड़ जाओ, तो चाहे लाख तकलीफ मालूम पड़े तुम्हें--पुराने संस्कार छोड़ने में; छोड़ना। लाख अड़चनें मालूम पड़े--तुम्हारी पुरानी आदतों के टूटने में--तोड़ना। क्योंकि उन आदतों से न कभी कुछ मिला है, न कुछ कभी मिलेगा। लेकिन ऐसे व्यक्ति के पास अगर तुम रम जाओ: अगर ऐसे व्यक्ति के पास तुम टिक जाओ, तो तुम्हारे भीतर वैसे

सूरज का उदय हो सकता है, जिसके उदय हुए बिना कोई कभी न तृप्त हुआ है--न हो सकता है।

दूसरा प्रश्नः

तुझे क्या सुनाऊं में दिलरुबा,
तेरे सामने मेरा हाल है।
तेरी इक निगाह की बात है,
मेरी जिंदगी का सवाल है।।

सच है, ऐसा ही है। परमात्मा की एक निगाह की ही बात है। उसकी एक निगाह--और हमारे लिए पूरी जिंदगी; ऐसी ही बात है।

जिसने पूछा है--स्वामी वाहिद काजमी ने--ठीक ही पूछा है।

तुझे क्या सुनाऊं मैं दिलरुबा, तेरे सामने मेरा हाल है। परमात्मा से कहने को भी तो हमारे पास कुछ नहीं है। जो हम कह सकते हैं, वह तो वह जानता ही होगा। और जो हम ही नहीं जानते हैं, उसे तो हम कैसे कहेंगे।

सच तो यह है कि जो हम नहीं जानते हैं, वह भी जाता होगा। इसलिए परमात्मा के सामने कहने का तो कुछ सवाल ही है। जो लोग परमात्मा के सामने बैठकर कुछ कहते हैं, बड़ी नासमझी करते हैं। प्रार्थनाएं चुप होनी चाहिए। केवल चुप प्रार्थनाएं ही सुनी जाती हैं। बोलते--कि चूके।

प्रार्थना करने में बोलना ही मत। क्योंकि तुम जो भी बोलोगे, गलत बोलोगे। तुम सही तो बोल ही हनीं सकते। सही का तो तुम्हें पता ही नहीं है। सही की तो तुम्हें पहचान ही नहीं है। तुम प्रार्थना में कहोगे क्या?

तुम अवाक रह जाना; मौन रह जाना। तुम बोलना ही मत। तुम गूंगे हो जाना। तुम्हारी गूंगी प्रार्थना ही पहुंचती है। मैं इसे दोहरा दूं--सिर्फ गूंगी प्रार्थनाएं ही परमात्मा तक पहुंचती हैं; मुखर प्रार्थनाएं नहीं पहुंचतीं--पहुंच ही नहीं सकती।

पहली तो बातः तुम्हारी भाषा परमात्मा नहीं समझता। तुम्हारी भाषा तुम्हारी भाषा है; आदमी को ईजाद है। परमात्मा तो मौज की भाषा समझता है। मौन अस्तित्व की भाषा है। हिंदी बोलो, तो हिंदुस्तानियों की भाषा है। अरबी बोलो, तो अरबस्थानियों की भाषा है। चीनी बोलो, तो चीनियों की भाषा है। ये आदमियों की भाषाएं हैं; उनकी सीमाएं हैं।

मौन अस्तित्व की भाषा है। मौन की भाषा ही परमात्मा समझता है।

तो तुम ठीक कहते होः तुझे क्या सुनाऊं मैं दिलरुबा, तेरे सामने मेरा हाल है। सुनाना ही मत; बोलना ही मत। रो सको तो रोना। आंसू ज्यादा कुशलता से कह देंगे, जो तुम न कह पाओगे। नाच सको, तो नाचना। नाच सुगमता से कह देगा, जो भाषा न कह पायेगी। नहीं तो चुप बैठ जानना, गूंगे हो जाना। गूंगी प्रार्थनाएं पहुंच जाती है।

तेरी इक निगाह की बात है, मेरी जिंदगी का सवाल है।--यह भी सच है। उसकी एक निगाह की बात है; उसकी एक निगाह काफी है। उसकी एक किरण काफी है--मुरदों को जिला ने

देने को। लेकिन उसकी आंख तुम पर उठे, इसके लिए तुम्हें कुछ करना होगा। आंख ऐसे ही उठेगी।

तुम तो जो कर रहे हो, वे कुछ ऐसे उपाय हैं कि उसकी आंख कभी उठ ही न सके। या तो अगर उठे भी, तो तुम बच जाओ। अगर वह देखे भी, तो तुम्हारी पीठ उसकी तरफ है। उसकी आंख तभी कारगर होगी, जब तुम्हारी आंख से मिल जाए। इसे समझना।

अगर तुम परमात्मा की तरफ पीठ किये खड़े हो, तो वह देखता भी रहे, तो क्या होगा? पीठ पर तुम्हारे, आंखें नहीं हैं। और हम सब परमात्मा की तरफ पीठ किये खड़े हैं। संसार की तरफ हमारी आंख है और परमात्मा की तरफ पीठ है।

दूसरे की तरफ हमारी आंख है, स्वयं की तरफ पीठ है। बाहर की तरफ आंख है, भीतर की तरफ पीठ है। नीचे की तरफ आंख, ऊपर की तरफ पीठ है। और हमारी आंखें जड़ हो गई हैं बाहर की तरह; भीतर की तरफ जाती ही नहीं।

आंख बंद कर लो, तो भी आंख भीतर नहीं जाती; फिर भी बाहर ही भटकती रहती है। आंख बंद कर लो, तब भी तुम दुकान नहीं देखते हो। आंख बंद कर लो, तो भी पत्नी, पति बच्चे, मित्र, शत्रु--वही दिखाई पड़ते हैं। मुकदमा, अदालत, बाजार--वही सब दिखाई पड़ता है। आंख बंद कर लो, तो भी रुपये, धन-दौलत, पद-प्रतिष्ठा--वही दिखाई पड़ती है। गहरी नींद में जब तुम सो जाते हो, तब भी तुम भीतर नहीं देख पाते। तब भी सपनों का जाल फैलता रहता है।

तुम हर हालत में बाहर हो--आंख खुली है, तो बाहर; आंख बंद है, तो बाहर। भीतर कब आओगे? भीतर आओगे, तो परमात्मा से आंख मिल सकती है; क्योंकि परमात्मा कही और नहीं, तुम्हारे भीतर छिपा बैठा है। तुम लौटो घर।

तुम जरा मुडो--भीतर की तरफ; प्रतिक्रमण करो; प्रत्याहार करो; लौटो भीतर की तरफ; परमात्मा की तरफ आंख करा। उसकी आंख तुम्हारी आंख में मिल जाए, तो बस, एक पल का मिलन काफी है। फिर तुम दुबारा लौट न सकोगे--बाहर की तरफ। बंधे रह जाओगे--कीलित--हिल न सकोगे। फिर बाहर कुछ बचता ही नहीं खोजने को। जिसके हम बाहर खोज रहे थे, वह भीतर मिल गया।

यह सुरागी फरोग-ए-मय ये गुलरंग, यह जाम।
चश्म-ए-साकी की इनायत के सिवा कुछ भी नहीं।।

जीवन में जो अपूर्व मस्ती आती है, आनंद आता है, जीवन में जो मदहोशी आती है--चश्म-ए-साकी की इनायत के सिवा कुछ भी नहीं। वह उसके आंख की कृपा है। वह सिर्फ उसकी आंख का तुम्हारी आंख से मिल जाना है।

मेल नहीं हो रहा है। उसकी आंख तो तुम्हें देखे चली जा रही है।

यह बात सुनी होगी--बचपन से सुनी होगी--कि परमात्मा तुम्हें देख रहा है; कि हर घड़ी देख रहा है; कि तुम जहां हो, वही देख रहा है; कि तुम जो कर रहे हो, वही देख रहा है। तुम उससे हट कर कहीं जा नहीं सकते।

मैंने सुनी है एक सूफी कहानी। एक सदगुरु के पास दो युवक आये और उन्होंने कहा, हमें परमात्मा से मिला दें। हमें उसकी आंख में आंख डाल कर देख लेना है।

उस फकीर ने दोनों की तरफ देखा और दो कबूतर, जो उसके पास ही घूम रहे थे, उसके ही पाले हुए कबूतर थे; उठा कर दोनों को एक-एक कबूतर दे दिया और कहां कि एक काम करो; यह तुम्हारी परीक्षा है। तुम ऐसी जगह चले जाओ, जहां तुम्हें कोई न देख रहा हो, वहां इन कबूतरों को मार डालना। और जब तुम ऐसी जगह पा लो, जहां तुम्हें कोई नहीं देख रहा है और कबूतर को मार डालो, तो लौट आना। फिर आगे की बात शुरू होगी।

दोनों युवक उठे; भागे। एक तो गया पास की गली में; देखा: कोई भी नहीं है; दोपहर थी; लोग सोये थे। गरमी की दोपहर--कौन निकलता है घर से! चारों तरफ देखकर, जल्दी से उसने, दीवाल की आड़ में खड़े होकर कबूतर की गरदन मरोड़ दी। लौट कर आ गया; उसने चरणों में कबूतर रख दिया। कहा कि पास गली में ही मार लाया। यह भी कोई बड़ी बात थी! यह कैसी परीक्षा?

गुरु ने कहा, तुझसे मेरा मेल न बैठ सकेगा। तू किसी और को खोज। मैं तुझे परमात्मा की आंख में आंख डालने का उपाय न बात सकूंगा।

दूसरा युवक तो महीनों तक लौटा। कहते हैं: साल बीतने लगा, तब वह आया। तब तो उसे पहचानना ही मुश्किल हो गया। दाढ़ी बढ़ गई थी; रूखे बाल। कपड़े जो पहने था, फट गये थे। धूल-धंवास से भरा हुआ। पहचानना मुश्किल था; काला पड़ गया था; और कबूतर जिंदा ले आया था। गुरु के चरणों में कबूतर रख दिया और उसनने कहा कि मुझे क्षमा करें; मैं हार गया। यह परीक्षा मैं पास न कर सका; और यह परीक्षा मैं पास न कर सकूंगा। साल भर जो भी मैं कर सकता था, मैंने कर के देख लिया। ऐसी जगह न पा सका, जहां कोई भी न देख रहा हो, अंधेरी गलियों में गया, तलघरों में उतरा; वीरानों में चला गया; रेगिस्तानों में गया। तलघरों के भीतर जाकर अंधेरे से अंधेरे में खड़ा हो गया, लेकिन वहां भी कबूतर देख रहा था! टक-टक उसकी आंखें! तो मैंने कबूतर की आंखों पर पट्टियां बांध दी। लेकिन मैं देख रहा था। तो फिर मैंने अपनी आंखों पर भी पट्टियां बांध लीं। लेकिन तब मुझे याद आया कि परमात्मा तो देख ही रहा है। मैं ऐसी जगह कहां खोजूंगा, जहां परमात्मा न देख रहा हो? यह तो आपने बेबूझ पहेली दे दी। यह कबूतर अपना वापस ले लें; मुझे क्षमा कर दें। मैं हार गया; मैं दुखी हूं कि एक छोटा-सा काम न कर सका, जो आपने दिया था। मैं अयोग्य हूं; मैं अपात्र हूं।

गुरु ने उसे गले लगा लिया और कहा कि तू रुक; काम हो गया; तू परीक्षा में पार उतर गया। तेरा पहला साथी हार गया। वह तो घड़ी भर में मार कर आ गया था! घड़ी भी न लगी थी। वह तो बगल की गली में मार कर आ गया था। उसे तो कुछ तो कुछ होश ही न था; उसे तो कुछ समझ ही न थी कि यह क्या कर रहा है। तुझे होश है; तुझे समझ है। तेरी आंख परमात्मा की तरफ है; मिलन हो जायेगा। इतना ही जिसे याद है कि परमात्मा देख रहा है, फिर बहुत कठिनाई नहीं है। प्रतीक्षा करो।...

पहली बातः भीतर की तरफ मुड़ो; और दूसरी बातः प्रतीक्षा करो।

मय कशो! मय की कमी-बेशी पर नाहक जोश है।

यह तो साकी जानता है, किसको कितना होश है।।

नाहक शिकायतें मत करो कि मेरे प्याले में बहुत कम डाला; दूसरे के प्याले में बहुत ज्यादा भर दी है शराब।

मय कशो! मय की कमी-बेशी पर नाहक जोश है

यह तो साकी जानता है, किसको कितना होश है।।

उसे पता है कि तुम्हारी कितनी जरूरत है अभी; तुम कितनी पी सकोगे, तुम कितनी झूल सकोगे।...तो अपनी तैयारी बढ़ाये जाओ। जैसे-जैसे तुम्हारी पात्रता बढ़ती है, तुम्हारा पात्र गहरा होता है, वैसे-वैसे उसकी शराब तुममें ज्यादा उतरने लगेगी। अपनी आंख साफ किये जाओ, जैसे-जैसे तुम्हारी आंख साफ होने लगेगी, वैसे-वैसे उसकी आंख तुम्हारी आंख में झांकने लगेगी। जिस दिन तुम्हारी आंख परिपूर्ण शुद्ध हो जाती है, उस दिन चकित हो कर हैरान होओगे कि तुम्हारी आंख और उसकी आंख दो नहीं है--एक ही है।

बड़े अपूर्व संत एकहार्ट ने कहा है कि जब मैंने परमात्मा को वस्तुतः देखा, तो मैं चकित हो गया, क्योंकि मैंने उसे बाहर नहीं देखा; मैंने देखा कि वह मेरी आंख से झांक रहा है। वही देख रहा है। वही मेरे भीतर देखनेवाला है; वही द्रष्टा है।

परमात्मा कभी दृश्य नहीं बनता; परमात्मा तो तुम्हारे भीतर छिपे हुए द्रष्टा का नाम है। तुम्हारी आंख से भी जो देख रहा है, वह परमात्मा ही है। लेकिन यह तो आंख की परम शुद्धि की बात है--जब आंख पूरी तरह मुड़ी होती है, और आंख पर से सारे बादल हटा दिये गये होते हैं।

अगर कभी-कभी क्षण भर को झलक मिल जायेगी--उसकी आंख की। अशुद्ध आंखों को भी कभी-कभी उसकी क्षण भर को झलक मिलती है। नहीं तो फिर तो कोई उपाय ही न था।

अंधों को भी कभी-कभी उसकी किरण दिखाई पड़ती है। बहरों के कान में भी कभी-कभी उसकी आवाज पड़ जाती है। क्योंकि वस्तुतः तुम बहरे नहीं हो; बहरे बने हुए हो। और वस्तुतः तुम अंधे नहीं हो; आंख बंद किये बैठे हो। लेकिन कभी-कभी भूलचूक से तुम्हारी भी आंख खुल जाती है; और भूलचूक से तुम्हारे कान भी सुन लेते हैं।

परमात्मा से मिलने के पहले--इसके पहले कि उसकी शराब तुम्हारे जीवन में उतरे, कई बार छोटी-छोटी झलकें आयेंगी।

देखा कि वे मस्त निगाहों से बार-बार।

जब तक शराब आये, कोई दौर हो गये।।

परम समाधि के पहले बहुत से दौर हो जायेंगे। कई बार तुम बहुत करीब आ जाओगे; करीब से करीब आ जाओगे। क्षणभर को एक ज्योति चमकेगी और खो जायेगी, जैसे बिजली चमकती है अंधेरा रात में।

अब बिजली को रोशनी में कोई रास्ता नहीं खोज सकता। आई--और गई। लेकिन रास्ता दिख तो जाता है। एक क्षण का तो सब रोशन हो जाता है; सारा जंगल रोशन हो जाता है। एक बात तो पक्की हो जाती है--कि रास्ता है। फिर अंधेरा छा जाता है। फिर उटोलना पड़ेगा। फिर खोजना पड़ेगा। लेकिन एक बात तो आस्था बन गई कि रास्ता है; और वही आस्था अंततः मंजिल तक पहुंचा देती है।

इसके पहले कि सुबह हो, बहुत बार बिजली कौंधेगी। लेकिन आदमी ने क्या किया है। बिजली कौंधती भी है, तो उसे झुठला देता है।

मेरे पास अनेक बार लोग आते हैं, जिनके जीवन में बिजली कौंधी है और उन्होंने उसे झुठला दिया। उन्होंने सोच लिया--कि मन की कल्पना होगी। उन्होंने सोच लिया कि मालूम होता है; मैं पागल हो रहा हूं! उन्होंने अपने को समझा लिया है। न केवल समझा लिया है, उन्होंने खींचतान कर अपने को वापस अपनी स्थूल दुनिया में वापस बुला लिया है।

न मालूम कितनी बार तुम्हें मौके आते हैं, जब तुम बहुत करीब होते हो रोशनी के। लेकिन तुम्हारे जीवन भर के अनुभव और रोशनी का अनुभव इतने विपरीत हैं...।और तुम्हारे जीवन के अनुभव का बहुमूल्य है, बहुमत है।

जैसे एक आदमी ने निन्यानबे अनुभव तो संसार के किये और फिर एक अनुभव परमात्मा का आया। तो निन्यानबे की भीड़ के कारण एक अनुभव झुठला दिया जाता है।

फिर एक और तकलीफ है कि जब बिजली चमकती है, तो तुम्हारे हाथ से नहीं चमकती। अगर कोई कहेः फिर से चमकाओ, तो तुम नहीं चमका सकते। पुनरुक्ति नहीं हो सकती। यह कोई टॉर्च तो नहीं है तुम्हारे हाथ की--कि बटन दबा दी; जला ली--बुझा ली। यह विराट की बिजली है। चमकती है, तब चमकती है।

समझो कि तुम बैठो हो और तुमने देखाः परम प्रकाश तुम्हारे भीतर--तुम्हारे बाहर! तुम भागे और तुमने अपनी पत्नी से कहा कि मुझे प्रकाश दिखाई पड़ा है। तो उसने कहा, तो बैठो, मुझे दिखला दो। अब यह कोई टॉर्च तो नहीं है! भी मजबूरी है; वह पूरा किया नहीं जा सकता।

तो इस कारण बहुत बार अनुभव करने के बाद भी हम उन अनुभवों को झुठला देते हैं या कल्पना मान लेते हैं।

आज से खयाल रखोः जब भी जीवन में कुछ अपूर्व घटे, जिसको न तो तुम समझा सको, और न समझ सको, तो उसे संजो कर रखना। उसे फेंक मत देना। यह दोहरता न हो, तो कल्पना मत कह देना। वह फिर-फिर न आये, तो इनकार मत कर देना।

यह अनुभव ऐसा अपूर्व है कि फिर-फिर आता नहीं। इसे सम्हाल कर रखते जाना। एक अनुभव हुआ, फिर महीनों बीत जायेंगे, दूसरा अनुभव होगा; उसे भी सम्हाल कर रख लेना। ऐसे धीरे-धीरे अनुभव की संपदा बढ़ती जायेगी।

इन्हीं अनुभव के छोटे-छोटे इट-पत्थर-गारे से परमात्मा का मंदिर निर्मित होता है। फिर जैसे-जैसे तुम जानने लगोगे कि मेरे मांगने से नहीं होता, तो मांगोगे नहीं--और ज्यादा होगा।

जब तुम देखोगे कि बिना मांगे खूब होता है, तो फिर तुम मांगोगे ही क्यों! फिर रोज-रोज होगा। जब तुम बिलकुल जान लोगे यह बात--कि मेरी जरा सी द्रष्टा बाधा बन जाती है, तो तुम बिलकुल निष्चेष्ट हो जाओगे।

अजगर करें न चाकरी, पंछी करें न काम।

दास मलूका कहि गये, सबसे दाता राम।।

फिर तो तुम अजगर जैसे हो जाओगे। फिर तो तुम पंछियों जैसे हो जाओगे। फिर तो तुम कहोगे: परमात्मा देनेवाला है, मैं मांगूं ही क्यों!

दास मलूका कहि गये, सबके दाता रात। वह देता ही है, तो मांगना क्या? मांग कर और भिखारी क्यों बनना?

जैसे जैसे तुम्हारी मांग और वासना क्षीण होती जायेगी, तुम पाओगे: अनुभव रोज बरसने लगा। फिर ऐसी घड़ी आ जाती है, जब अनुभव जाता ही नहीं; रोशनी तुम्हें घेरे ही रखती है; उस घड़ी को ही हम संतत्व कहते हैं। जब सत्य तुम्हारे भीतर चौबीस घड़ी बरसता रहता है, तब तुम संत हुए।

तीसरा प्रश्न: मैंने सैकड़ों संबंध बनाये--शारीरिक और मानसिक दोनों, लेकिन आखिर में बढ़ती हुई तृप्ति के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं आया। मैं कुछ पकड़ नहीं पाती; सब हाथ से फिसल-फिसल जाता है और मैं बेबस और भयभीत खड़ी देखती रहती हूं; ऐसा क्यों है?

तुम्हारा कुछ कसूर नहीं। इस जगत के सारे अनुभव पानी के बुलबुले जैसे हैं, कुछ कभी मिलता नहीं। मृगमरीचिकायें हैं; इंद्रधनुष हैं। दूर से खूब सुंदर; दूर के ढोल बड़े सुहावने। मुट्ठी बांधो, कुछ भी हाथ न आयेगा। तुम्हारा कोई कसूर नहीं है। शारीरिक संबंध या मानसिक संबंध--इनसे कुछ भी मिला नहीं। इतना ही मिलता है इनसे--कि इनमें कुछ सार नहीं। मगर यह बड़ी बात है। ये असार है--ऐसा अनुभव इनसे मिलता है। यह कोई छोटी शिक्षा नहीं है! क्योंकि जिसने असार देख लिया है, उसको सार देखने में ज्यादा देर न लगेगी। असार को असार की भांति देख लेना, सार को सार की भांति देखने का पहला कदम है।

इतना भी साफ हो गया कि इस संसार के सारे संबंध बनते हैं, जाते हैं; हाथ खाली के खाली रह जाते हैं--बड़ा गहरा अनुभव है। इस अनुभव को स्मरण में रखो। अब बार-बार इनको दोहराये मत जाओ। क्योंकि पुनरुक्ति से कुछ बढ़ेगा नहीं। इनसे कुछ सीखो।

अनुभव से जब तुम कुछ सीखते हो, तो ज्ञान निर्मित होता है। और अनुभव को जब तुम दोहराये चले जाते हो, तो मूढ़ता और जड़ता निर्मित होती है।

दुनिया में बहुत कम लोग हैं, जो अनुभव से सीखते हैं। अनुभव से जो सीख ले, वही समझदार है।

एक दिन क्रोध किया: दूसरे दिन क्रोध किया; हजार बार क्रोध किया, अब तक सीखा नहीं! इतने बार क्रोध करके पाया कि कुछ भी नहीं मिलता, तो अब तो रुको! अब तो जाने दो--इस क्रोध को। अगर हजार बोर क्रोध करके भी तुमने इतनी सी बात सीख ली कि क्रोध में

कुछ सार नहीं, तो वे हजार बार का क्रोध भी तुम्हें बहुत कुछ दे गये; वे भी व्यर्थ न गये; उससे भी तुमने कुछ निचोड़ लिया; कुछ इत्र उनसे भी निचोड़ लिया। अब तुम क्रोध से मुक्त हो जाओ।

हजार बार काम-वासना में उतरे और कुछ भी न पाया, तो अब जाओ। और फर्क समझ लेना: मैं यह नहीं कह रहा हूं कि काम-वासना को त्यागो। मैं कह रहा हूं--जागो।

त्यागने का तो मतलब यह है कि अभी भी रस लगा है। रस लगे का मतलब है--अभी भी आशा बंधी है। आशा बंधे होने का मतलब है कि क्या पता: अब तक नहीं मिला, आगे मिल जाये; कल मिल जाए; परसों मिल जाए। तो फिर त्यागना पड़ता है। लेकिन जब तुम जाग कर देख लेते हो कि मिलता ही नहीं; मिल ही नहीं सकता...।

जैसे एक आदमी रेत से तेल निचोड़ने की कोशिश कर रहा हो--वर्षों से--और एक दिन जाग कर देखे कि अरे, मैं पागल हूं; रेत के निचोड़ ने से तेल कैसे निकलेगा? तिल निचोड़ने से तेल मिलता है। तो फिर त्याग करेगा रेत का? बात खतम हो गई। झाड़ कर उठ बैठेगा। हाथ-पैर से झाड़ देगा रेत; फिर लौट कर भी नहीं देखेगा। बात खतम हो गई। त्याग क्या है इसमें?

जिस दिन तुम्हें लगे: क्रोध में कुछ भी नहीं, काम में कुछ भी नहीं, उठ खड़े हो गये; बात खतम हो गई। त्याग ही। तुम व्रत थोड़े ही लोगे जा कर--कि ब्रह्मचर्य का व्रत लिया, उसने तो बता दिया कि अभी समझ आई नहीं। व्रत में ही ना समझी छिपी है। ना समझो के सिवाय कोई व्रत लेता ही नहीं। समझदार क्यों व्रत लेगा? समझदारी पर्याप्त है; व्रत की कोई जरूरत नहीं है।

इतनी बात समझ में आ गई कि यहां कुछ भी नहीं है, बात खतम हो गई। अब व्रत किसके खिलाफ लेना है? व्रत तो अपने खिलाफ लिया जाता है। डर है। कि कल शायद फिर लगने लगे कि है कुछ, तो फिर क्या करूंगा? तो व्रत का बंधन बना लो। कसम खा लो--भीड़ में जाकर--बाजार में--बीच बाजार में खड़े होकर--कि मैंने ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया। ताकि फिर डर लगे कि अब लोगों से कह चुका; प्रतिष्ठा का सवाल है। अहंकार पर चोट लगे; घबड़ाहट हो कि अब अगर भूलचूक की, तो लोग क्या कहेंगे?

मगर यह तो कुछ जागना न हुआ। जागरणशील व्यक्ति को व्रत की जरूरत नहीं है। मैं तुम्हें अव्रती बनाता हूं। तुम्हारे जीवन से सारे व्रत समाप्त हो जाने चाहिए, क्योंकि कोई व्रत क्रांति नहीं लाता। समझ क्रांति लाती है।

तो पूछा है--कुसुम ने यह सवाल, मैंने सैकड़ों संबंध बनाये--शारीरिक और मानसिक, लेकिन आखिर में बढ़ती हुई अतृप्ति के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं आया।

कुछ तो हाथ आया; वह समझ हाथ आई कि अतृप्ति बढ़ती जाती है। तो उन सारे अनुभवों को धन्यवाद दो। उनके बिना यह कैसे समझ में आता! उन सारे अनुभवों को धन्यवाद दो। उनके बिना यह कैसे समझ में आता! उन सारे अनुभव के प्रति कृतज्ञ अनुभव करो। और

जब जाग कर जियो--कि उन अनुभवों को बार-बार दोहराने की जरूरत नहीं है। अर्थहीन हो गये वे। अब उस पुनरुक्ति से बचो: अब उसी-उसी चाक को पकड़ कर मत घूमते रहो।

इस संसार में सभी क्षण-भंगुर है। और इस मन के द्वारा क्षण-भंगुर से ज्यादा किसी चीज से कोई संबंध नहीं जुड़ता। शाश्वत से जुड़ना हो, तो मन के पार जाना जरूरी है।

इस दिल-ए-मायूसी की वीरानसाजी कुछ न पूछ।
इसने जब और जो चमन ताका बयांबा हो गया।।

जहां भी यह मन देखेगा, वही विकृति हो जायेगी। जहां यह मन अपनी छाप छोड़ेगा, वहीं राख घुट जायेगी।

इस दिल-ए-मायूसी की वीरानसाजी कुछ न पूछ।
इसने जब और जो चमन ताका बयांबा हो गया।।

तुमने अगर फूल भी देखे, तो कुम्हला जायेंगे। तुमने हरे-भरे वृक्ष को देखा--सूख जायेगा।

इस मन के द्वारा शाश्वत से कोई संबंध ही नहीं जुड़ता। इस मन का संबंध हो क्षण भर का है। क्षण भर है; अभी है, अभी नहीं है।। अभी सब ठीक; अभी सब गलत। अभी प्रेम--अभी घृणा। अभी करुणा--अभी क्रोध। अभी लुटाने को तैयार थे, अब लूटने को तैयार हो गये। इस मन के साथ इससे ज्यादा कुछ भी नहीं हो सकता। और इस मन के फैलाव का नाम संसार है।

तो जाओ। कहीं ऐसा न हो, जैसा कि अधिकतर होता है। जीवन भर लोग जीते हैं, मगर सीखते कुछ भी नहीं।

चुन लिये औरों ने गुलहा-ए-मुराद।
रह गये दामन ही फैलाने में हम।।
चुन लिये औरों ने गुलहा-ए-मुराद।
रह गये दामन ही फैलाने में हम।।

कहीं ऐसा न हो कि दूसरे तो फूल चून लें और तुम दामन ही फैलाते रहो और मौत आ जाए। किन फूलों की बात कर रहा हूं? उन फूलों की बात कर रहा हूं, जो इस जीवन के प्रत्येक अनुभव में से निःसृत होते हैं।

क्रोध किया; पाया--व्यर्थ है; एक फूल चूना। काम किया ; पाया--व्यर्थ है; एक फूल और चुना। लोभ किया; पाया--व्यर्थ है; एक फूल और चूना। चुनते गये फूल। इन्हीं सारे फूलों की माला एक दिन बन जाती है। उसी माला को ही तो परमात्मा के चरणों में अर्पित करना है।

अगर नहीं चुने फूल; फिर-फिर क्रोध में उतरे, फिर-फिर वासना में उतरे, तो बस, दाम ही फैलाने में समय बीत जायेगा।

तो कुसुम को कहता हूं: जाग। देखा सब; देखना जरूरी था। सिर्फ एक बात का खयाल रखना कि कुछ भी नहीं मिलता, व्यर्थता मिलती है और जीवन में बेचैनी बढ़ती है--यह तेरा

अनुभव होना चाहिए। ऐसा न हो कि जल्दबाजी हो। ऐसा न हो कि लोभ के कारण यह प्रश्न लिखा हो, तो चूक हो जायेगी।

अकसर ऐसा भी हो जाता है। संतों की वीणा पढ़ते, संतों के वचन सुनते लोभ जगता है। और उनकी वाणी के प्रभाव में ऐसा लगता है कि ठीक ही तो कहते हैं। मगर उनके ठीक से कुछ भी न होगा।

मेरा ठीक, तुम्हारा ठीक नहीं है। तुम्हारा ठीक ही तुम्हारा ठीक है। मेरा बोध, मेरा बोध है; तुम्हारा बोध नहीं बनेगा। मैं लाख कहूं कि क्रोध में कुछ भी नहीं, और तुम सुन भी लो, समझ भी लो, बुद्धि से बात जंच भी जाए, मगर इससे कुछ सार न होगा; जब तक कि तुम्हारे जीवन के अनुभव से यह निष्पत्ति न निकले।

तो बस, एक ही बात खयाल रखना: जल्दबाजी मत करना।

मेरे साथ इतना स्मरण रखना सादा जरूरी है कि लोभ में मत पड़ना। हां तुम्हें लग गया हो कि कोई सार नहीं है--शारीरिक संबंधों में, तो बात खत्म हो गई। मेरे कहने से मत कर लेना अन्यथा फिर लौट कर आयेगी यह वासना। फिर डुलायेगी; फिर खींचेगीतानेगी। और दमन शुरू हो जायेगा। और दमन के मैं बिलकुल विपरीत हूं। जागरण ठीक; दमन तो रोग लाता है।

नहीं यहां कुछ मिलने को है, इसलिए जल्दबाजी भी करते की जरूरत नहीं है। कुछ मिलता ही नहीं है, तो फिर घबड़ाना क्या!

तुम्हारे तथाकथित महात्मा बड़े घबड़ाये होते हैं। घबड़ाहट भी क्या? यहां कुछ मिलने को तो है नहीं। तुम रेत से ही तेल निचोड? रहे हो; और थोड़ी देर निचोड़ो। कुछ मिलने को नहीं है; कुछ खोने को नहीं है। मगर तुम्हारे ही भीतर यह किरण उतर आये, कि यह रेत है, तभी छोड़ देना; उसके पहले मत छोड़ना। अधकच्चे मत गिर जाना वृक्ष से, नहीं तो कड़वे रह जाओगे।

इसलिए तुम्हारे तथाकथित महात्मा बड़े कड़वे रह जाते हैं। जीवन का माधुर्य नहीं होता, कड़वाहट होती है। क्रोध से भरे होते हैं; निंदा से भरे होते हैं; क्योंकि जिस-जिस बात को छोड़ दिया है, वह छूटी तो नहीं थी अभी। छोड़ बैठे हैं। अभी भी राग है; अभी भी भीतर रंग उठता है; अभी भी वासना उद्वेलित होती है। उस वासना से लड़ने के लिए रोज उस वासना को गाली देना पड़ता है।

अगर तुम किसी महात्मा को सुनने जाओ और वह कामिनी और कांचन को ही गाली देने की बात कर रहा हो, तो समझ लेना कि कामिनी-कांचन उसके पीछे अभी भी पड़े हैं। नहीं तो क्या जरूरत है--चौबीस घंटे कामिनी-कांचन के पीछे पड़े रहने की!

वक्त की कुछ पीढ़ियों के बाद आखिर क्या मिलेगा?
उम्र की इन सीढ़ियों के बाद आखिर क्या मिलेगा?
पत्थरों को सर झुकाने का चला है सिलसिला।
पाप की परछाइयों में पुण्य है फूला फला।।

रामनामी ओढ़ने के बाद आखिर क्या मिलेगा?
दूरियों को पास लाने की बड़ी है कशमकश।
बर्फ में बरसों सुलाने की हुई है पेशकश।।
श्यास की इन सरदों के बाद आखिर क्या मिलेगा।
वक्त की कुछ पीढ़ियों के बाद आखिर क्या मिलेगा।।
क्या मिलने को है यहां? जैसे दिन गये, अभी और दिन जायेंगे। जैसे वक्त बीता, और वक्त बीतेगा। समय में कुछ मिलता ही नहीं। समय एक सपना है, जो सिर्फ बीतता है--मिलता कुछ भी नहीं।
मगर अगर इतनी ही बात मिल जाए--कि समय में कुछ नहीं मिलता, तो हीरा हाथ लगा; तो बड़ा बहुमूल्य हीरा हाथ लगा। फिर इसी हीरे के सहारे तो तुम परमात्मा तक पहुंच सकते हो। मगर कच्चा न हो हीरा। हीरा कच्चा हो--तो कोयला। कोयला पक जाए--तो हीरा।
तुम्हें पता है न कि कोयला और हीरा दोनों एक ही तरह की चीजें हैं। उनमें फर्क कच्चे और पक्के का है। हीरे और कोयले का रसायन बिलकुल एक जैसा है। दोनों एक ही तत्व से बने हैं। जिसको तुम हीरा कहते हो, वह हजारों-हजारों साल पृथ्वी के अंतर्गर्भ में दबा हुआ कोयला है। दबता--दबता--दबता--दबता--उस दबाव के कारण इतना मजबूत और सख्त हो गया है कि अब हीरा है। कोयला ही था पहले। कोहिनूर भी कोयला था; लाखों वर्षों की प्रक्रिया और दबाव के बाद हीरा बन गया है।
कोयला और हीरा में फर्क नहीं है। पक जाए, तो हीरा। तो पक जाने का खयाल रखो। तुम्हारे काम पक जाए, तो राम। तुम्हारा क्रोध पक जाए, तो करुणा।
जिंदगी पकने का एक अवसर है।
चौथा प्रश्नः ओम। समझ में कुछ नहीं आता; प्रभुश्री समझायें। राम तो बस, राम ही हैं; राम किसके गीत गाये?
जिस दिन ऐसा समझ में आ जायेगा--कि राम तो बस, राम ही हैं; राम किसके गीत गये--उस दिन एक गीत तुमसे उठेगा, जो सिर्फ गीत होगा; किसी का गीत नहीं--बस, गीत होगा। एक सुगंध उठेगी--अनिर्वचनीय; एक सौंदर्य जगेगा--अव्याख्य।
राम का गीत तो तभी तक गाना पड़ता है, जब तक राम से दूरी है। फिर तो राम ही तुम्हारे भीतर गायेंगे; अपना ही गीत गायेंगे--स्व-गीत।
यह सारा जो विराट चल रहा है, यह राम अपना ही गीत गा रहे हैं। वृक्ष में राम हरे हैं; पक्षियों के कंठ में राम अनेक-अनेक ध्वनियों में प्रकट हुए हैं। सरिताओं में, सागरों की कलकल में राम का कलकल नाद है।
यह सारा नाद ब्रह्मनाद है। यह अनाहत ही चल रहा है। जिस दिन पहचानोगे, उस दिन पाओगेः राम अपना ही गीत गा रहे हैं। और किसका गीत गाने को है?
राम अपना ही नाच नाच रहे हैं। राम गुनगुना रहे हैं। लेकिन जब तक यह पहचान नहीं हुई, तब तक तुम्हें लगता हैः राम अलग--तुम अलग। तब तक राम का गीत गाना है। जब तक

दूरी है, तब तक राम का गीत गाना है। ऐसा राम का गीत गाते-गाते देर मिट जायेगी। जिस दिन दूरी मिट जायेगी, तुम राम के गीत हो जाओगे, तुम राम हो जाओगे। वही तो मलूक ने कहा: साहब--साहब हो गये। थे वही--वही हो गये। थोड़े देर बीच में भूल गये थे--कि मैं कौन हूं। थोड़ी देर आत्म-विस्मरण हो गया था।

परमात्मा तुमसे दूर नहीं है, सिर्फ आत्म-विस्मरण हो गया है।

तुम पूछे हो: समझ में कुछ नहीं आता। समझ में आने की बात भी नहीं है। समझ से तो सावधान। समझ--यानी बुद्धि की।

हृदय की समझ जगाओ। हृदय को समझ--यानी प्रेम; बुद्धि की समझ--यानी तर्क; बुद्धि की समझ--यानी विचार। हृदय की समझ--यानी श्रद्धा।

तुम कहते हो: समझ में कुछ नहीं आता। बुद्धि से समझने की कोशिश कर रहे होओगे, तो कुछ भी समझ में न आयेगा। क्योंकि ये बुद्धि अतीत बातें हो रही हैं; ये मलूकदास--ये बुद्धि के बाहर गये हुए लोग हैं। यह मस्ती, यह शराब--ये बुद्धि से बाहर जाने के उपाय हैं। यह बुद्धि से समझ में आयेगा न। यह गणित नहीं है, जिसे तुम हल कर लोगे। यह पहेली नहीं है, जिसको तुम सुलझा लोगे। यह जीवन का रहस्य है, इसे तुम जीयोगे, तो ही जानोगे। इसका स्वाद लोगे, तो जानोगे। चखो।

समझ में कुछ नहीं आता, प्रभुश्री समझायें। लाख समझायें, तो भी समझ में न आयेगा। समझ की यह बात नहीं। कुछ समझ से पार चलो।

समझ पर ही अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता है। समझ पर हो सत्य समाप्त नहीं हो जाता है। समझ ज्यादा से ज्यादा तुम्हें मंदिर के द्वार तक ला सकती है; मंदिर के भीतर न ले जा सकेगी। मंदिर के भीतर जाना हो, तो समझ को वही छोड़ देना होगा, जहां तुम जूते छोड़ आते हो; वहीं समझ भी रख आनी पड़ेगी; बुद्धि वहीं रख आनी पड़ेगी। भीतर तो निबुद्धि होकर जाओगे, बालक ही तरह निर्दोष होकर जाओगे, तो ही पहुंचोगे।

जीसस ने कहा है: जो बच्चों की भांति सरल हैं, वे ही केवल मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे और दूसरे नहीं।

तो तुम पूछते हो: समझायें। रोज तो समझा रहा हूं। समझ से समझ में आयेगा भी नहीं। फिर भी समझता हूं। समझाने से इतना भी समझ में आ जाये कि समझाने से समझ में नहीं आता, तो कुछ बात बनी। तो तुम द्वार पर आ कर खड़े हो गये।

एक दिन तो थक जाओगे--समझने से, समझाने से। एक दिन तो घबड़ा जाओगे--समझने से, समझाने। एक दिन तो कहोगे कि अब बहुत हो गई बुद्धि; अब बुद्धि को छोड़ते हैं। एक दिन तो बुद्धि बोझरूप हो जायेगी। और वह बड़े सौभाग्य का क्षण है, बुद्धि बोझरूप हो जाती है; अभी उठती है प्रार्थना; तभी उठता है प्रेम; तभी उठती है पूजा।

जिसकी जिल्लत में भी इज्जत है, सजा में भी मजा।

कुछ समझ में नहीं आता कि मुहब्बत क्या है।।

कुछ समझ में नहीं आता...! प्रेम समझ में थोड़े ही आता है। प्रेम तुमसे बड़ा है; समझ में आयेगा कैसे? तुम्हारी मुट्ठी बहुत छोटी है; प्रेम बड़ा आकाश है--मुट्ठी बांधी कि खो जायेगा। अगर आकाश चाहिए हो मुट्ठी में, तो मुट्ठी मत बांधना। खुले हाथ में तो आकाश होता है, बंद हाथ में आकाश खो जाता है।

हृदय को खोलो। खुला हुआ हृदय--और तुम समझ पाओगे। एक और ही तरह की समझ; एक दूसरी तरह की ही समझ; एक पृथक ढंग की ही समझ।

प्रार्थना में लगो। राम को गुनगुनाओ; राम के की गीत गाओ। असली बात तो गीत गाना है--राम तो बहाना है। तुम गीत गा सको, इसके लिए राम की खूंटी का सहारा ले लो। तुम गुनगुना सको; तुम नाच सको; तुम्हारे हृदय में छिपी हुई मुस्कुराहट ओठों तक आ जाये और तुम्हारे भीतर भरा हुआ मधुकलश छलकने लगे...।

बस, राम तो बहाना है। राम से कुछ लेना थोड़े ही है; राम से कुछ देना थोड़े ही है। इसलिए कोई भी नाम काम दे देगा। अल्लाह के गीत गाओ; खुदा के गीत गाओ; कि राम के, कि कृष्ण के--इसमें कुछ फर्क नहीं पड़ता।

गीत गाना सीख लो। प्रार्थना उठने लगे। जीवन से एक ऐसा संबंध बनने लगे, जो बुद्धि का नहीं है--हृदय का है।

समझो; गुलाब का फूल खिला। तुम उसके पास जा कर खड़े हुए। बुद्धि का संबंध तो यह है कि तुम सोचो: अरे! बड़ा सुंदर गुलाब! कहां से आया? ईरान से आया?--कहां से आया? ऐसा गुलाब कभी देखा नहीं; इतना सुंदर! इतना बड़ा फूल! बहुत देखे गुलाब, मगर ऐसा गुलाब नहीं देखा। ऐसी बहुत सी बातें सोचने लगो, विचार करने लगो, तो गुलाब से यह बुद्धि का संबंध हुआ।

खिला गुलाब; तुम गुलाब के पास आये। आंखें भर गई गुलाब से। नासापुट भर गये--गुलाब की गंध से। तुम नाचने लगे। ऐसा गुलाब कभी मिला नहीं था! तुम गीत गुनगुनाने लगे। तुमने गुलाब की स्तुति में एक गीत गाया; कि तुम नाचे; कि तुमने बांसुरी बजाई। यह संबंध दूसरे ढंग का हुआ; यह बुद्धि का न हुआ।

कभी नाचे हो--गुलाब के फूल के चारों तरफ--मगन हो कर--कि ऐसा फूल खिला? तुमने प्रभु को धन्यवाद दिया है? रोये हो कभी; आनंद के आंसू बहाये हो कभी--गुलाब के पास खड़े हो कर? तो एक दूसरे तरह का संबंध बना।

रात को आकाश में चांद देखा, तो सोचते लगे कि चांद की लंबाई-चौड़ाई कितनी है। मिट्टी-पत्थर है--क्या है? खाई-खड्डे है--क्या है? वैज्ञानिक सोचता है; चूक जाता है। जो आदमी चांद पर चल कर आये हैं, वे भी चूक गये। क्योंकि वह सब सोच-विचार का संबंध है। और भी तरह के लोग इस जमीन पर हुए हैं; कवि हुए हैं, रहस्यवादी हुए हैं; चांद पर वे कभी नहीं गये। चांद निकला--पूरा चांद निकला--और वे नाचे।

पूर्णिमा की रात और तुम नाचो ना, तो जरूर तुम्हारे भीतर कुछ मुरदा जैसा है। पूर्णिमा की रात और तुम आकाश को एकटक देखते न रह जाओ; भाव विह्वल न हो उठो...! सागर जैसी

चीज भी, जड़ चीज लहराने लगती है--पूर्णिमा को रात और तुम बिना लहराये रह जाते हो! सागर उत्तुंग तरंगें होने लगता है, और तुम्हारे भीतर कोई मदमस्ती नहीं आती।

बुद्धि ने खूब पथराया है तुम्हें। आंखों ने देखने की क्षमता खो दी है। हृदय में अंकुरण नहीं होता। पूरे चांद की रात तुम अगर नाच सको, तो एक तरह का संबंध बना। और मैं तुमसे कहता हूं कि जो आदमी चांद पर चलकर आये हैं, उनसे गहरा संबंध बना। चांद पर चलने से क्या होगा? तुम चांद के ज्यादा करीब पहुंच गये; तुमने चांद की आत्मा को छुआ।

जिन्होंने इस देश में कहा था कि चांद में देवता का निवास है, वे ज्यादा सच थे। चांद से देवता का निवास उसी क्षण हो जाता है, जिस क्षण चांद तुम्हारे हृदय को आंदोलित कर देता है। उस क्षण चांद फिर चांद नहीं रह गया--चंद्रदेव हो गया।

सूरज को जिन्होंने नमस्कार किया था किया था इस देश में; पानी का अर्ध्य चढ़ाया; सुबह-सुबह नदी के तट पर खड़े होकर ओंकार की ध्वनि की, उन्होंने ज्यादा सूरज को समझा था। वह समझ और ढंग की है। खयाल कर लेना। वह समझ वैज्ञानिक नहीं है; बुद्धिगत नहीं है। उन्होंने देखा, सूरज में--जीवन को उगते। सूरज हमारा जीवन है; उसके बिना हम न हो सकेंगे। हम सूरज की किरणें हैं। हम सूरज के बिना एक क्षण न हो सकेंगे।

जो हमारा स्रोत है, उसको देख कर हम नाचें न! और जो हमारा स्रोत है, उसको देख कर हम झुकें न, तो चूक हो गई। यह एक और तरह देखना है; यह एक और तरह का समझना है।

तो मैं तुमसे यही कहूंगा...। और जिसने पूछा है यह प्रश्न, उनका नाम है--स्वामी प्रेम सागर! तुम्हें नाम ही दिया--प्रेम सागर! अभी भी तुम समझने की बातें कर रहे हो? अब तो समझने की नासमझी छोड़ो। अब तो प्रेम की ना-समझी पकड़ो।

तुम मुझे दे दो महकती गंध जीवन के लिए
मांगता हूं आज कुछ अनुबंध जीवन के लिए
याचना मेरी धरोहर सी रहे बनकर सदा
तुम मुझे दो आज यह सौगंध जीवन के लिए
दर्द में डूबी हुई मन की सतह को ढूंढ दें
चाहता है ऐसे सहज संबंध जीवन के लिए
जी बिना बोले गुजर जाती तुम्हारे पास से
तुम मुझे दे दो वही मकरंद जीवन के लिए
जिंदगी का गीत भी अब तक अधूरा ही पड़ा
नेह में डूबे हुए छंद जीवन के लिए
तुम मुझे दे दो महकती गंध जीवन के लिए।

अब तो प्रभु से उस गंध को मांगो, जो जीवन को मंहका दे। अब तो प्रभु से छंद को मांगो, जो तुम्हारी जिंदगी को गीत बना दे।

अभी तो राम का गीत होगा--शुरुआत--बारहखड़ी--क, ख, ग,। अभी तो राम का गीत होगा। अभी तो राम तुम्हें पराया मालूम पड़ेगा, तो उसके गीत गाओगे। अभी तो भक्त बनोगे--भगवान दूर। फिर धीरे-धीरे करीब आओगे। फिर बहुत करीब आओगे। फिर एकदम भगवान के आरपार हो जाओगे। और तब तुम न पहचान सकोगे कि कौन भक्त है--और कौन भगवान। तब भी गीत उठेगा, लेकिन तब राम ही अपना गीत आयेंगे; तब प्रभु ही नाचेंगे। इसके पहले कि प्रभु तुम्हारे भीतर नाच सकें, और तुम प्रभु में नाच सको, नाच तो सीख लो।

आखिर प्रश्नः

जब हम होते तब तू नहीं,
अब तू ही है मैं नाहीं।

तो फिर मिलन कहां हुआ? कैसा हुआ? और किससे किसका हुआ?

मिलन और मिलन में भेद है। दो कंकड़ों को पास रख दो; बिलकुल पास रख दो--सटाकर पास रख दो। तो एक तरह का मिलन हुआ। दोनों अभी अलग-अलग हैं; सिर्फ परिधि छूती है। बाहर का जरा-सा हिस्सा छूता है। भीतर दोनों अलग-अलग हैं मिलकर भी टूटे हैं। दो तो अभी दो हैं, तो मिले कहां?

फिर पानी की दो बूंदों को पास ले आओ। सुबह जाओ; घास के पत्तों पर जमी हुई ओस की बूंदों को पास ले आओ। पास आती बूंदें--पास आई--आई, जब तब बिलकुल पास न आई, तब तक दो हैं। जैसे ही पास आ गई, एक हो गई।

एक यह भी मिलन है। यहां अद्वैत हो गया। दो दो न रहे। यही वास्तविक मिलन है; क्योंकि दो कंकड़ पास आकर भी कहां पास थे? एक दूसरे के प्राण में नहीं डूबे थे। एक दूसरे के केंद्र से मिले नहीं थे। बाहर-बाहर परिधि-परिधि मिली थी। ये जो दो बूंद ओस की आकर पास खो गई, ये जो शबनम की दो बूंदें एक दूसरे में लीन हो गई, अब पहचानना भी मुश्किल है कि कौन-कौन है। अब तुम उन्हें दुबारा न कर सकोगे--पुराने ढंग से--कि यह पुरानी नंबर एक, यह नंबर दो। अब तो मेल हो गया।

परमात्मा दूसरे ढंग का मिलन है। जैसे दो ओस की बूंदें मिलती--ऐसा। इस संसार का प्रेम दो कंकड़ जैसा प्रेम है। जैसे पति-पत्नी मिलते, मित्र मिलते। ये सब दो कंकड़ करीब आते--बस; बहुत करीब आ जाते, तो भी दूर बने रहते, अलग बने रहते, थलग बने रहते।

परमात्मा ऐसे है, जैसे बूंद सागर में उतरती है। लीन हो गई। सच है; इसलिए संतों ने कहा है कि जब तक मैं हूं, तब तक तू नहीं। और जब तू होता है, तो मैं नहीं होता। एक ही बचता है।

कबीर ने कहा हैः प्रेम गली अति सांकरी, तामे दो न समाय। ये दो जहां नहीं समाते, उस गली में ही समा जाने का नाम भक्ति है। भक्त और भगवान एक हो जाते हैं।

इसलिए तुम्हारा पूछना--कि तो फिर मिलन कहां हुआ, एक अर्थ में ठीक है। अगर तुम पहले मिलन का हिसाब रखते हो, तो दूसरा मिलन मिलन नहीं। अगर तुम दूसरे को मिलन

कहते हो, तो पहला मिलन मिलन नहीं। तुम समझ लो; तुम्हें जो कहना हो। शब्दों में कुछ सार नहीं है।

कैसा हुआ? किसका हुआ? कहां हुआ?

तुम मिलन शब्द के ये दो अर्थ खयाल में ले लो। दो कंकड़ों का मिलन; अगर तुम उनको मिलन मानते हो, तो फिर परमात्मा से मिलन को मिलन नहीं कहना चाहिए। अगर तुम कहते हो, मिलन की वही परिभाषा है--और किसी ढंग का मिलन स्वीकार नहीं होगा, तो फिर परमात्मा और भक्त का मिलन मिलन नहीं कहा जा सकता; लीनता कहो; विसर्जन कहो; नाम से कुछ फर्क नहीं पड़ता।

अगर तुम कहते हो कि दूसरा मिलन ही वास्तविक मिलन है, क्योंकि पहले मिलन में तो मिल हुआ कहां! दो तो दो ही बने रहे। पास आ गये; मिलन कहां हुआ? अगर दूसरे का मिलन कहते हो, तो भी चलेगा। तो फिर पहले को मिलन मत कहो; संग-साथ कहो--मिलन मत कहो। संबंध कहो--मिलन मत कहो।

मगर भाषा में अब तक दोना प्रयोग होते रहे हैं। मिलन के दोनों अर्थ हैं: तक संबंध का--और एक विसर्जन का।

भाषा पर मत अटकना; शब्दों पर मत अटकना; सार को ग्रहण करना।

जहां भी भाषा बाधा बने, वहां स्मरण रखना। जहां शब्द बहुत अतिशय हो जाए, वहां खयाल रखना।

यह परमात्मा की यात्रा--भाषा के बाहर यात्रा है; यह शब्दातीत है। यहां शब्द पीछे छोड़ जाने हैं। इसलिए शब्दों के साथ बहुत माथा-पच्ची मत करना अन्यथा तुम कभी भी इस परम निगूढ सत्य को न समझ पाओगे।

इसलिए परमात्मा के संबंध में जितन शब्द उपयोग किये गये हैं--सब विरोधाभासी हैं। कहते हैं--परमात्मा से मिलन--लेकिन विरोधाभासी बात है, क्योंकि न तो मिलने वाला बचा, न वह बचा--जिससे मिलना है। दोनों खो गये।

कहते हैं: परमात्मा बहुत दूर; और यह भी कहते हैं कि परमात्मा बहुत पास; दोनों बातें कैसे साथ होंगी? कहते हैं: परमात्मा को खोजना है; और यह भी कहते हैं कि परमात्मा तुम्हारे भीतर मौजूद है। ये दोनों बातें साथ कैसे होंगी? पर ये दोनों बातें साथ हो रही हैं।

हमारी भाषा द्वंद्वात्मक है; हमारी भाषा में हर चीज में द्वंद्व है। और परमात्मा का अस्तित्व निर्द्वंद्व है। निर्द्वंद्व के लिए, द्वंद्वातीत के लिए हमारी भाषा समर्थ नहीं है--प्रकट करने में। इसलिए जो भी हम बोलते हैं--परमात्मा के संबंध में, उसे बच्चे की तुतलाहट समझना। जो भी कहां गया है, परम से परम ज्ञानियों ने भी जो कहां हैं, वह बच्चों की तुतलाहट है। ऐसा स्मरण रहे, तो तुम्हारे मन में व्यर्थ की झंझटें खड़ी न होंगी और व्यर्थ के प्रश्न न उठेंगे।

निशब्द हो गया चित्त ही उसके प्रति खुलता है।

आज इतना ही।

परमात्मा को रिझाना है
तीसरा प्रवचन
श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रात; दिनांक १३ मई, १९७७
ना वह रिझै जप तप कीन्हें, ना आतम को जारे।
ना वह रीझै धोती टांगे, ना काया के पखारे।।
दया करै धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।
अपना सा दुःख सब का जाने, ताहि मिलें अविनासी।।
सहै कुसब्द बादहू त्यागे, छांड़ै गर्व-गुमाना।
यही रीझ मेरे निरंकार की, कहत मलूक दिवाना।।
राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरत।
अचसर न चूक भोंदू, पायो भला दांव रे।।
जिन तोको तन दीन्हों, ताको न भजन कीन्हों।
जनम सिरानो जात तेरो, लोहे कैसो ताव रे।।
राम जी के गाव गाव, राम जी के तू रिझाव।
राम जी के चरन कमल, चित्त मांहि लाव रे।।
कहत मलूकदास, छोड़ दे तैं झूठी आस।
आनंद मगन होइके तैं हरिगुन गाव रे।
राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे।
बाबा मलूकदास भक्त हैं--ज्ञानी नहीं; प्रेमी हैं--ध्यानी नहीं। सत्य को उन्होंने हृदय के माध्यम से, हृदय के द्वारा जाना है।
जीवन के सत्य को पहचानने की दो व्यवस्थाएं हैं: एक बुद्धि का जागरण हो; सोयी हुई चेतना जागे--बुद्ध का मार्ग। मस्तिष्क के विकार दूर हों, विचार दूर हों; बुद्धि निर्मल बने--दर्पण बने। वैसे सत्य यदि जाना जाए, तो सत्य का नाम परमात्मा नहीं। परमात्मा प्रेमी के द्वारा दिया गया नाम है। इसलिए बुद्ध के मार्ग पर परमात्मा की कोई जगह नहीं है। न महावीर के मार्ग पर परमात्मा की कोई जगह है। परमात्मा शब्द सार्थक नहीं है--ध्यान की व्यवस्था में।
दूसरा मार्ग है: हृदय के विकार दूर हों, हृदय की संवेदनशीलता बढ़े; हृदय की भावना प्रगटे; प्रेम जगे।
बुद्धि जगे, तो जो मिलता है, उसे हम कहते हैं--सत्य। हृदय जगे, तो जो मिलता है, उसे हम कहते हैं--प्रभु।

मिलता तो एक ही है; नाम दो हैं। दो अलग ढंग से खोजे गये मार्ग से, एक ही सत्य को दो अलग ढंग से देखा गया है; एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए परमात्मा और सत्य की बात में कोई विरोध नहीं है। लेकिन पहुंचने वाले अलग-अलग द्वार से आये हैं।

परमात्मा तक जो आया है--वह प्रेमी की पगडंडी से आया है। सत्य तक जो आया है, वह बुद्धि के राज-पथ से आया है। और ध्यान रखना: बुद्धि को मैं कह रहा हूं--राज-पथ और प्रेम को मैं कह रहा हूं--पगडंडी। सकारण।

बुद्धि का राज-पथ है--साफ-सुथरा है; सीधा है; विधि-विधान हैं; तर्क युक्त है। महावीर के वचन अति तर्कयुक्त हैं। वैसे ही बुद्ध के वचन हैं। बुद्ध से विवाद करके जीतना संभव नहीं है। बुद्ध की बात माननी ही पड़ेगी। बुद्ध की बात तर्कातीत नहीं है। तर्कातीत की चर्चा ही नहीं की है। जो तर्क में आ सके, उसका ही निर्वचन हुआ है। तो बुद्ध से नास्तिक भी राजी हो जायेगा। अनेक नास्तिक राजी हुए। कितना ही बुद्धिमान व्यक्ति हो, कितनी ही बुद्धि का विलास हो, बुद्ध के पास आ कर झुक जायेगा।

भक्त की भाषा अटपटी है; तर्क के पार है; प्रेम की है; पगडंडी की तरह है--इरछी-तिरछी है। कब बायें घूम जाती है, कब दायें घूम जाती है--कहना मुश्किल है। विरोधाभासी है। केवल वे ही समझ पायेंगे, जो श्रद्धा का सूत्र पकड़ कर चलेंगे।

बुद्ध के मार्ग पर--बुद्धि के मार्ग पर श्रद्धा अनिवार्य नहीं है। बुद्धि के मार्ग पर सुविचार अनिवार्य है। श्रद्धा पीछे आयेगी; अनुभव के बाद आयेगी; अनुभव से आयेगी। पहले अपेक्षा नहीं है।

प्रेम के मार्ग पर श्रद्धा पहली सीढ़ी है। प्रेम--श्रद्धा से ही शुरू होता --अतक्र्य श्रद्धा; अनुभव पीछे होगा। अनुभव श्रद्धा से निकलेगा।

बुद्धि के मार्ग पर जो अंतिम है--प्रेम के मार्ग पर वह प्रथम है। बुद्धि के मार्ग पर भी समर्पण होता है, लेकिन अंत में। मंजिल जब बिलकुल करीब आ जाती है, तब समर्पण होता है।

बुद्धि का रास्ता राज-पथ की तरह है--साफ-सुथरा है। असुरक्षा नहीं है। प्रेम का रास्ता पगडंडी की तरह है; बीहड़ से गुजरता है; सुरक्षा नहीं है।

प्रेमी के लिए साहसी होना जरूरी है। प्रेम साहस मांगता है। जो बुद्धि में बहुत कुशल हैं, इतना साहस नहीं जुटा पाते। प्रेम के रास्ते पर पागल जाते हैं। प्रेम के रास्ते पर पहला ही चरण समर्पण का है--अपने को मिटा डालने का है।

मलूकदास प्रेमी हैं: इस बात को पहले खयाल में ले लेना।

फिर मैंने कहा: बुद्धि का मार्ग राज-पथ जैसा है, क्योंकि बुद्धि सभी के पास है--और एक जैसी है। बुद्धि के नियम एक जैसे हैं। दो और दो--चार मेरे लिए ही नहीं होते, तुम्हारे लिए भी दो और दो चार होते हैं। और दो और दो चार, भारत में ही नहीं होते, तिब्बत में भी होते हैं, जापान में भी होते है, चीन में भी होते हैं। चांदतारों पर भी अगर आदमी होगा, तो दो और दो चार ही होंगे। कहीं भी होगा आदमी, कहीं भी बुद्धि होगी, तो दो और दो चार होगे।

बुद्धि के नियम सार्वभौम हैं--यूनिव्हर्सल हैं। इसलिए हजारों लोग बुद्धि के मार्ग पर साथ-साथ चल सकते हैं। सहमति हो जायेगी। प्रेम के मार्ग पर भीड़-भाड़ नहीं चलती। प्रेम के मार्ग पर अकेला चलना होता है, इसलिए--पगडंडी।

मेरा प्रेम, बस, मेरा प्रेम है। उस जैसा प्रेम दुनिया में कहीं भी नहीं है तुम्हारा प्रेम--तुम्हारा प्रेम है; उस जैसा प्रेम न पहले कभी हुआ है, न फिर कभी होगा।

प्रेम वैयक्तिक है। प्रेम का स्वाद व्यक्ति का स्वाद है। प्रेम गणित जैसा नहीं। है--कि दो और दो चार। प्रेम काव्य है। प्रेम में निजता है। हर प्रेमी का प्रेम उसके हस्ताक्षर लिए होता है। इसलिए--पगडंडी।

इसलिए बुद्ध के वचन, शंकराचार्य के वचन, महावीर के वचन में तालमेल बिठाया जा सकता है। कोई अड़चन नहीं है। लेकिन मलूकदास, मीरा और चैतन्य में तालमेल बिठाना बहुत कठिन मालूम होगा।

प्रेम की निजता है। प्रेम का अनूठापन है--अद्वितीयता है, इसलिए--पगडंडी। छोटा सा, संकरा सा रास्ता है। कबीर तो कहते हैं: इतना संकरा है कि--तामे दो न समाय। एक ही चल पाता है। इसलिए जब तक भक्त रहता है, भगवान नहीं हो पाता। दो के लायक भी जगह नहीं है। प्रेम गली अति सांकरी। अब भक्त मिट जाता है, तो भगवान हो जाता है। जगह ही इतनी है! दो के लायक भी स्थान नहीं है। इसलिए--पगडंडी। बड़ी छोटी, संकीर्ण पगडंडी।

प्रेम के मार्ग पर केवल मतवाले जाते हैं--दीवाने जाते हैं। इसलिए मैंने कहां कि मलूकदास पियक्कड़ हैं। शराबी हैं। प्रेम का नशा चाहिए।

बुद्धि होशियारी से चलती है; प्रेम लड़खड़ा के चलता है। प्रेम में एक मस्ती है; बुद्धि में साफ-सुथरापन है। प्रेम में एक रस है; बुद्धि रूखी-सुखी है। बुद्धि का राज-पथ मरुस्थल से गुजरता है। प्रेम की पगडंडी हरे जंगलों, फूलों, पक्षियों के कलरव से; झीलों, सरोवरों के पास से गुजरती है।

प्रत्येक व्यक्ति को निर्णय करना होता है कि क्या उसके हृदय के साथ, क्या उसके व्यक्ति के साथ, क्या उसकी बुद्धि के साथ मेल खाता है। और कोई दूसरा निर्णायक नहीं हो सकता है। प्रत्येक को अपने भीतर ही निर्णय करना होता है। जिस बात से तुम्हारे भीतर उमंग उठ आती हो, जिस बात को सुन कर तुम्हारे भीतर रोमांच हो जाता हो, जिस बात को सुनकर तुम्हारे भीतर श्रद्धा उमड़ती हो--वही तुम्हारा मार्ग है। उसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

और भूल कर भी दूसरे के मार्ग मत चलना। क्योंकि दूसरे के मार्ग से कोई कभी नहीं पहुंचता; अपने ही मार्ग से पहुंचता है।

इसलिए कृष्ण कहते हैं: स्वधर्मे निधनं श्रेयः--अपने धर्म में मर जाना भी श्रेयस्कर है। उसका यह मतलब मत समझना कि--हिंदू धर्म में या मुसलमान धर्म में। उसका अर्थ होता है: जो तुम्हारी निजता है, स्वधर्म है...। अगर भक्ति तुम्हारी निजता है, तो उसमें मर जाना भी

बेहतर है। अगर ज्ञान तुम्हारी निजता है, तो उसमें मर जाना बेहतर है। पर धर्मो भयावहः--दूसरे का धर्म बहुत भयानक है; भूल कर मत जाना। और इसीलिए बड़ा उपद्रव है--जगत में। तुम अपनी सुनते ही नहीं! तुम अपनी गुनते ही नहीं। दूसरे जैसा कहते हैं, वैसा मान कर चल पड़ते हो।

यह संयोग की बात है कि तुम जैन घर में पैदा हुए, कि हिंदू घर में पैदा हुए। इससे धर्म तय नहीं होता। तुम्हें धर्म तो तय करना पड़ेगा।

धर्म इतना सस्ता नहीं, कि जन्म से तय हो जाए। धर्म के लिए तो स्वयं निर्णय लेना होता है। जिसने स्वयं निर्णय नहीं लिया, वह चलता रहता है--दूसरी की मान कर; पर-धर्म मान कर चलता रहता है। और उसका जीवन व्यर्थ है; उसकी मृत्यु व्यर्थ है। अवसर खो जाता है। धर्म की शुरुआत ही तब होती है, जब तुम निर्णय लेते हो कि मेरा स्वयं का मार्ग क्या है।

मैं ऐसे जैनों को जानता हूं, जो नाचना चाहेंगे। लेकिन महावीर के सामने नाचने की मनाही है। जो हाथ में दीये जला कर गुनगुनाना चाहेंगे; जो वीणा उठा कर गीत गाना चाहेंगे। लेकिन महावीर के सामने उसकी मनाही है। नग्न महावीर के सामने बांसुरी बजाओगे--भली लगेगी भी नहीं!

मैं ऐसे हिंदुओं को भी जानता हूं, जो राधा-कृष्ण की मूर्ति के सामने बांसुरी बजाते हैं, लेकिन उनकी बुद्धि को यह बात पटती नहीं है। बजाते हैं; गाते हैं; गुनगुनाते हैं; बुद्धि को बात पटती नहीं है। झूठा प्रपंच करते रहते हैं। किसी घर में पैदा हो गये हैं, तो ढोते हैं--बोझ की तरह।

और धर्म अगर बोझ की तरह ढोया जाया, तो तुम्हें क्या खाक मुक्त करेगा? धर्म जब पंख बनता है, तो मुक्त करता है। धर्म जब आनंद और उल्हास होता है, तब मुक्त करता है। धर्म जब तुम चुनते हो, तब मुक्त करता है।

जिन लोगों ने महावीर के पास आ कर शरण ली थी, उन्होंने चुना था। अब उनके घर में जो बच्चे पैदा हो कर जैन हो रहे हैं, उन्होंने चुना नहीं है। जो मीरा के साथ दीवाने हो कर नाचे थे, उन्होंने चुना था। अब तुम परंपरागतरूप से मीरा के गीत गुनगुना रहे हो; न न उनमें प्राण रह गया, न श्वास रह गयी; लाश ढोये चले जा रहे हो।

दुनिया में इतना अधर्म है, उसका मौलिक कारण यही है कि लोग अपने स्व-धर्म की चिंता ही नहीं कर रहे हैं। जन्मगत धर्म के साथ बंधे हैं।

इधर हम जो प्रयोग कर रहे हैं, वह यही है ताकि तुम फिर से स्व-धर्म की चिंता कर सको। फिर से चुनो। चुनाव अभी हुआ ही नहीं है।

जन्म से तय कुछ होता ही नहीं है। जन्म से शरीर मिलता है--आत्मा नहीं। आत्मा तो तुम लेकर आते हो--लंबी-लंबी यात्रा से। उस लंबी यात्रा में न मालूम क्या-क्या तुमने सीखा है। क्या-क्या तुमने किया है। उस सारी सिखावन के आधार पर निर्णय होगा: कौन-सी बात तुम्हें रुची है। जो बात तुम्हें रुच हाय, वही तुम्हारा स्व-धर्म है। फिर बस छोड़ कर--हिसाब-किताब--स्व-धर्म के पीछे चल पड़ना। अगर स्व-धर्म भटका भी दे, तो भी पहुंच जाओगे।

और पर-धर्म अगर पहुंचा भी दे, तो नहीं पहुंच पाओगे। इसे खयाल में लेना; यह सूत्र बहुमूल्य है।

स्व-धर्म में अगर तुम डुब भी जाओ, तो भी पहुंच जाओगे। लेकिन पर-धर्म में अगर तुम सुरक्षा से चलते भी रहो, तो भी कहीं न पहुंचोगे। दूसरे के माध्यम से कोई पहुंचता नहीं है। न तो दूसरे के द्वारा तुम भोजन कर सकते हो; न दूसरे की आंख से देख सकते हो; न दूसरे के पैर से चल सकते हो। तो दूसरे की आत्मा से कैसे तुम परमात्मा को झांकोगे? अपनी ही खिड़की की खोलनी पड़ती है।

मलूकदास प्रेम की खिड़की को खोलकर खड़े हैं। इस बात को खयाल में ले कर उनके सूत्रों को समझना।

ना वह रीझै जपत्तप कीन्हें, न आतम को जारे।
ना वह रीझे धोती टांगे, ना काया को पखारे।।

उस परमात्मा को तुम रिझा न सकोगे--न तो जप से, न तप से; न आत्मा को चलाने से--पीड़ा देने से; न छुआ-छूत--शुद्धि के विचार से--वर्ण-धर्म से; और न काया की शुद्धि से।

पहली बात समझने की है: ना वह रीझै...। रीझै शब्द भक्त का है; उसमें भक्ति की कुंजी छिपी है।

परमात्मा को पाना नहीं है; परमात्मा को रिझाना है। समझो: इसका अर्थ हुआ--कि परमात्मा है: इस पर तो भक्त को संदेह ही नहीं है। परमात्मा के होने में तो श्रद्धा है ही।

परमात्मा के लिए भक्त प्रमाण नहीं मांगता। भक्त यह नहीं कहता कि सिद्ध करो: परमात्मा है। जो कहे: सिद्ध करो--परमात्मा है, उसके लिए भक्ति का मार्ग नहीं है। भक्त के लिए परमात्मा ही है। और अब चीजें असिद्ध हैं, सिर्फ परमात्मा सिद्ध है। यह बात बिना किसी प्रमाण के उसे स्वीकार है। ज्ञानी को अखरेगी यह बात--कि यह क्या अंधापन हुआ! लेकिन ज्ञानी के लिए जो आंख है, वह भक्त के लिए आंख नहीं है। और ज्ञानी के लिए जो अंधापन है, वह भक्ति के लिए आंख है।

श्रद्धा बड़ी कला है। श्रद्धा कोई छोटी-छोटी घटना नहीं है। श्रद्धा का अर्थ होता है: संदेह से प्राण व्यथित नहीं होते।

हर बच्चा श्रद्धा लेकर पैदा होता है। श्रद्धा स्वाभाविक है। जब बच्चा अपनी मां के स्तन पर मुंह रखता है और दूध पीना शुरू करता है, तो श्रद्धा से--संदेह से नहीं। संदेह हो, तो मुंह अलग कर ले। पता नहीं--जहर हो। पहले प्रमाण चाहिए। स्तन से पोषण मिलेगा--इसका प्रमाण क्या है? इसके पहले तो बच्चे ने कभी स्तन से पोषण पाया नहीं है। पहली दफा स्तन को पीने चला है। प्रमाण कहां है? जिसके स्तन से पीने चला है दूध, वह जहरीली न होगी, इसका सबूत क्या है?

नहीं; बच्चा पानी शुरू कर देता है। एक सहज श्रद्धा है; एक आस्था है, जो अभी संदेह से मलिन नहीं हुई है। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होगा, श्रद्धा संदेह से मिलन होने लगेगी। वह अपने

बाप पर भी संदेह करेगा, अपने मां पर भी संदेह करेगा। जैसे-जैसे बड़ा होगा, वैसे-वैसे संदेह भी बड़ा होगा।

संदेह हम सीखते हैं; श्रद्धा हम लाते हैं। कुछ धन्यभागी लोग हैं, जो अपनी श्रद्धा को बचा लेते हैं; नष्ट नहीं हो पाती। बड़ा साहस चाहिए--श्रद्धा को बचाने के लिए। कौन सा साहस?...

संदेह में कोई बड़ा साहस नहीं है। संदेह तो भय के कारण ही पैदा होता है। इसे थोड़ा समझो। संदेह आता है--भय की छाया के कारण। जब तुम डरते हो, तभी तुम संदेह करते हो। संदेह का मतलब होता है: पता नहीं, दूसरा लूट लेगा; चोरी करेगा; मारेगा; क्या होगा! जब तुम भयभीत होते हो, तब संदेह आता है। जब तुम निर्भय होते हो, तब श्रद्धा होती है।

जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होगा, भय भी होगा। परिचित होगा उनसे, जो अपने नहीं हैं। परिवार के बाहर जायेगा। लोग लूट लेंगे कभी; लोग मार देंगे कभी; कभी लोग धोखा देंगे। धीरे-धीरे संदेह बढ़ेगा। धीरे-धीरे शंकालु दृष्टि पैदा होगी। धीरे-धीरे अपने संदेह में घिरा रहने लगेगा। सजग होकर चलेगा--कि कोई लूट न ले; कोई धोखा न दे दे। और ऐसे धीरे-धीरे मनुष्यता पर भरोसा खो देगा; अस्तित्व पर भरोसा खो देगा। इस भरोसा खो देने को कोई बड़ी गुणवत्ता नहीं कहा जा सकता। यह तो इसी बात का सबूत है कि भय बहुत घना हो गया है।

निर्भय व्यक्ति ही श्रद्धा को उपलब्ध होते हैं। और श्रद्धा को उपलब्ध होते हैं कहना ठीक नहीं; निर्भय व्यक्ति अपनी श्रद्धा को खंडित नहीं होने देते। जिस श्रद्धा को जन्म के साथ लेकर आये थे, उसे बचाये रखते हैं--धरोहर की तरह।

परमात्मा पर श्रद्धा का इतना ही अर्थ है--जैसे मां पर श्रद्धा। मां से तुम्हारा जन्म हुआ है, इसलिए मां से जो मिलेगा, वह पोषण होगा। इस अस्तित्व से हमारा जन्म हुआ है, इसलिए अस्तित्व हमारा शत्रु नहीं हो सकता। यह अस्तित्व हमारी मां है।

इस अस्तित्व को ही हमने अगर शत्रु मान लिया, तो हद हो गयी! जिससे हम पैदा हुए हैं, वह हमारे विपरीत हो सकता है। और जिसमें हम फिर पुनः लीन हो जायेंगे, यह हमसे विपरीत नहीं हो सकता। हम उसी के फैलाव हैं। जैसे सागर में तरंगें हैं, ऐसे हम परमात्मा की तरंगें हैं। भक्त को यह बात प्रगाढ़ रूप से प्रकट है। इसके लिए किसी प्रमाण की जरूरत नहीं है। ऐसा उसे स्पष्ट अनुभव होता है। और इस अनुभव में कोई खामी मुझे दिखायी नहीं पड़ती; कोई भूलचूक दिखायी नहीं पड़ती।

ये वृक्ष पृथ्वी पर भरोसा किये हैं; पृथ्वी में जड़ें फैला रहे हैं। जानते हैं कि पृथ्वी रसवती है; मां हैं। ये वृक्ष आकाश में सिर उठा रहे हैं; ये सूरज को छूने के लिए चले हैं; जानते हैं कि सूरज पिता है; उसकी किरणों में प्राण है; जीवन है। इस श्रद्धा के बल पर ही ये जी रहे हैं। किसी वृक्ष को अश्रद्धा हो जाये, वह मरना शुरू हो जायेगा। डर हो जाए पैदा--कि पता नहीं: पृथ्वी से रस मिलेगा कि मौत; कि सूरज है भी, कि नहीं--ऐसा भयभीत हो जाए वृक्ष, तो सिकुड़ जायेगा--अपने में बंद हो जायेगा। खंडित होने लगेगी। उसकी जीवन धारा। जीवन के रास-स्रोत सुख जायेंगे।

भक्त रसपूर्ण है। भक्त की पहली शर्त है--कि परमात्मा है। इसमें वह प्रमाण नहीं मांगता। इसलिए कहते हैं मलूक: ना वह रीझे...। इसलिए यह तो सवाल ही नहीं उठाना कि है परमात्मा या नहीं। यह भक्त के लिए सवाल नहीं है।

अगर यह सवाल तुम्हें उठता हो, तो भक्ति तुम्हारा मार्ग नहीं है। फिर तुम्हारा मार्ग ज्ञान है। फिर तुम्हें संदेह कर कर के ही लंबी यात्रा करनी पड़ेगी--संदेह की। इतना संदेह करना पड़ेगा कि धीरे-धीरे ऐसी घड़ी आ जाए कि तुम्हें संदेह पर भी संदेह हो जाए, तब तुम्हें श्रद्धा पैदा होगी; उसके पहले नहीं। वह बड़ी लंबी यात्रा है। संदेह पर भी जब तुम्हें संदेह पैदा हो जायेगा, जब संदेह पर संदेह आ आयेगा, तब तुम्हें श्रद्धा पैदा होगी।

भक्त की श्रद्धा कुंवारी है; मौजूद है; है ही; उसे लाने की जरूरत नहीं है। परमात्मा है--इसलिए अब सवाल क्या है! सवाल यह है कि परमात्मा को कैसे रिझायें?

ज्ञानी का सवाल है--कि परमात्मा है या नहीं।

केशवचंद्र रामकृष्ण के पास गये, तो उन्होंने पूछा--परमात्मा है या नहीं? वह ज्ञानी का सवाल है। और रामकृष्ण खूब हंसने लगे। उन्होंने कहा, यह सवाल कभी मुझे कभी उठा ही नहीं! परमात्मा है या नहीं?--इसका उत्तर मैंने कभी खोजा नहीं, क्योंकि यह सवाल मुझे कभी उठा नहीं। परमात्मा तो है ही । उसके अतिरिक्त और कौन है! जो है--वह परमात्मा का रूप है।

केशवचंद्र बहुत विवाद करने लगे। तर्कनिष्ठा व्यक्ति थे। और रामकृष्ण बड़े प्रफुल्लित होने लगे; बड़े आनंदित होने लगे। और जब विवाद अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचने लगा, तो रामकृष्ण ने उठ कर केशव को गले लगा लिया। केशव तो बहुत हैरान हुए--कि यह मामला क्या है! वे तो खंडित कर रहे थे। उन्होंने पूछा, आप यह क्या कर रहे हैं परमहंसदेव? लोग कहते हैं कि आप पागल हैं, क्या सच ही कहते हैं? क्योंकि मैं तो खंडित कर रहा हूं। रामकृष्ण ने कहा खंडन? सुन कौन रहा है! मैं तुम्हें देख रहा हूं। तुम्हें देख कर मुझे परमात्मा का भरोसा आ रहा है। ऐसी प्रतिभा, परमात्मा के बिना हो कैसे सकती है?

फर्क समझना। इतनी प्रतिभा--कि परमात्मा को भी खंडित कर सके, परमात्मा के बिना कैसे हो सकती है? तुम्हारे भीतर अपूर्व परमात्मा प्रकाश हो रहा है। केशव, तुमने नहीं देखा। मैं देख रहा हूं; रामकृष्ण ने कहा। तुम्हें मैं गले लगाता हूं। तुमने लौट कर नहीं देखा--अपना प्रकाश, वह तुम्हारी मरजी। लेकिन मैं तुम्हारे भीतर बड़ा प्रकाश देखता हूं।

केशवचंद्र हारे हुए लौटे! इसे आदमी से जीतने का उपाय नहीं है। सोचते-विचारते लौटे कि बात क्या है! ऐसा तो कभी उनके जीवन में कोई अनुभव न आया था। वे विवाद कर रहे थे। विवाद का उत्तर दिया जाना चाहिए था। उत्तर दिया भी गया। पर बड़ा अनूठा उत्तर दिया गया--कि तुम्हारे विवाद करने की क्षमता, परमात्मा का सबूत है। तुम्हारे तर्क की यह प्रगाढ़ता, वह त्वरा--परमात्मा का सबूत है।

कहते हैं मलूकदास; ना वह रीझे...। रीझने से बत शुरू होती है। रिझाना है। प्रेमी तो है। जानने की बात नहीं है। है ही। उसका हमें पता नहीं है। वह मौजूद ही है। अब सवाल इतना है कि कैसे उसे रिझायें।

फर्क समझना।

जब ज्ञानी बड़े-बड़े प्रमाण जुटा कर तय कर लेता है कि ठीक सत्य है; तब वह कहता है: अब मैं सत्य को कैसे पाऊं?

भेद समझना।

रिझाने की तो बात उठ ही नहीं सकती--ज्ञानी के मन में। रिझाने जैसा पागलपन--ज्ञानी सोच भी नहीं सकता। ज्ञानी सोचता हैं कि पहले तो सत्य है या नहीं, अगर सिद्ध हो जाता है--तर्क और गणित से--कि है, तो फिर वह पूछता है कि मैं सत्य को कैसे पाऊं।

ज्ञानी की दृष्टि अपने पर होती है। भक्त पूछता है: तुम्हें कैसे रिझाऊं। यह तो वह पूछता ही नहीं--कि तुम्हें कैसे पाऊं। यह तो सवाल ही नहीं है। तुम्हें पाया ही हुआ है। अब बात इतनी ही है कि किस ढंग से नाचूं कि तुम्हारे मन में, मेरे प्रति, प्रसाद बरस जाए--तुम्हारी तरफ से। कैसे तुम्हें प्रसन्न कर लूं--तुम रूठे हो जैसे।

फर्क देखना।

ज्ञानी सोचता है: मैंने किये होंगे पाप-कर्म, इसलिए परमात्मा मुझे नहीं मिल रहा है; सत्य मुझे नहीं मिल रहा है। भक्त कहता है: परमात्मा रूठ कर बैठे हैं। खेल चल रहा है। जैसे प्रेमी रूठ जाता है। परमात्मा रूठ कर बैठे हैं, इन्हें कैसे मनाऊं कैसे रिझाऊं; किस विधि नाचूं; किस विधिगाऊं--कि यह रूठना परमात्मा भूल जाए?

ना वह रीझे जपतप किन्हें, ना आतम को जारे।

और कहते हैं मलूक कि तुम कितना ही जप करो--कितना ही तप, उसे रिझा न पाओगे। यह कोई रिझाने की बात हुई! यह तो और रूठा दोगे!

अब कोई आदमी बैठा--और जप कर रहा है। जप यानी विधि। फर्क समझना। भक्त भी भगवान का नाम लेता है। आगे मलूकदास कहेंगे: राम कहो, राम कहो बावरे। लेकिन वह जप नहीं है। जप है--विधि, टेकनीक।

एक आदमी जप करने बैठा है। वह कहता है: राम-राम-राम। इसमें कोई रस नहीं है; कोई प्रेमी नहीं है। दोहराता है इसे--यंत्रवत; एक विधि की भांति। इसे कर रहा है, क्योंकि कहा गया है कि इस तरह मंत्र को दोहराने से विचार शांत हो जायेंगे, मन शून्य होगा--और उस शून्य में परमात्मा के दर्शन होंगे। यह विधि है। अगर उससे कहा गया होता कुछ और, तो वह वही करता।

बहुत विधियां हैं--दुनिया में।

पश्चिम के बहुत बड़े कवि लार्ड टेनिसन ने लिखा है अपने संस्मरणों में कि मुझे बचपन से ही न मालूम कैसे यह विधि हाथ आ गई कि जब भी मैं अकेला बैठा होता, तो अपना ही नाम दोहराने लगता--टेनिसन, टेनिसन, टेनिसन । और उसके दोहराने से मुझे बड़ा रस आता।

बड़ी मस्ती छा जाती। मैं किसी से कहता भी नहीं था, क्योंकि लोग पागल समझेंगे। फिर तो धीरे-धीरे रस इतना बढ़ने लगा कि यह दैनिक कृत्य हो गया। घंटों बैठा रहता। और टेनिसन--टेनिसन दोहराता रहता। दोहराते--दोहराते एक घड़ी आ जाती कि बड़ी शांति आ जाती।

अब अपना ही नाम दोहराने से भी अगर शांति मिल जाती है, तो अपना ही नाम दोहरा लेगा। विधि का सवाल है; कोई राम के नाम से क्या लेना-देना है! कोई भी शब्द काम दे देगा। कोई भी शब्द दोहराने से काम हो जायेगा। इसलिए ओंकार दोहराओ, कि राम दोहराओ, कि अल्लाह दोहराओ--या तुम अगर चाहो तो संख्या ही दोहरा सकते हो: दो--दो--दो दोहराते जाओ, उससे भी वही परिणाम होगा।

ज्ञानी के लिए शब्द शब्द में कोई भेद नहीं है। शब्द तो विधि है। लेकिन प्रेमी के लिए बड़ा भेद है। प्रेम के लिए शब्द विधि नहीं; शब्द उसके हृदय का भाव है।

तुम अगर प्रेमी से कहोगे कि दो--दो--दो दोहराने से भी शांति हो जायेगी, ध्यान लग जायेगा, तो प्रेमी कहेगा; मुझे ध्यान नहीं लगाना है; मुझे राम दोहराना है। ज्ञानी को कहोगे कि दो से भी वही काम हो आता है, वह कहेगा: तब ठीक है, कोई हर्जा नहीं है; दो दोहराने लेंगे। फर्क समझने की कोशिश करना।

ज्ञानी के लिए जप विधि है--भक्त के लिए भजन है। भजन में रस है, भाव है। ज्ञानी के लिए वैज्ञानिक तकनीक है, तो करता है। और कोई बेहतर तकनीक मिल जायेगी, तो उसे करेगा। लेकिन भक्त के लिये...? भक्त कहेगा: इससे कोई फर्क नहीं पड़ता...

ऐसा समझो कि एक बेटे से तुम कहो कि तेरी जो मां है, इससे भी सुंदर मां तुझे दे देते हैं। तो वह कहेगा: छोड़ो भी। मेरी मां से सुंदर और कौन मां हो सकती है? यह बात ही मत करो। कितनी ही सुंदर स्त्री को लाकर खड़ा कर दो इससे भी बच्चा उसके पास नहीं चला जायेगा--कि वह उसकी मां से ज्यादा सुंदर है, तो चलो इसे चुन लें। लेकिन तुम अगर वेश्या को खोजने गये हो--बाजार में; रुपये देकर वेश्या लेनी है, तो फिर तुम सुंदर को चुन लोगे, असुंदर को छोड़ दोगे। असुंदर का क्या प्रयोजन है? जब सुंदर मिलती हो--उतने ही दाम में, तो तुम सुंदर को चुन लोगे।

वेश्या का चुनाव गणित से होगा; मां का चुनाव गणित से नहीं होता; गणित के बाहर है। किसी बेटे को अपनी मां असुंदर लगती ही नहीं। किस मां को अपना बेटा असुंदर लगता है? एक-रस भाव है; एक भावना है।

खयाल रखना: कहते हैं मलूकदास: ना वह रीझे जपत्तप किन्हें, तो कितना ही लाख सिर पटको और जपते रहो--राम-राम-राम, लेकिन अगर इसमें रस नहीं है, अगर यह मात्र सूखी विधि है, अगर तुम माला जप रहे हो, और सिर्फ हाथ माला पर फेर रहे हो...।

तुम्हें पता होगा: तिब्बत में उन्होंने ज्यादा अच्छी विधि खोज ली। तुम माला जपते हो; एक सौ आठ गुरिये सरकाओ; समय लगता है। उन्होंने एक सौ आठ आरे वाला चका बना लिया है तिब्बत में, उसको वे प्रार्थना-चक्र कहते हैं। अपना काम करता रहता है आदमी और एक

धक्का मार देता है--उस चके को, वह चका घूम जाता है। जितनी बार वह चका घूम जाता है, उतनी माला का लाभ हो गया! यह विधि है।

एक बार एक तिब्बती लामा मेरे पास मेहमान था। उसके पास मैंने उसका चका देखा। वह रखा रहता। किताब भी पढ़ता रहता, तो बीच-बीच में चके को, जब मनन हो जाता, तो घूमा देता। वह दस-पंद्रह चक्कर लगा कर चका रुक जाता। दस-पंद्रह माला का लाभ हो गया! मैंने उससे कहा: पागल, इसमें तू बिजली क्यों नहीं जोड़ लेता? उसे बात जंची! अगर हाथ से ही चलाने का मामला है, तो बिजली से जोड़ दे। बटन भी तो हाथ से ही दबानी पड़ेगी न। फिर दबा दी। चौबीस घंटे चला दिया, तो लाखों का लाभ हो जायेगा।

एक घर में मैं मेहमान था, उन्होंने बड़ा पुस्तकालय बना रखा है। बस, वे कापियों पर राम-राम, राम-राम लिखते रहते हैं। इकट्ठी करते जा रहे हैं कापियां। कोई साठ पैंसठ साल की उनकी उम्र है; कोई चालीस साल से यह काम कर रहे हैं। सारा घर भर डाला है। वे बड़े प्रसन्न होते हैं; दिखते हैं--कि देखो, कितना राम-राम लिख डाला।

मैं जब उनके घर गया, तो मैंने कहा कि तुमने कितनी कापियां खराब कर डाली: राम जी के सामने मत पड़ जाना कभी, नहीं तो वे कहेंगे: इतने बच्चे...! अगर स्कूल में किताबें बांट दी होतीं, तो काम आ जातीं। तुमने व्यर्थ खराब कर डालीं। यह राम-राम लिखना--यह क्या फिजूल की बात है!

बंगाल में एक बहुत बड़ा व्याकरणाचार्य हुआ, उसके पिता ने उससे कहा कि तू राम-राम कब जपेगा? उसने कहा: बार-बार जपना! एक दफा बहुवचन में कह दूंगा। एक वचन में कहते रहो--राम--राम--राम। लाखों बार कहो। बहुवचन में एक दफा कह दिया, बात खतम हो गयी।

गणित है जहां कहां बात अलग है।

मैंने सुना है: एक वकील रोज रात को प्रार्थना करता। उसकी पत्नी ने सुना कि प्रार्थना बड़े जल्दी खतम हो जाती है। एक सेकेंड नहीं गलता। बस, वह जल्दी से प्रार्थना करके कंबल ओढ़ कर सो जाता। पत्नी ने कहा: मैं भी करती हूं प्रार्थना, तो कम से कम दो मिनट तो लगते हैं! तुम्हें तो एक सेकेंड नहीं गलता! उसने पूछा वकील से कि तुम इतनी जल्दी प्रार्थना...? उसने कहा कि बार-बार क्या करना। वही की वही प्रार्थना। भगवान भी जानता; मैं भी जानता। मैं कहता हूं--डिट्टो--और सो जाता हूं।

वकील है, तो वकालत के ढंग से सोचता है।

मलूकदास कह रहे हैं कि ऐसे जपतप से कुछ भी होगा। तप का अर्थ होता है--तपाना: उपवास करना, धूप में खड़े होना, कि शीत में खड़े होना, कि कांटों पर लेट जाना। मलूकदास कहते हैं: यह भी क्या पागलपन है! तुम अपने को सताओगे, इससे परमात्मा प्रसन्न होगा? कौन मां अपने बेटे को भूखा देख कर प्रसन्न होती है? कौन मां अपने बेटे को धूप में खड़ा देखकर प्रसन्न होती है? कौन मां अपने बेटे को कांटों पर लेटा देखकर प्रसन्न होगी? अगर ऐसी कोई मां होगी, तो पागल होगी।

तुम तपात्तपा कर परमात्मा को रिझाने चले हो? तुम और दूर हुए जा रहे हो। और जितना ही कोई व्यक्ति तपस्वी बनता है, तापता है अपने को, उतना ही अहंकार बढ़ता है--परमात्मा नहीं बढ़ता। उतनी अकड़ बढ़ती है--कि देखो, मैंने इतने उपवास किये, इतने जप किये, इतने तप किये। देखो, कितना मैंने अपने को सताया। उसकी शिकायत और उसका दावा बढ़ता है। वह दावेदार बनता है। अगर परमात्मा उसे मिल जायेगा, तो उसका हाथ पकड़ लेगा--कि बड़ी देर हुई जा रही है; अन्याय हो रहा है। मैं कितने दिन से तपश्चर्या कर रहा हूं। आखिर कब तक? तेरे मोक्ष और कितनी दूर है?

मलूकदास कहते हैं: न होगा जप से, न होगा तप से, क्योंकि परमात्मा अगर प्रेम है, तो यह बात ही बेहूदी है कि तुम अपने को सताओगे, इससे उसे पा लोगे। और अगर तुमने अपने को सता-सता कर परमात्मा को अपने पास बुला भी लिया, तो क्या वह प्रसन्नता से आयेगा? बहुत लोगों का यह तर्क है। तुम इससे समझना। तुम्हारे जीवन में यह तर्क खूब काम करता है। स्त्रियों के मन में यह तर्क बड़ा गहरा बैठा है।

पति से प्रेम नहीं मिलता, तो पत्नी बीमार हो जाती है। स्त्रियों की पचास प्रतिशत बीमारियां झूठी हैं। चाहे उन्हें भरोसा ही क्यों न हो कि ये बीमारियां सच हैं, तो भी झूठी हैं, कल्पित हैं।

मैं बहुत घरों में मेहमान होता रहा। मैं चकित होता कि मुझसे, बैठी पत्नी बात कर रही थी; पति के आने से ही बिस्तर पर लेट गई। और सिर में दर्द शुरू हो गया! मैं थोड़ा हैरान होता कि बात क्या है! और ऐसा भी नहीं कि पत्नी बिलकुल झूठ कह रही हो; पति को देखते ही सिर में दर्द शुरू हो जाता है। पुराना अभ्यास; रोज-रोज का अभ्यास--बस, यह संकेत की तरह काम कर जाता है: पति का हार्न बजा नीचे, गाड़ी का, कि पत्नी के सिर दर्द शुरू हुआ।

यह उसने कैसे सीख लिया है? उसके पीछे मनोवैज्ञानिक कारण हैं। उसने पति को और कभी अपने तरफ प्रेम भरे नहीं देखा। जब तक वह बीमार न हो, तब तक पति उसके पास नहीं बैठता। जब तक सिर में दर्द न हो, सिर में हाथ नहीं रखता। सिर पर हाथ रखे, उसकी आकांक्षा है। तो सिर दर्द धीरे-धीरे, धीरे-धीरे प्रक्रिया बन गई है--पति सिर पर हाथ रखे--इसका, इसका उपाय बन गया है।

चौंके होंगे शंकर; निश्चित चौंके होंगे। एक दफा खयाल आया कि बात तो ठीक ही है। अगर देह इसकी अशुद्ध है, तो मेरी कहां शुद्ध है! सच यह है कि वेद यही कहते हैं कि हर आदमी शूद्र की तरह ही पैदा होता है। कोई आदमी ब्राह्मण की तरह थोड़े ही पैदा होता है। ब्राह्मण तो होना होता है। शूद्र की तरह हम सभी पैदा होते हैं। जो ब्रह्म को जान लेता, वह ब्राह्मण हो जाता है। नहीं तो हम सभी शूद्र ही हैं। बात तो याद आयी होगी।

फिर उसने पूछा कि अगर आप कहते हैं कि नहीं, देह के छूने के कारण कोई सवाल नहीं है। तो क्या मेरी आत्मा अशुद्ध है? आत्मा अशुद्ध हो सकती है महानुभाव? सुना तो मैंने यही है कि आत्मा शाश्वत रूप से शुद्ध है। आपसे ही सुना है; आप जैसे बुद्धिमानों से सुना है; ऋषि-

मुनियों से सुना है--कि देह सदा अशुद्ध है और आत्मा सदा शुद्ध है। अब मैं तुमसे यह पूछता हूं कि किसके छूने से आप परेशान हो गये हैं? देह के छूने से? तो देह आपकी भी अशुद्ध है। अशुद्ध अशुद्ध देह से छू गई, तो क्या बिगड़ गया? आत्मा के छूने से अशुद्ध हो गये? तो न तो मेरी आत्मा अशुद्ध है, न आपकी आत्मा अशुद्ध है।

कहते हैं शंकर ने झुक कर प्रमाण किया उस शूद्र को और कहा: तूने मुझे खूब चेताया। जो मैं शास्त्रों से न जान सका, वह तूने मुझे जगाया। मैं अनुगृहीत हूं।

ना वह रीझै धोती टांगे...। तो तुम जब छुआ-छूत...। और मैं ब्राह्मण और वह शूद्र; और मैं हिंदू और वह मुसलमान; और मैं आर्य--और वह म्लेच्छ--ऐसी मूढतापूर्ण बातों में पड़ते हो, तो तुम यह मत सोचना कि तुम परमात्मा को रिझा पाओगे।

ना काया के पखारे...। और लोग हैं कि काया को पखारने में लगे हैं!--हठयोगी नौलि-धौति कर रहे हैं; आसन-व्यायाम कर रहे हैं! सब तरह से लगे हैं उपाय में कि काया शुद्ध हो जाए! काया शुद्ध हो भी जायेगी, तो क्या होगा? और काया शुद्ध हो नहीं सकती। तुम कितना ही काया को शुद्ध करो, काया के होने का ढंग...। भोजन तो करोगे; फिर वही हो जायेगा। और मल-मूत्र तो बनेगा ही। और लहू और मांस-मज्जा तो बनेगी ही। कैसे शुद्ध करोगे इसे? और शुद्ध करने से होगा भी क्या?

अगर परमात्मा को शुद्ध काया ही बनानी होती, तो सोने-चांदी की बना देता! लोहे की बना देता--कम से कम। गरीबों की लोहे की बना देता; अमीरों की सोने चांदी की बना देता। लेकिन मांस-मज्जा-चमड़ी की बनाई। इसको शुद्ध करने से क्या होगा? कैसे यह शुद्ध होगी? नहीं; इस तरह तुम सिर्फ उसका अपमान कर रहे हो।

मलूकदास कहते हैं: यह सब अपमान हैं परमात्मा के। उसने काया जैसी बनाई, वैसी स्वीकार करो। उसकी ही दी हुई काया है। तुमने तो बनाई नहीं। स्वीकार करो। अहोभाव से स्वीकार करो।

दया करै, धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।
अपना सा दुःख सब का जानै, ताहि मिलै अविनासी।।

तो फिर कैसे उसे रिझायें? कहते हैं मलूक--दया करै...। उसके पाने का सूत्र एक ही है--दया, करुणा, प्रेम। चारों तरफ वही मौजूद है, तो जितना बन सके, उतनी दया करो। जितना बन सके, उतना प्रेम करो। जितना बन सके, उतनी करुणा करो।

दया करै...। और दूसरे पर ही नहीं, अपने पर भी दया रखा।। कहीं ऐसा न हो कि दूसरे पर दया करने लगो और स्वयं पर बहुत कठोर हो जाओ।

महात्मा गांधी ने कहा है: दूसरों पर तो दया करे, अपने पर कठोर हो। लेकिन यह थोड़ा समझना पड़ेगा।

अगर तुम दूसरे पर दया करो और अपने पर कठोर हो जाओ, तो तुम ज्यादा देर दूसरों पर दया न कर पाओगे। क्योंकि जो अपने पर दया ही करता, वह कैसे दूसरों पर दया कर पायेगा? वह चोरी-छिपे से दूसरों पर भी कठोर हो जायेगा।

यह एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक सत्य है। जो आदमी अपने पर कठोर होता है, वह दूसरों पर भी कठोर हो जाता है। तरकीब से कठोर होता है। समझो कि तुम कठोर अपने पर और तुम लंबे उपवास करते हो, तो दूसरा आदमी जो लंबे उपवास नहीं कर सकता, उसके प्रति तुम्हारे मन में यह भाव तो होगा ही कि वह हीन है। तुम्हारे मन में यह भाव तो होगा ही कि वह पतित है। तुम्हारे मन में यह भाव तो होगा हो--कि बेचारा! मैं श्रेष्ठ, वह अश्रेष्ठ। इसीलिए तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासियों की आंखों में तुम सदा अपनी निंदा पाओगे। एक गरूर उनके भीतर होगा--कि मैं इतना कर रहा हूं, तुम कुछ भी नहीं कर रहे! पापी! तुम जाओ, अपने महात्माओं की आंखों में गौर से झांक कर देखना, उनकी आंख में तुम्हारी तरफ इशारा है कि तुम पाप हो। और उनकी भाषा में, उनकी वाणी में, उनके उपदेश में तुम जगह-जगह यह पाओगे कि तुम्हारी निंदा है। और हजार तरह की वे व्यवस्थाएं बनायेंगे, जिसमें कि तुम भी अपने पर कठोर हो जाओ। वे भी तुमसे कहेंगे: दूसरों पर दया करो; अपने पर कठोर हो जाओ। ये दूसरे कौन है?

अगर हम आदमी मान ले और अपने पर कठोर हो जाये, और दूसरे पर दया करे, तो ये दूसरे कौन हैं! दूसरा तो कोई बचा नहीं।

जो दूसरों पर दया करता है और अपने पर कठोर है, उसकी दया थोथी हो जायेगी। इस बात को खयाल में लेना: तुम दूसरों के साथ वही कर सकते हो, जो तुम अपने साथ कर सकते हो।

जीसस ने कहा है: प्रसिद्ध वचन है: अपने पड़ोसी को अपने जैसा प्रेम कर--अपने जैसा। मगर पहले तो अपने को कर, तभी अपने पड़ोसी को कर सकेगा। नहीं तो कैसे करेगा! क्योंकि सबसे निकट के पड़ोसी तुम ही--अपन। यह देह मेरी सबसे करीब है। यह मेरी सबसे करीब की पड़ोसी है। फिर इसके बाद दूसरे पड़ोसी हैं। फिर यह सारा संसार है। इस देह--इस पड़ोसी को पहले प्रेम करो।

जीसस ने कहा है: अपने शत्रुओं को अपने जैसा प्रेम कर। लेकिन पहले तो अपने को प्रेम कर। जिसने अपने को ही प्रेम नहीं किया, वह किसी को भी प्रेम नहीं कर पायेगा।

तुम ऐसे लोगों को जगह-जगह खोज लोगे। इस तरह के लोग असंभव आदर्श बना कर जीते हैं, खुद पर बड़े कठोर--और तब दूसरे पर भी बड़े कठोर हो जाते हैं। उनकी कठोरता ऐसे ढंग से आती है कि तुम पहचान भी नहीं पाते।

अब जैसे महात्मा गांधी के आश्रम में कोई चाय नहीं पी सकता। कोई एक-दूसरे के प्रेम में नहीं पड़ सकता। अब यह अतिशय कठोरता है। मगर सिद्धांत के नाम पर चलेगा। सिद्धांत बिलकुल ठीक है। और सिद्धांत को मान कर चलना है। सिद्धांत आदमी के लिए है--ऐसा नहीं है; आदमी सिद्धांतों के लिए हो जाता है। महात्माओं के हाथ में आदमी का मूल्य नहीं है, सिद्धांतों का मूल्य है। सिद्धांत को मान कर चलो, तो ही तुम ठीक हो। सिद्धांत को मान कर नहीं चले, तो तुम गलत हो। और तुम गलत हो यही तो सबसे बड़ा अपराध है। तुम्हारे भीतर अपराध की भावना पैदा होगी।

अब जरा समझा: अगर किसी ने चाय पी ली--गांधीजी के आश्रम में तो उसके भीतर पाप की आग जलेगी। वह डरेगा, घबड़ायेगा--कि बड़ा पाप हो गया!

छोटी सी चीज, चाय से--उससे इतना बड़ा पाप जोड़ दिया! खूब तरकीब से आदमी को सता लिया। अब वह रात सो न पायेगा कि कहीं पता न चल जाए। बात कुछ न थी; बात कुछ भी थी। चाय कितनी ही पीयो, क्या पाप हो जाने वाला है! और अगर चाय पीने में पाप हो गया, तो फिर जीना असंभव हो जायेगा। फिर हर चीज में पाप है। फिर उठने-बैठने में पाप है; बोलने-चालने में पाप है।

और ऐसी घटनाएं घटी हैं--मनुष्यजाति के इतिहास में, जब हर चीज पाप हो गई। तुमने तेरापंथी साधु देखे हैं--मुंह पर पट्टी बांधे हुए! बोलने में पाप है, क्योंकि बोलने में गरम हवा निकलती है मुंह से, उससे कीड़े इत्यादि, अगर हवा में हों, तो मर जाते हैं। तो बोलने में पाप है।

सांस लेने पाप हो गया! जीना पाप हो गया! उठना-बैठना पाप हो गया! यह तो बड़ी कठोरता हो गई आदमी के साथ ज्यादती हो गई। लेकिन जो अपने साथ ज्यादती करेगा, वह दूसरे के साथ भी ज्यादती करेगा ही।

जब तुम किसी नियम को पालन कर लेते हो, तो तुम यह मानते हो कि सभी को करना चाहिए। अब जो आदमी रात तीन बजे उठ आता है, वह मानता है--सभी को उठाना चाहिए। क्यों?--क्योंकि वह उठ आता है! अब यह हो सकता है कि उन सज्जन को नींद न आती हो ठीक से। बढ़े हो गये हों। बुढापे में नींद कम हो जाती है। फिर हर आदमी की जीवन व्यवस्था अलग-अलग है।

जब बीमार होता है कोई, तभी हम उसके पास जाते हैं। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब बच्चा बीमार हो, तब बहुत ज्यादा प्रेम मत दिखलाना, अन्यथा, तुम उसे जीवन भर बीमार रखने का उपाय कर रहे हो। जब बच्चा स्वस्थ हो, जब ज्यादा प्रेम दिखलाना ताकि स्वास्थ्य और प्रेम का संबंध हो जाए, बीमारी और प्रेम का संबंध न हो जाये। लेकिन हम उलटा ही करते हैं।

बच्चा स्वस्थ है, तो कौन फिक्र करता है! न मां देखती है; न बाप देखता है; न किसी को लेना-देना है। जब ठीक ही है, तो क्या लेना-देना है? जब बच्चा बीमार होता है, तो मां भी पास बैठी है--बाप भी। बच्चा बड़ा प्रसन्न होता है देख कर--कि बड़े-बड़े पास बैठे हैं। इशारे पर चलाता है। चाय ले आओ। यह करो; वह करो। डाक्टर भी आता है, तो बच्चा बड़ा प्रसन्न होता है। वह सबसे ऊंचे पद पर बैठा है। जब तक बीमार रहता है, तब तक यह पद रहता है। जैसे ही बीमारी गयी, यह पद समाप्त हुआ। फिर कोई उसकी फिक्र नहीं करता। फिर उसके अहंकार को तृप्त होने का दुबारा अवसर तभी मिलेगा, जब वह बीमार हो जाए।

धीरे-धीरे बीमारी में रस आ जायेगा।

बहुत लोग बीमारी में रस ले रहे हैं, इसलिए दुनिया इतनी बीमार है। और बहुत लोग दुःख में रस ले रहे हैं इसलिए दुनिया इतनी बहुत दुःखी है।

मेरे पास लोग आते हैं; वे कहते हैंः सुखी होना है। लेकिन जब मैं उनसे पूछता हूं कि सच सुखी होना है? तो पहले तुमने दुःख में जो-जो नियोजन किया है, इन्व्हेस्टमेंट किया है, उसको हटा लेना पड़ेगा; तुम्हें पूरी प्रक्रिया दुखी पड़ेगी अपने जीवन को--कि तुमने दुःख में कहां-कहां अपने स्वार्थ जोड़ रखे हैं।

अब जिस पत्नी ने जाना ही पति का हाथ--अपने सिर पर तभी है, जब सिर में दर्द हुआ, यह कैसे सिरदर्द छोड़ दे। लाख दो तुम इसे। इस्प्रो, एनासिन; सिरदर्द कैसे छोड़ दे? यह कोई छोटी बात नहीं है। सिरदर्द नहीं छुड़ा रहे हो; तुम इससे इसका प्रेम छुड़ा रहे हो। इसने और कोई प्रेम जाना ही नहीं है, इसी बीमारी के माध्यम से जाना है। यह बीमारी ही इसके प्रेम का द्वार है। यह कैसे छोड़ दे!

तुमने देखा कि लोग अपनी बीमारी की खूब चर्चा करते हैं। क्योंकि बीमारी की चर्चा करते हैं, तभी लोग सहानुभूति प्रकट करते हैं। नहीं तो कोई सहानुभूति प्रकट नहीं करता। तुम किसी स्वस्थ आदमी के पास थोड़े ही सहानुभूति प्रकट करने जाते हो। दुःखी आदमी के पास सहानुभूति प्रकट करते हो। यह मनोवैज्ञानिक अर्थों में लगता हिसाब है।

बच्चा बीमार हो, तो उसकी फिक्र तो करो, लेकिन फिक्र ऐसी अतिशय मत कर देना कि बीमारी में उसे स्वाद पैदा हो जाए। नहीं तो फिर बीमारी से कभी छूट न सकेगा। पत्नी बीमार हो, तो दवा देना, इलाज कर देना, लेकिन इतना अतिशय प्रेम मत उंडेल देना कि बीमारी से ज्यादा मजा तुम्हारे प्रेम में आ जाए। कि बीमारी का कष्ट छोटा पड़ जाए और बीमारी का मजा ज्यादा हो जाए। जिस दिन यह हो गया, उस दिन फिर पत्नी ठीक न हो सकेगी। और तुम जिम्मेवार हुए--बीमारी के लिए।

परमात्मा के साथ भी हम यही तरकीब करते हैं। मलूकदास कहते हैंः ना वह रीझै जपत्तप किन्हें, न आतम को जारे। और तुम कितना ही जलाओ अपनी आत्मा को, कितना ही सताओ अपने को, इससे तुम उसे रिझा न सकोगे। शायद इन्हीं उपायों के कारण तुमने उसे रूठा दिया है।

अगर तुम परमात्मा के हिस्से हो, तो जब तुम अपने को कष्ट दोगे, तो तुम्हारा कष्ट उसी में पहुंच रहा है। तुम उसी को कष्ट दे रहे हो। इस बात की बड़ी गरिमा है। इसे खूब खयाल में लेना।

जब भी तुमने अपने को कष्ट दिया, परमात्मा को ही कष्ट दिया है, क्योंकि वही है। लहर ने अपने को कष्ट दिया, तो सागर को ही मिलेगा। और अगर हम परमात्मा के हिस्से हैं, तो अपने को सताया, तो हमने परमात्मा को ही सताया।

भक्त कहता हैः अपने को प्रेम करो, क्योंकि तुमने भी परमात्मा का ही हाथ है। अपना आदर करो, समादर करो, अपना सम्मान करो। इस देह में भी पर आत्मा विराजमान है, इस देह का अनादर मत करो। यह देह उसका ही घर है, उसका ही मंदिर है। इस देह की भी पूरी फिक्र करो, देखभाल करो। जैसे मंदिर की देखभाल करते हो, ऐसे देह की देखभाल करो।

भक्त की दृष्टि बड़ी अलग है; तुम्हारे तथाकथित तपस्वी से बड़ी भिन्न है; विपरीत है। इसलिए तुम बहुत हैरान होते हो। तुम देखोगे भक्त को: वह तिलक-चंदन लगाए, बड़े बाल बढ़ाये, सुंदर रेशम के वस्त्र पहने, सुगंधित इत्र लगाये, फूल की माला डाले भगवान की पूजा कर रहा है! तुम्हें लगता है: यह क्या पूजा हो रही है।

भक्त की दृष्टि तुम नहीं समझ रहे हो। भक्त इस देह को अपनी देह नहीं मानता; परमात्मा की ही देह है। तो इस देह को भी नहलाता है, धुलाता है; इत्र छिड़कता है; चंदन लगाता है; फूल की माला पहन लेता है; रेशम के वस्त्र पहन के परमात्मा के सामने नाचता है।

भक्त कहता यह है कि जब तुम परम स्वास्थ्य की दशा में हो, परम सौंदर्य की दशा में हो--अपने में मुग्ध, तभी तुम उसे रिझा पाओगे। उसे रिझाना हो--सुंदर बनो उसे रिझाना हो--सुंदर बनो। उसे रिझाना हो--रसमय बनो। उसे रिझाना हो, तो इस योग्य बनो कि वह रीझे; रीझना ही पड़े। कुछ गाओ मधुर; कुछ गुनगुनाओ मधुर; कुछ जीओ मधुर।

तो भक्त का जीवन है--माधुर्य का जीवन। त्यागीत्तपस्वी का जीवन है--अपने को सताने का जीवन। और ध्यान रखना: त्यागीत्तपस्वी के खिलाफ आधुनिक मनोविज्ञान भी है। आधुनिक मनोविज्ञान कहता है: ये त्यागीत्तपस्वी और कुछ नहीं, मैसोचिस्ट हैं। यह अपने को सताने में रस ले रहे हैं; इन्हें परमात्मा से कुछ लेना-देना नहीं है। इन्हें हिंसा में रस आ रहा है।

दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक तो वे, जिन्हें दूसरों को सताने में रस जाता है, अडोल्फ हिटलर, जिन्हें देख कर मजा आ जाता है--दूसरे को तड़पते देख कर। और दूसरे वे हैं, जिन्हें अपने को सताने में मजा आता है, महात्मा गांधी। इनमें बहुत फर्क नहीं है। इनका फर्क बहुत ऊपरी है।

दूसरों को भूखे रखने में तुम्हें मजा आये, तो कोई भी इसे पुण्य नहीं कहेगा। कहेगा--यह पाप हुआ। और अपने को भूखा रखने में तुम्हें मजा आये, तो लोग इसे पुण्य कहता हैं। यह कैसे पुण्य हुआ? अगर दूसरे को रखने में पाप है, तो अपने को भी भूखा रखने में पाप ही होगा। एकदम से गणित बदल कैसे जायेगा!

आखिर दूसरे को भूखा रखने में पाप क्यों है? अगर उपवास पुण्य है, तो तुमने दूसरे आदमी को उपवास का मौका दे दिया; वह खुद नहीं जुटा पा रहा था, तुम दूसरे आदमी को उपवास का मौका दे दिया; वह खुद नहीं जुटा पा रहा था, तुमने जुटा दिया। बांध कर रख दिया उसको--घर के भीतर--पंद्रह दिन भूखा, तो इसमें पाप कहां है? यह बेचारा खुद कमजोर था; वह साहस नहीं जुटा पाता था; व्रत-नियम नहीं मान पाता था; तुमने उसका सहयोग दे दिया। तुमने इसे परमात्मा के पास ला दिया। परमात्मा खूब रीझ जायेगा इस पर! लेकिन हम जानते हैं कि दूसरे को भूखा रखने में तो पाप है। फिर स्वयं को भूखा रखने में कैसे पुण्य हो जायेगा? जो तुमने दूसरों की देह के साथ किया, वही तो तुम अपनी देह के भी साथ कर रहे हो। और देह तो सभी पराई हैं। दूसरे की देह भी उतनी ही पराई है, जितनी मेरी देह पराई है। तुम्हारी देह जरा देर; मेरी देह जरा पास; लेकिन फर्क क्या है? न तो मैं अपनी देह हूं; न तुम्हारी देह हूं। देह को सताना पुण्य नहीं हो सकता। इसलिए भक्त भोग

लगाता है। उपवास पर उसका जोर नहीं है। भक्त भगवान को भोग लगाता है--स्वादिष्ट भोजन का। और भक्त अपने को भी भोग लगाता है--स्वादिष्ट से स्वादिष्ट भोजन का। भक्त का जीवन रस का जीवन है; माधुर्य का जीवन है। भक्त का जीवन स्वस्थ मनस का जीवन है।

ना वह रीझै जपतप किन्हें, ना आतम को जारे।
ना वह रीझै धोती टांगे, न काया के पखार।।

और कुछ लोग हैं कि अपनी धोती सम्हाल-सम्हाल कर चल रहे हैं। किसी को छू न जाए। ना वह रीझै धोती टांगे...।--कि कही शूद्र को न छू जाए। कि कहीं इसको न छू जाए; कहीं उसको न छू जाए। वही है अगर--तो तुम किसे शूद्र कह रहे हो!

कहते हैं कि शंकराचार्य स्नान करके निकले गंगा से। सुबह का समय होगा; पांच बजे--ब्रह्म-मुहूर्त। गुनगुनाते वेद-मंत्र सीढ़ियां चढ़ रहे हैं और एक आदमी आ कर छू गया: कौन है? उस आदमी ने कहा, क्षमा करें; शूद्र हूं। शंकर तो नाराज हो गये। भूल गये--अद्वैत। गई बातें वे--कि सारा जगत एक है; कि एक ही ब्रह्म सब कुछ है, बाकी सब माया है। भेद--माया है: यह भूल गये।

शास्त्र पर व्याख्या करनी एक बात है, जीवन में उस व्याख्या को जीना बड़ी दूसरी बात है। नाराज हो गये उस शूद्र पर। उस शूद्र ने कहा: क्षमा करें। लेकिन एक बात मैं पूछ लूं। क्योंकि मैं जानता हूं--आप कौन हैं। आप मनीषी--शंकराचार्य हैं। आप महा दार्शनिक शंकराचार्य हैं। महा व्याख्याकार शंकराचार्य हैं। आप से एक बात पूछ लूं। मेरे छूने में गलती क्या हो गई? मेरी देह अशुद्ध है? तो क्या आप सोचते हैं कि आपकी देह शुद्ध है? अगर मेरी देह मल-मूत्र से भरी है, तो आपकी कोई स्वर्ण, चांदी, हीरे-जवाहरातों से भरी है?

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हर आदमी की नींद की जरूरत भी अलग-अलग है। और यह भी खोजा गया है कि हर आदमी के नींद के गहराई के घंटे भी अलग-अलग होते हैं। कुछ लोग दो और तीन के बीच गहरी से गहरी नींद सोते हैं। कुछ लोग चार और तीन के बीच। कुछ लोग पांच और चार के बीच गहरी से गहरी नींद सोते हैं। दो घंटे कम से कम रात में बड़ी गहरी नींद के होते हैं। वे सबके अलग-अलग होते हैं।

अब जिस आदमी का समझो तीन और पांच के बीच गहरे घंटे हों--सोने के, उसको अगर तुम तीन और पांच के बीच उठा दागे, वह दिन भर परेशान रहेगा। उसको पांच के बाद ही उठने में सुगमता है। लेकिन जिस आदमी के गहरे घंटे एक और तीन के बीच पूरी हो गये, वह तीन बजे उठ सकता है। जब वह उठ आता है और कहता है कि उसके उठने से कोई तकलीफ नहीं होती, बल्कि दिन भर ताजगी रहती हो, तो वह कहता है--तुम भी उठो।

व्यक्ति-व्यक्ति के भेद हैं। लेकिन महात्मा भेद नहीं मानते।

विनोबा के आश्रम में तीन बजे रात सभी को उठ आना चाहिए। यह ज्यादती है; यह निहायत ज्यादती है। चिकित्सकों से पूछ सकते हैं कि यह ज्यादती है।

पुरुष और स्त्रियों के नींद में अलग-अलग भेद हैं। पुरुषों की नींद आमतौर से तीन और पांच या ज्यादा से ज्यादा चार और छह के बीच पूरी हो जाती है। जो दो घंटे गहरी नींद के हैं,

उस समय मनुष्य शरीर का तापमान नीचे गिर जाता है, दो, डिग्री नीचे गिर जाता है। चौबीस घंटे में दो डिग्री नीचे गिर जाता है तापमान, वे उनमें अगर न सो पाये, तो दिन भर गैरत्ताजगी रहेगी; नींद आयेगी; जम्हाई आयेगी; परेशानी होगी।

स्त्रियां आमतौर से पांच और सात के बीच या चार और छह के बीच उस गहरी नींद को लेती हैं। पुरुष घंटे भर पहले उठ सकते हैं। इसलिए पश्चिम में रिवाज ठीक है कि पुरुष सुबह की चाय तैयार करे; स्त्रियां न करें। यह बिलकुल ठीक है। स्त्रियां का घंटे भर बाद उठने का सहज क्रम है।

और जो नींद के संबंध में सही है, वही भोजन के संबंध में सही है। जो एक के लिए भोजन है, दूसरे के लिए जहर हो सकता है, जो एक के लिए पर्याप्त मात्रा है, दूसरे के लिए बिलकुल अपर्याप्त हो सकती है। लेकिन लोग ज्यादती पर उतर जाते हैं। और जो आदमी अपने साथ कठोर है, वह मान लेता है कि मैं ही नियम हूं, इसलिए सब को मेरे जैसा होना चाहिए। यह भांति है; यह हिंसा है।

और तुम्हारे तथाकथित महात्मा काफी हिंसा से भरे हुए लोग हैं।

दया करै धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।

समझना यह सूत्र। को ही लेकर मैंने सारे संसार की धारणा खड़ी की है। धरम मन राखै--मन रहे धर्म में। धरम रहे मन में, घर में रहे उदासी।--घर से भाग न जाए; भगोड़ा न बन जाए। क्योंकि असली बात मन की है; असली बात स्थान की नहीं है; स्थिति की नहीं है--मनःस्थिति की है।

तुम जंगल में चले जाओ--क्या होगा! अगर तुम्हारा मन धर्म में नहीं है, तो जंगल में भी बैठ कर तुम हिसाब-किताब की बातें सोचोगे; दुकान की बातें सोचोगे; बैंक की बातें सोचोगे। सोचोगे कि चले ही जाते। अब लोकसभा के चुनाव हो रहे हैं; लड़ ही लेते। कहां आ गये! कहां फंस गये? किस झंझट में आ गये? ये पहाड़ पर बैठे-बैठे क्या कर रहे हो? तुम यही सोचोगे न, तो सोच सकते हो। तुम्हारा मन तो तुम्हारा है; जंगल में जाने से कहां मन छूट जायेगा! मन को कहां छोड़ कर भाग पाओगे।

घर से भाग सकते हो; घर बाहर है। मन तो भीतर है। तुम कहां जाओगे, मन साथ चला जायेगा। तुम तो अपने साथ ही रहोगे ना। तुम अपने को छोड़ कर कहां जाओगे? और तुम ही असली प्रश्न। न तो पत्नी है प्रश्न; न पति, न बेटे, बच्चे; न दुकान, बाजार।

धरम मन राखै, घर में रहै उदासी। और यह उदासी शब्द भी समझ लेना। शह शब्द बड़ा विकृत हो गया। इसका मौलिक अर्थ खो गया। गलत आदमियों के हाथ पड़ गया। अच्छे से अच्छे शब्द भी गलत आदमियों के साथ पड़ जाए, खराब हो जाते हैं।

इस शब्द की बड़ी दुर्गति हो गई। तुमने सुना न--कि संग-साथ सोच कर ही करना चाहिए। इस शब्द ने गलत लोगों का संग-साथ कर लिया।----शब्द ने!वह तक नरक में पड़ गया। उदासी का मतलब हो गया--जो उदास है। मौलिक अर्थ उसका बड़ा अदभुत है। इसके मौलिक अर्थ हैः उद् आसीन। उद् आसीन का अर्थ होता है; परमात्मा के पास बैठा हुआ। वही अर्थ

उपवास का भी होता है। उप वास--उसके पास बैठा हुआ। वही अर्थ उपनिषद् का भी होता है--उसके पास बैठा हुआ--उपनिषद्।

परमात्मा के जो पास बैठा हुआ है--वह उदासी--उद् आसीन।

अब यह बड़े मजे की बात है कि जो परमात्मा के पास बैठा है, वह उदास तो हो ही नहीं सकता। वह तो छलकेगा--वह तो रास भरा हुआ छलकेगा। वह तो नाचेगा।

परमात्मा के पास बैठ कर अगर उदास हो गये, तो फिर छलकोगे कहां! फिर नाचोगे कहां? फिर उत्सव कहां मनाओगे? अगर परमात्मा के पास भी उदास हो गये, तो यह तो परमात्मा का साथ न हुआ--नरक का साथ हो गया। नरक में उदासी हो जाओ तो ठीक।

परमात्मा के पास बैठा हुआ आदमी तो अलमस्त हो जायेगा। उसे तो मिल गई--परम मधुशाला। उसे तो मिल गई ऐसी शराब, जो पीयो तो चुकती नहीं। और पीयो--और एक दफा बेहोशी आ जाए, तो फिर कभी होश नहीं आता लौट कर। गये--सो गये। डूबे--सो डूबे। ऐसा आदमी न केवल खुद अपूर्व उत्फुल्लता से भरा जायेगा, उसके पास भी जो जायेगा, इस पर भी उसकी किरणें पड़ेंगी; उसके छींटे उस पर भी पड़ेंगे। वह भी नाचता हुआ लौटेगा। उसके भीतर भी गीतों का जन्म हो जायेगा। उसके पैरों में भी घूंघर बजने लगेंगे। उसकी वीणा पर भी तार छिड़ने लगेंगे।

तो उदासी शब्द तो बड़ी अजीब हालत में पड़ गया। इसका मतलब होता है--परमात्मा के पास; परमात्मा के पास--इसका मतलब होता है: समाधिस्थ। समाधिस्थ का अर्थ होता है: परम आनंद को उपलब्ध--सच्चिदानंद को उपलब्ध। और उदासी शब्द को जो आम-अर्थ हो गया है, वह यह--कि जो बैठे हैं सिर मारे; आंखों में कीचड़; मुरदे की तरह; मक्खियां उड़ रही हैं! उदासी!

ये तो परमात्मा से सबसे ज्यादा दूर पड़ गये। यह तो उलटी ही बात हो गई!

दया करै, धरम मन राखै, घर मग रहै उदासी। घर में ही रह कर परमात्मा के पास होने की कला है। उसका स्मरण करते रहो--जहां हो--उसके नाम का गीत गाओ; उसकी याद की गहराओ।

धरन मन राखै। शुरू करना होता है--धर्म में मन लगाओ: ऐसी शुरुआत धर्म में मन--इससे शुरुआत होती है। और एक दिन ऐसा आता है कि मन में धर्म समा जाता है; तब अंत आ गया। प्रारंभ और अंत इन दो बातों में समा जाते हैं।

धर्म में मन--पहली सीढ़ी। मन में धर्म--अंतिम सीढ़ी आ गई।

शुरुआत करो--याद करने से, बार-बार याद करने से, पुनः पुनः याद करने से। फिर धीरे-धीरे तुम पाओगे: अब उपाय ही न रहा--भुलाने का। अब याद करने की भी जरूरत न रही--याद बनी ही रहती है--सतत; जैसे श्वास चलती रहती है, ऐसी याद बनी रहती है।

दया करै, धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।

छोटा-सा सूत्र है। तीन बातें कह दीं: प्रेम बरसाता रहे; ध्यान प्रभु में लगाता रहे और घर में रह कर परमात्मा को खोजता रहे।

अपना सा दुःख सबका जानै, ताहि मिलै अविनासी। और अपना सा दुःख सबका जानै--जो अपना दुःख है, वही सबका दुःख है।--ऐसा जान कर जिए। तो न तो खुद को दुःख दे; कर्ता का भाव उतार कर रख दो।

सहै कुसब्द वादहूं त्यागै...। और संसार की निंदा तो मिलेगी--ऐसे आदमी को। उसे बड़े कुशब्द सहने पड़ेंगे। क्योंकि संसार गलत की धारणा पर जी रहा है। भीड़ भांति में जी रहा है। इसलिए जो भी आदमी सचाई में जीना शुरू करेगा, भीड़ नाराज होगी। कुशब्द सहने पड़ेंगे; अपमान सहना पड़ेगा।

अकारण तो नहीं है कि जीसस को सूली लगती; कि सुकरात को जहर पिला दिया जाता; कि मंसूर के लोग हाथ-पैर काट डालते!

लोग इतने झूठ में जी रहे हैं कि जब भी सत्य मिलेगा, उसके साथ वे दुरव्यवहार करेंगे। यह स्वाभाविक है।

तो कहते मलूकः सहै कुसब्द...। सुन लो; सह जाओ; पी जाओ; फिर भी दया रखो; फिर भी परमात्मा के पास अपना आसान जगाये रहो। डांवाडोल मत होओ। और जो लोग अपमान करें, जो लोग गालियां दें, इनके साथ व्यर्थ विवाद में पड़ने की भी कोई जरूरत नहीं है। तुम इन्हीं विवाद से समझा न पाओगे। ये समझना ही नहीं चाहते हैं, तो तुम समझा कैसे पाओगे! इसलिए इनकी फिक्र ही छोड़ दो। यह जानें, इनका काम जाने। अगर इन्होंने ऐसे ही जीना चाहा है, तो ऐसे जिए। इनकी मरजी। लेकिन तुम अपनी दया को इन पर से मत हटाना। दया को तो जारी रखना। तुम्हारा दया भाव तो बना रहे। तुम्हारा प्रेम तो बरसता रहे। इनके अपमान मिलते रहें, तुम्हारा प्रेम बरसता रहे। यही रीझ मेरे निरंकार की, कहत मलूक दीवाना। यह दीवाना मलूक कहता है कि यही रीझ मेरे निरंकार की--यह मेरे परमात्मा को रिझाने की कला है।

अब समझना। मलूक अपने को कहते हैंः दीवाना--पागल! परमात्मा में जो पागल न हो जाए, उसे परमात्मा का कुछ पता ही नहीं। परमात्मा के साथ संबंध जुड़ जाए--और तुम होश सम्हाल लो अपना! तो बात ही फिर हुई नहीं४

होश सम्हाल सकते हो, तभी तक, जब तक परमात्मा से साथ नहीं जुड़ा। परमात्मा से साथ जुड़ने में तो ऐसा हो जाता है, जैसे बूंद में सागर उतर आये। बूंद सागर न हो जायेगी तो और क्या होगा! जैसे अंधे को अचानक आंख मिल जाए; मुरदा अचानक जाग उठे और जी जाए। यह भी कुछ नहीं हैं--तुलनायें।

जब परमात्मा का मिलन होता, तो जन्मों की प्यास तृप्त होती।

सांझ हुई
बंसी की धुन पर
झूम उठी पुरवाई
खपरेलों पर धुआं उठा
लहरों पर बिछले गीत

पनघट पर मेला जुड़ आया
लहरी चुनरी पीत
शिशुओं चुनरी पीत
शिशुओं ने सज लिए घरौंदे
फूल उठी अंगनाई
सांझ हुई
बंसी की धुन पर
झूम उठी पुरवाई।
तुलसी-चौरे घी के दीपक
सधवाओं ने बाले
नई वधू ने गूंथी वेणी
किस तपसी की माया
कण-कण क्षण हर चीज अभी सब
गलती है मदिराई
सांझ हुई
बंसी की धुन पर
झूम उठी पुरवाई।

एक मदिरा है; लेकिन हम तो जीवन का आनंद भूल गये हैं। हमारे जीवन में तो कभी बंसी बजती नहीं। सांझ हो जाती है, लेकिन बंसी नहीं बजती। सुबह हो जाती है, लेकिन बंसी नहीं बजती। बंसी बजनी ही बंद हो गई है। तो हम। बंसी की भाषा ही भूल गये हैं।

एक मदिरा है; लेकिन हम तो जीवन का आनंद भूल गये हैं। हमारे जीवन में तो कभी बंसी बजती नहीं। सांझ हो जाती है, लेकिन बंसी नहीं बजती। सुबह हो जाती है, लेकिन बंसी नहीं बजती। बंसी बजनी ही बंद हो गई है। तो हम बंसी की भाषा ही भूल गये हैं

हमारा मदिरा से संबंध ही छूट गया है। आनंद से हमारा कोई नाता नहीं सुख कभी छलकता नहीं। हमारी आंखों में कभी सुख की चमक--सुख की बिजली नहीं कौंधती। और हमारे प्राणों में कभी ऐसा नहीं होता--कि हम धन्यभागी है कि जीवन मिला। शिकायत--और शिकायत।

तो इसका अर्थ इतना ही है कि हम परमात्मा के पास बैठना अभी तक नहीं सीखे। अभी तक हमने उदासीन होने की कला नहीं सीखी।

परमात्मा से जितने दूर--उतना दुःख। उसी अनुपात में दुःख। परमात्मा के जितने पास--उतना सुख; उसी अनुपात में सुख।

कण-कण क्षण हर चीज अभी सब
लगती है मदिराई
सांझ हुई
बंसी की धुन पर

झूम उठी पुरवाई।

और परमात्मा के पास बैठ गये कि सांझ हो गई। अब कोई यात्रा न रही। घर आ गये। रात करीब आयी--विश्राम के लिए। अब हम परमात्मा में चादर ओढ़ कर सो जा सकते हैं।

"सहै कुशब्द वादहूं त्यागै, छांड़ै गव गुनामा।' गर्व और गुमान हमें बड़ी तरह बुरी तरह घेरे हुए हैं। धन का गर्व, पद का गर्व, त्याग का गर्व।

मैंने सुना है: एक यहूदी रबाई एक यहूदी सम्राट के साथ प्रार्थना कर रहा है। कोई पवित्र दिन है यहूदियों का और सम्राट पहला आदमी है, जो सिनागाग में, मंदिर में आया है प्रार्थना करने। यह उसका हक है। सम्राट प्रार्थना करता है, और कहता है। हे भगवान, मैं ना कुछ हूं। उसके बाद धर्मगुरु प्रार्थना करता है और कहता है: हे भगवान, मैं ना कुछ हूं। और तभी उन दोनों ने चौंक कर देखा कि वह जो झाड़ू-बुहारी लगाने वाला है मंदिर का, वह भी उनके पास बैठ कर अंधेरे में कहता है कि भगवान, मैं ना-कुछ हूं।

यह बात धर्मगुरु को जंची नहीं! उसने सम्राट से कहा: जरा देखो तो, कौन कह रहा है कि मैं ना कुछ हूं! ना कुछ कहने में भी सम्राट कहे, तो जंचती है बात। धर्मगुरु ने बड़े व्यंग से कहा: जरा देखो तो, कौन कह रहा है कि मैं ना-कुछ हूं! यह पागल, झाड़ू-बुहारी लगाने वाला परमात्मा से कह रहा है--मैं ना-कुछ हूं।

तुम खयाल रखना: आदमी जब अपने को कहे--ना कुछ हूं, तब भी अहंकार ही भीतर काम करता है। सम्राट कहे तो जंचता--कि मैं ना कुछ हूं। इस ना कुछ हूं। इस ना कुछ में भी भीतर वही अहंकार खड़ा है, वही अकड़ खड़ी है--देखो, मैं इतना बड़ा सम्राट और मैं अपने को ना कुछ कह रहा हूं! मैं इतना बड़ा धर्मगुरु और अपने को ना कुछ कह रहा हूं! अब यह झाड़ू-बुहारी लगाने वाला आदमी--यह भी अपने को ना कुछ कह रहा है। यह मजा देखो। यह तो ना कुछ है ही। इसके कहने को क्या है?

इसीलिए तुम त्याग भी नापते हो, तो धन से नापते हो। अगर गरीब आदमी त्याग करे, तो तुम कहते हो: क्या त्यागा! था ही क्या? अमीर त्यागे, तो तुम कहते हो: हां, त्याग हुआ। तो त्याग को भी मापने की कसौटी धन ही है।

तब रोक न पाया मैं आंसू।
जिसके पीछे पागल हो कर
मैं दौड़ा अपने जीवन-भर
जब मृगजल में परिवर्तित हो
मुझ पर मेरा अरमान हंसा
तब रोक न पाया मैं आंसू।

एक दिन ऐसा होगा, जब तुम्हारे जीवन जीवन, जन्मों जन्मों के गर्व और गुमान तुम पर हंसेंगे।

तब रोक न पाया मैं आंसू
जिसने अपने प्राणों को भर

कर देना चाहा अजर-अमर
विस्मृति के पीछे छिप कर मुझ पर
वह मेरा गान हंसा
तब रोक न पाया मैं आंसू।
मेरे पूजन-आराधन को
मेरे सम्पूर्ण समर्पण को
जब मेरी कमजोरी कह कर
मेरा पूजित पाषाण हंसा
तब रोक पाया मैं आंसू।

आदमी जीवन भर जिस अहंकार को पालता है, पोषता है, उस अहंकार को एक बार गौर से तो देखो। वह अहंकार संगी-साथी नहीं है। वह अहंकार तुम पर हंसेगा; वह तुम्हारी कब्र पर हंसेगा। वह तुम्हारे जीवन भर की व्यर्थता पर हंसेगा। और जिसके लिए तुमने सब समर्पित कर दिया था, अंत में उसी का अट्टहास तुम्हारे प्राणों में तीर की तरह चुभेगा।

इसलिए राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे। हम तो कहते हैं: मैं--मैं--मैं। मलूक कहते हैं: राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे। पागलो, अगर कहना ही है, तो ये मैं--मैं कहना बंद करो। इस मैं की जगह राम को बसाओ, राम को पुकारो।

अवसर न चूक भोंदू, पायो भला दांव रे। और बहुत चूक हो गई। अब तक चूकता आया। अब तो न चूक। यह मौका मिला फिर जीवन का। इस जीवन को दांव पर लगा के परमात्मा को पा ले। इस जीवन को खोकर भी परमात्मा मिले, तो पा ले। यह सब दांव पर लगाने जैसा है।

अवसर चूक भोंदू...। हे मूढ, अब मत चूक। पायो भला दांव रे। मुश्किल से यह मौका मिलता--आदमी होने का, मनुष्य होने का। यह छोटा सा अवसर है, जन्मों-जन्मों के लिए फिर खो सकता है। पशु-पक्षी परमात्मा की याद नहीं कर सकते हैं। पौधे-पत्थर परमात्मा की याद नहीं कर सकते हैं। सिर्फ मनुष्य उस चौराहे पर खड़ा होता है, जहां से अगर वह चाहे, तो परमात्मा की तरह उठ जाए; और चाहे तो फिर प्रकृति में खो जाए। प्रकृति और परमात्मा का चौराहा है मनुष्य।

अवसर न चूक भोंदू, पायो भला दांव रे।

राम को पुकारने की बात का क्या अर्थ है? जप का तो विरोध किया। लेकिन अब कहते हैं: राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे। जप नहीं--प्यार और प्रेम की पुकार।

कहते हैं: तारे गाते हैं।

सन्नाटा वसुधा पर छाया
नभ में हमने कान लगाया
फिर भी अगणित कंठों का यह
राग नहीं हम सुन पाते हैं

कहते हैं: तारे गाते हैं
स्वर्ग सुना करता यह गाना
पृथ्वी ने तो बस यह जाना
अगणित ओस-कणों में
तारों के नीरव आंसू आते हैं
कहते हैं: तारे गाते हैं।
ऊपर देव, तले मानव गण
नभ में दोनों--गायन-रोदन
राग सदा ऊपर को उठता
आंसू नीचे झर जाते हैं
कहते हैं: तारे गाते हैं।

सारा अस्तित्व आ रहा है। सारा अस्तित्व गुनगुना रहा है। एक विराट गीत। काश! तुम प्रेम की आंखों से देख सको, तो फूल गा रहे हैं; चांदतारे गा रहे हैं; पक्षी गा रहे हैं। काश! तुम प्रेम भाव से देख सको, तो तुम पाओगे--यह विराट प्रार्थना चल रही है। इस प्रार्थना में तुम भी सम्मिलित हो जाओ। राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे का यही अर्थ है।

तुम इस प्रार्थना में अलग-थलग खड़े न रह जाओ। तुम एक द्वीप बन कर न रह जाओ। इस विराट प्रार्थना में सम्मिलित हो जाओ। और तुम्हें एक अपूर्व अवसर मिला है। क्योंकि पक्षी गा रहे हैं--बेहोशी में; चांदतारे गा रहे हैं--मूर्च्छा में। तुम होश में गा सकते हो। तुम धन्यभागी हो।

अगर पशु-पक्षी न पहुंच सके परमात्मा को, तो उनका कोई दोष नहीं। तुम न पहुंचे, तो दोषी हो जाओगे। तुम्हारा उत्तरदायित्व बड़ा हैं।

जिन तोका तन दीन्हों, ताको न भजन कीन्हों।
जनम सिझाने जात तेरो, लोहे कैसो ताव रे।।

जैसे लोहे को अगर पीटना हो, कुछ बनाना हो लोहे से, तो जब गरम हो तभी पीटना चाहिए। जब ठंडा हो जाए, तो फिर व्यर्थ हो जाता है। तो जीवन की जब तक गरमी है, तब तक कुछ कर लो। इस गरमी को परमात्मा के चरणों में समर्पित कर दो।

लोग मरने की राह देखते हैं। लोग कहते हैं; मरते वक्त ले लेंगे--राम का ना। कि मरते वक्त पी लेंगे गंगाजल। कि मरते वक्त सुन लेंगे--वेद के मंत्र--गायत्री। जब लोहा ठंडा हो जाए, तब लाख पीटो, कुछ न बन पायेगा।

जिन तोको तन दीन्हों, ताको न भजन कीन्हों। जहां से जन्म हुआ--उस स्रोत की भी तूने स्तुति न की! जिससे सब मिला, उसको तूने धन्यवाद भी न दिया!

जनम सिरानो जाते तेरो--और रोज-रोज राख आती जा रही है, अंगार ठंडा होता जा रहा है। लोहे कैसो ताव रे।--याद रख कि लोहा ठंडा हो जायेगा, तो फिर प्रार्थना व्यर्थ होगी। अभी

कुछ कर ले, जब लोहा गरम हो। जब जीवन उष्मा से भरा हो; कुछ करने की सामर्थ्य हो, तब सारी ऊर्जा को परमात्मा के चरणों में जो रख देता है, उसके जीवन में क्रांति घटती है।

राम जी को गाव-गाव रामजी को तू रिझाव।
राम जी के चरण कमल, चित्त मांहि लाव रे।।

और ध्यान रहे रिझाने पर--जैसे प्रेयसी रिझाती है। जैसे प्रेमी रिझाता है। रिझाना शब्द बड़ा प्यारा है। परमात्मा रूठा है, क्योंकि तुमने जो अब तक किया है, उसमें धन्यवाद भी नहीं दिया है! तुमने परमात्मा का अनुग्रह भी स्वीकार नहीं किया है। शिकायत तो बहुत बार की है, अनुग्रह का भाव प्रकट नहीं किया है।

मंदिर भी गये प्रार्थना करने, तो कुछ मांगने गये हो--धन्यवाद देन नहीं गये हो। जो--उसके लिए धन्यवाद नहीं दिया है; जो नहीं है--उसके लिए शिकायत जरूर की है। और शिकायत का प्रार्थना से क्या संबंध? प्रार्थना का अर्थ तो धन्यवाद होता है। इतना दिया है! इतना दिया है!

तुम जरा हिसाब तो लगाओ: कितना तुम्हें मिला है! एक-एक श्वास अमूल्य है।

सिकंदर ने जब सारी दुनिया जीतने का सपना करीब-करीब पूरा कर लिया, तो वह एक फकीर को मिला--भारत से बाहर जाते वक्त। उस फकीर से उसने कहा कि मैंने दुनिया को जितने का सपना पूरा कर लिया। वह फकीर हंसने लगा। उसने कहा: सिकंदर, तुझे अभी भी होश नहीं आया! अगर तू एक मरुस्थल में भटक जाए और तुझे प्यास लगी हो, तो एक गिलास पानी के लिए तू कितना राज्य का हिस्सा देगा? सिकंदर ने कहा, अगर ऐसी हालत हो कि मैं मर रहा होऊं, तो आधा राज्य दे दूंगा। लेकिन फकीर ने कहा कि समझ कि मैं आधे राज्य में बेचने को तैयार न होऊं। तो सिकंदर ने कहा: पूरा राज्य दे दूंगा। तो वह फकीर हंसने लगा; कहा, फिर सोख एक गिलास पानी के लिए आदमी पूरे साम्राज्य को दे सकता है--पूरी पृथ्वी के साम्राज्य को--जीने के लिए। और जीना मिला है, उसके लिए परमात्मा को तूने धन्यवाद दिया है? मुक्त मिला है। सारे जगत का राज्य देने को तू तैयार है, कि अगर थोड़ी देर और जीने को मौका मिल जाए। लेकिन जीवन तुझे मिला है, वर्षों से तू जी रहा है और तूने कभी धन्यवाद दिया?

एक श्वास लेने के लिए तुम क्या देने को राजी न हो जाओगे!

और ऐसी घड़ी आयी कि सिकंदर जब चला गया, तो वह सोच-विचार में मग्न था। बात तो ठीक थी। वह अपने घर नहीं पहुंच पाया; बीच में उसकी मौत हो गई। और बीच में जब उसकी मौत करीब आयी और चिकित्सकों ने कह दिया कि वह बच न सकेगा। तब वह अपने गांव से केवल चौबीस घंटे के फासले पर था। चौबीस घंटे बाद वह अपनी मां को मिल लेगा, अपनी पत्नी को मिल लेगा, अपने परिवार को मिल लेगा। उसकी आकांक्षा थी। उसने अपने चिकित्सकों से कहा कि भी खर्च हो, उसकी फिक्र न करो। लेकिन मुझे चौबीस घंटे जिला लो। मैं अपने घर तो पहुंच जाऊं। वहां जाकर मर जाऊं। उन्होंने कहा, हम असमर्थ हैं। चौबीस घंटे तो दूर, चौबीस मिनट भी हम न जिला सकेंगे।

सिकंदर ने कहा।: मैं सब देने को तैयार हूं। तब उस फकीर की बात याद आयी--कि वह ठीक ही कह रहा था। वह कल्पना न थी--मरुस्थल की। वह घटी जा रही है बात। लेकिन क्या करेगा चिकित्सक!

सिकंदर ने कहा कि मैं अपना सारा राज्य देने को तैयार हूं; मुझे चौबीस घंटे बचा लो। मैं अपनी मां की गोद तक पहुंच जाऊं। वह देख तो ले अपने बेटे को--दुनिया जीत कर आ गया। फिर मैं मर जाऊं, कोई बात नहीं। लेकिन चिकित्सक ने कहा, क्षमा करें। हम क्या कर सकते हैं! मौत अब आ ही गई द्वार पर।

घर नहीं पहुंच पाया सिकंदर। चौबीस घंटे का फासला था। सारा राज्य देने को तैयार था। लेकिन तुम्हें यह जीवन मिला, इसके लिए कभी परमात्मा को धन्यवाद दिया?

जिन तोको तन दीन्हों, ताको न भजन कीन्हों।
जनम सिरानो जात तेरो, लोहे कैसो ताव रे।।
राम जी को गाव-गाव, राम जी को तू रिझाव।
राम जी के चरण कमल चित्त मांहि लाव रे।।

रिझाओ प्रभु को। रिझाने का अर्थ है: पुकारो हृदय से--रोओ। आंसू बन जाए तुम्हारी प्रार्थनाएं।

यह पपीहे की रटन है।
बादलों की घिर घटाएं
भूमि की लेती बलाएं
खोल दिल देतीं दुआएं
देख किस उर में जलन है?
यह पपीहे की रटन है।
जो बहादे नीर आया
आग का फिर तीर आया
वज्र भी बेपीर आया
कब रुका इसका वन है
यह पपीहे की रटन है:
यह न पानी से बुझेगी
यह न पत्थर से दबेगी
यह न शोलों से डरेगी
यह वियोगी की लगन है
यह पपीहे की रटन है।

जब तुम्हारा प्राण पपीहे की रटन जैसी--पी कहां?--पी कहां?--की पुकार से भर जाए...।

नानक के जीवन में उल्लेख है: वे जवान थे। उस रात क्रांति घटी। वे बैठे हैं। प्रभु का स्मरण कर रहे हैं। आधी रात हो गई। आधी रात भी बीतने लगी। मां उनकी आई और कहा कि उठो अब; सो जाओ। और तब नानक ने कहा: चुप; सुन जरा।

बाहर एक पपीहा पुकार रहा है: पी कहां है? पी कहां? और नानक ने कहा: अगर यह न रुकेगा, तो मैं भी रुकने वाला नहीं। जब इसे आधी रात का पता नहीं चल रहा है, तो मुझे क्या पता चले! जब यह पुकारे जा रहा है, तो मैं भी पुकारे जाऊंगा। आज तो तय किया है कि पपीहा रुकेगा, तो मैं रुकूंगा अन्यथा, मैं रुकने वाला नहीं। इसका प्यारा खो गया है। मेरा प्यारा भी खो गया है। और इसका प्यारा तो शायद इसे मिल भी जायेगा। मेरा प्यारा तो न मालूम मिले--कि न मिले! मुझे तो देर तक पुकारना है। दि हो कि रात, मुझे तो पुकारते ही रहना है।

उस रात वे रात भर पुकारते रहे। उसी रात क्रांति घटी। उसी रात उन्हें पहली झलक मिली परमात्मा की। उसी रात नानक आदमी न रहे; आदमी से ऊपर उठ गये। एक तरंग आई--उन्हें डुबा गई।

यह पपीहे की रटन है
यह न पानी से बुझेगी
यह न पत्थर से दबेगी
यह न शोलों से डरेगी।
यह वियोगी की लगन है
यह पपीहे की रटन है।

ऐसा हो जाए, तो रिझाव पैदा होता है।

कहत मलूकदास, छोड़ दे तैं झूठी आस।
आनंद मगन होइ के तैं हरि गुन गाव रे।
राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे।

कहत मलूकदास, छोड़ दे तैं झूठी आस। अब संसार से और आशा मत रख, कि यहां कुछ मिलेगा। इसी आशा के कारण परमात्मा को हम नहीं पुकारते।

पिया को कैसे पुकारें? अभी रुपैय्या की पुकार तो बंद हो, तो फिर पिया की पुकार शुरू हो। यह रुपैप्या तो अभी सारे प्राणों को पकड़े है। अभी हम कैसे उस परम प्यारे को पुकारें? अभी तो छोटी-छोटी चीजें हमारे पुकार का आधार बनी हैं।

कहत मलूकदास, छोड़ दे तैं झूठी आस। इस संसार से न कभी कुछ किसी को मिला हैं, न मिलेगा। यहां सब आशाएं निराशाओ में परिणित हो जाती हैं। और यहां सब कल्पनाएं धूल-धूसरित हो जाती हैं। यह संसार टूटे हुए इंद्रधनुषों का ढेर है। यहां सपने टूटते हैं--पूरे नहीं होते। यहां टूटने को ही सपने बनते हैं; पूरे यहां होने को बनते ही नहीं। संसार मृगमरीचिका है।

कोई नहीं, कोई नहीं

यह भूमि है हाला भरी
मधुपात्र मधुबाला भरी
ऐसा बुझा जो पा सके
मेरे हृदय को प्यास को
कोई नहीं, कोई नहीं।
दिखती हैं बहुत मधुशालाएं
दिखती हैं बहुत मधुबालाएं
दिखते हैं बहुत मधुपात्र
दिखते हैं बहुत मधुकलश
कोई नहीं, कोई नहीं।
यह भूमि है हाला भरी।
मधुपात्र मधुबाला भरी
ऐसा बुझा जो पा सके
मेरे हृदय की प्यास को
कोई नहीं, कोई नहीं।

लेकिन हृदय की प्यास इस जगत की किसी मधुशाला में बुझती नहीं। कोई मधुपात्र इस प्यास को बुझाता नहीं। कोई मधुबाला इस प्यास को बुझाती नहीं।

सुनता समझता है गगन
वन के विहंगों के वचन
ऐसा समझ जो पा सके
मेरे हृदय उच्छवास को
कोई नहीं, कोई नहीं।

पुकारते रहो, चिल्लाते रहो। संसार की सब पुकारें सूने आकाश में खो जाती हैं।

ऐसा समझ जो पा सके
मेरे हृदय उच्छवास को
कोई नहीं, कोई नहीं।
मधुरित समीरण चल पड़ा
वन ले नए पल्लव खड़ा
ऐसा फिर जो ला सके
मेरे गए विश्वास को
कोई नहीं, कोई नहीं।

अगर तुम जरा ही गौर से देखोगे इस संसार में, तो तुम्हारी आशाएं सब निराशाएं हो जायेंगी।

इस संसार में आस्था उठ जाए, तो परमात्मा में आस्था बैठनी शुरू हो जाती है। इस संसार की तरफ पीठ हो जाए, तो परमात्मा की तरफ मुख हो जाता है। संसार के जो विमुख हुआ, वह परमात्मा के सन्मुख हुआ। या संसार की जिसे समझ आ गई, संसार की व्यर्थता दिखाई पड़ गई, उसे फिर दौड़ नहीं रह जाती यह तृष्णा का लंबा जाल नहीं रह जाता।

कहत मलूकदास, छोड़ दे तैं झूठी आस।
आनंद गगन होइ के तैं हरि गुन गाव रे।।

और फिर आनंद मगन हो कर...। उदास हो कर नहीं। संसार से जो उदास हो गया, वह परमात्मा में तो आनंद मगन हो जायेगा। इसलिए उदास हो जाने से कोई उदासी नहीं हो जाता। तथाकथित--कि बैठे हैं; लंबे चेहरे; थके-मांदे; हारे।

नहीं; जैसे ही संसार से कोई निराश हुआ, उसके जीवन में परम आनंद का उत्सव प्रकट होता है। आनंद मगन होइ के तैं हरि गुन गाव रे, तैं हरि को रिझाव रे। राम कहो, राम कहो, राम कहो बावरे। और तब परमात्मा से एक संबंध बनना शुरू होता है, जो प्रेमी और प्रेयसी का संबंध है।

छांह तो देते नहीं
मधुमास लेकर क्या करूंगी
बांह तो देते नहीं
विश्वास ले कर क्या करूंगी
टूट कर बिखरी हृदय की
कुसुम-सी कोमल तपस्या
स्वप्न झूठे हो गये हैं
आरती के दीप का
मधुनेह चुकता जा रहा है
फूल जूठे हो गये हैं
आ गई थी द्वार पर
तो साधना स्वीकार करते
अब कहा जाऊं बताओ
तृप्ति तो देते नहीं
यह प्यास ले कर क्या करूंगी
बांह तो देते नहीं
विश्वास लेकर क्या करूंगी।

भक्त तो प्रेयसी है। परमात्मा तो प्रेमी है। वह कहता है: बांह दो; बातों से न होगा। बांह तो देते नहीं, विश्वास ले कर क्या करूंगी?

विचारों और सिद्धांतों से न होगा। तृप्ति तो देते नहीं, छांह तो देते नहीं,
मधुमास ले कर क्या करूंगी?

आज धरती से गगन तक
मिलन के क्षण सज रहे हैं
चांदनी इठला रही है
स्वप्न सी वंशी हृदय के
मर्म गहरे कर रही है
गंध उड़ती जा रही है
मंजरित अमराइयों में
मदिर कोयल कूकती है
पर अधर मेरे जड़ित हैं
गीत तो देते नहीं
अच्छवास ले कर क्या करूंगी
बांह तो देते नहीं
विश्वास लेकर क्या करूंगी।

भक्त तो लड़ने लगता है। एक बार प्रेम की पुकार उठती है, तो भक्त को लड़ने लगता है। सिर्फ भक्त ही लड़ सकता है--भगवान से। क्योंकि भक्त को कोई डर नहीं है--भगवान का। प्रेम में कहां भय है!

गीत तो देते नहीं
उच्छवास ले कर क्या करूंगी
बांह तो देते नहीं
विश्वास लेकर क्या करूंगी
डूबती है सांझ की
अंतिम किरण सी आस मेरी
और आकुल प्राण मेरे
किस क्षितिज की घाटियों में
खो गये प्रतिध्वनित होकर
मौन, मधुमय गान मेरे
चरण हारे, पंथ चलते
मन उदास, तन थक-सा
कौन दे तुम बिन सहारा
सांस तो देते नहीं
उल्लास ले कर क्या करूंगी
बांह तो देते नहीं
विश्वास ले कर क्या करूंगी?

भक्त फिर एक वार्ता में लीन होता है। परमात्मा के साथ भक्त की प्रार्थना जप नहीं है--एक वार्ता है; प्रेमी के साथ की वार्ता है; प्रेमी के साथ प्रेमी का रूठना--मनाना है।

रामकृष्ण के जीवन में ऐसे उल्लेख आते हैं--कि कई बार वे प्रार्थना बंद कर देते। द्वार-दरवाजा बंद कर देते दक्षिणेश्वर का। दो-चार दिन नदारत ही हो जाते। खबर मिली मंदिर के ट्रस्टियों को, उन्होंने रामकृष्ण को बुला कर कहा कहा कि यह क्या मामला है! प्रार्थना तो रोज नियम से होनी चाहिए। यह कोई ढंग हुआ!

उन्होंने कहा: ढंग हो या न ढंग हो। फिर कोई और पुजारी खोज लो। क्योंकि जब मैं नाराज हो जाता हूं, तो फिर मैं प्रार्थना नहीं करूंगा। अभी नाराज हो गया--दो दिन से। इतना चीखा-चिल्लाया--और सुनते ही नहीं! तो चीखने चिल्लाने से क्या सार! मैं मानता हूं; कभी-कभी उनको भी मजबूर कर देता हूं--मुझे मनाने का। जब दो-चार दिन मैं दरवाजा बंद करके रख दो हूं, भोग भी नहीं लगाता, तब वे कहते हैं: रामकृष्ण, आ जा। चल आ जा। अब ठीक।

रामकृष्ण के जीवन में जो परम क्रांति घटी, वह घटी ऐसे ही।--कि एक दिन उन्होंने प्रार्थना शुरू की और वे प्रार्थना करते ही रहे। जो मंदिर में प्रार्थना सुनने आये थे, वे कब के थक गये और चले गये। मंदिर खाली हो गया। भर दुपहरी हो गई। कोई मंदिर में न बचा। सन्नाटा छा गया। मगर वे अपनी प्रार्थना ही किये जा रहे हैं। वे रोये ही चले जा रहे हैं। आखिरी में उन्होंने कहा कि बस, अब आखिरी दिन आ गया; अब तू दर्शन देता--कि नहीं? अब तू प्रकट होता--कि नहीं? या तो प्रकट हो जा, या फिर जो तलवार टंगी है--काली की, यह लेकर मैं अपनी गर्दन काटे देता हूं। बहुत हो गया। तू मानता नहीं है! और किसी चढ़ाव से मानोगे, तो गर्दन चढ़ा देता हूं।

झपट कर तलवार खींच ली और तलवार मारने को ही थे अपनी गर्दन में कि तलवार हाथ से छूट कर गिर गई। विराट प्रकाश फैल गया। रामकृष्ण बेहोश हो गये। छह दिन तक होश न आया। लेकिन उसके बाद जब होश में आये, तो जो आदमी बेहोश हुआ था, वह जा चुका था; दूसरा आदमी आ गया था। यह बात ही और थी। रामकृष्ण विदा हो गये। परमहंस का आविर्भाव हो गया था।

बात यहां तक पहुंच गई; लड़ाई पर यहां तक पहुंच गई कि अब नहीं मानते, तो तलवार से गर्दन काट देता हूं। उसी क्षण घटना घट गई। इसको ही दांव लगाना कहते हैं।

परमात्मा को रिझाना है, मनाना है। परमात्मा को प्रेम पातियां लिखनी हैं। परमात्मा से प्रेम का संबंध बनाना है।

मलूक का सारा गीतों का सार--सारे सूत्रों का सार इतना ही है। यही रीझ मेरे निरंकार की, कहत मलूक दीवाना।

रिझाना--इस शब्द को खूब याद रखना। अगर तुम थोड़ा सा भी रिझाने की कला सीख जाओ, तो परमात्मा दूर नहीं है। परमात्मा पास ही है, तुमने पुकारा नहीं। परमात्मा बहुत पास है, तुमने आंख ही उठा कर नहीं देखा। तुमने प्रेम का शब्द ही नहीं उठाया अभी तक।

ये दो मार्ग हैं: एक ज्ञान का मार्ग; एक भक्ति का मार्ग।
भक्ति का मार्ग बड़ा अनूठा मार्ग है।
तुममें जो दीवाने हों, उनके लिए निमंत्रण है।
आज इतना ही।

भक्ति की शराब स्वभाव की उदघोषणा समानुभूति धारणा और भक्ति त्वरा और सातत्य जीवन-उत्सव
चौथा प्रवचन
श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रात;, दिनांक १४ मई १९७७
प्रश्न-सार
भक्ति के लिए शराब की उपमा आप क्यों देते हैं?
मध्ययुगीन संत गरीब और पिछड़ें वर्ग से क्यों आये?
दूसरों के दुःख को अपना मानना कब संभव?
मिलन असंभव क्यों लगता है?
अनेक साधनाएं करके घटना क्यों नहीं घटी?
मृत्यु के रहते उदासी से कैसे मुक्त रहा जा सकता है?
पहला प्रश्नः कृपा करके शराब की तो बात न करें। क्या प्रभु-भक्ति के लिए आप और कोई उपमा नहीं ढूंढ सकते हैं?
शराब से सुंदर कोई उपमा नहीं है। शराब शब्द से चौंकें मत। भक्ति एक अनूठी शराब है; अंगूर की नहीं--आत्मा को। और भक्ति और शराब में कुछ गहरा तालमेल है।
शराब भुलाती है; भक्ति मिटाती है। शराब क्षण भर को करती है वही काम, जो भक्ति सदा के लिए कर देती है। शराब क्षण-भंगुर भक्ति है; और भक्ति है; और भक्ति शाश्वत शराब है।
शराब का इतना आकर्षण है--सदियों से, सदा से; क्योंकि आदमी जब अहंकार से बहुत पीड़ित और परेशान और चिंताओं से बहुत ग्रस्त और संतापों से बहुत बोझिल हो जाता है, तो एक ही उपाय मालूम पड़ता है कि किसी तरह अपने को भूला बैठो। थोड़ी देर को सही।
थोड़ी देर को भूल जाए यह अहंकार, भूल जाए ये चिंताएं, भूल जाए यह विषाद। शराब थोड़ी देर को अहंकार पर पर्दा डाल देती है; तुम्हें याद नहीं रहती है कि तुम कौन हो। थोड़ी देर को डुबकी लगा जाती है। झूठी है डुबकी। फिर लौट आओगे। शराब मिटा नहीं सकती, सिर्फ धोखा दे सकती है। फिर लौटोगे और चिंताएं कम भी न होंगी, शायद इस बीच बढ़ भी जायेंगी। क्योंकि जितनी देर तुम शराब में डुबे रहे, चिंताएं खाली नहीं बैठी रहीं। उनका काम जारी है; उनका उलझाव बढ़ रहा है। उतने समय में उनमें और नए पत्ते निकल आयेंगे,

और नयी शाखायें निकल आयेंगी; तुम और भी चिंतित हो जाओगे। शायद और चिंता में और ज्यादा शराब पी लोगे। एक दुष्टचक्र पैदा होगा।

लेकिन भक्ति की शराब भी, है तो शराब ही। उसमें अहंकार भूलता नहीं, अहंकार विनष्ट ही हो जाता है।

शराब मग विस्मरण है; भक्ति में विसर्जन। फिर तुम लौटकर कभी भी वही न हो पाओगे, जो तुम थे। अहंकार गया--सो गया और अहंकार के साथ गई सारी गांठें--चिंता की, दुःख की, पीड़ा की।

अहंकार ही मूल गांठ है। मैं हूं--यही सारे उपद्रवों की जड़ है। मैं नहीं हूं--ऐसी प्रतीति, परमात्मा है--इस प्रतीति का द्वार बन जाती है। इसलिए मैं तो भक्तों को शराबी कहता हूं। और इससे बेहतर उपमा संभव नहीं है। और मैं ही कह रहा हूं, ऐसा भी हनीं है। बड़े पुराने दिनों से यह बात अनुभव की गई है कि इस पृथ्वी पर शराब ही ऐसा तत्व है, जो थोड़ी सी खबर देता है--उस परलोक की।

कुरान कहता है कि बहिश्त में, स्वर्ग में शराब के चश्मे बहते हैं। वह भी प्रतीक है। उसका अर्थ है: अपूर्व आनंद के झरने बह रहे हैं, जिनमें डुबकी लगा ली, तो सदा के लिए खो गये। एक बार गोता लग गया, तो खो गये। विस्मरण के झरने बह रहे हैं। शराब के झरने का इतना ही अर्थ होता है।

स्वर्ग अगर आत्म-विस्मरण न हो, तो और क्या होगा?

फिर बाबा मलूकदास के साथ तो और भी इस प्रतिमा का तालमेल है। मलूक कहते हैं कि भक्त ऐसे चलता, संन्यस्त ऐसे चलता, जैसे मस्त हाथी, पागल हाथी। किसी अपूर्व रस से भरा झलकता चलता, छलकता चलता।

कोई किस तरह राज-ए-उल्फत छुपाये।

निगाहें मिली और कदम डगमगाये।

परमात्मा से आंख मिल जाए, तो फिर छिपाओगे कहां? लाख छिपाओ, पता चल-चल जायेगा। उठते-बैठते, बोलते न बोलते, सोते-जागते पता चल जायेगा। कोई कभी छिपा पाया परमात्मा को जानकर? कोई उपाय नहीं है--छिपाने का।

यह तो ऐसे है, जैसे अंधेरा रात में किसी ने दीया जलाया हो, और दीए को छिपाने की कोशिश करे। कैसे छिपायेगा? फूल खिला हो, और फूल सुगंध को छिपाने की कोशिश करे, कैसे छिपेगी?

कोई किस तरह राज-ए-उल्फत छिपाते। यह प्रेम का रहस्य छिपाये छिपता नहीं। निगाहें मिली और कदम डगमगाये। और जब पहली खबर मिलती है कि परमात्मा से कुछ संबंध जुड़ा, वह कदम के डगमगाने से मिलती है। एक मस्ती बहने लगती है। इसलिए मैंने शराब की बात कही।

और तुमसे मैं यह भी कह दूं कि इस संसार में मिलने वाली शराब तुम तब तक छोड़ न सकोगे, जब तक तुम परमात्मा की शराब का स्वाद न ले लो। जिस दिन परमात्मा की

शराब का स्वाद आ गया, सब शराबें फीकी और तिक्त कड़वी हो जाती हैं। फिर कोई शराब जंचती नहीं। जिसने उस परम को पी लिया, फिर और कोई चीज कंठ में उतरती नहीं; फिर रास ही आतीं। फिर सब चीजें छोटी पड़ जाती हैं।

परमात्मा से आंख मिल गई, तो फिर इस जगत में किसी को आंख से आंख मिलाने का भाव चला जाता है। परमात्मा से आंख मिल गई, तो इस जगत में फिर किसी से भी कोई आसक्ति और प्रेम नहीं रह जाता। बड़ा प्रेम आ जाए, तो छोटा अपने से चला जाता है। सूरज निकल आये, तो जो दीया अंधेरे में छिपाये न छिपता था, सूरज के निकलने पर अपने आप छिप जाता है। उसका पता ही नहीं चलता। देखते नहीं, रोज रात आकाश तारों से भर जाता है सुबह तारे कहां चले जाते हैं? क्या तुम सोचते हो: कहीं चले जाते हैं? अपनी जगह हैं। लेकिन सूरज निकल आया है; विराट प्रकाश फैल गया है। उस विराट प्रकाश में छोटे-छोटे टिमटिमाते तारों का प्रकाश खो जाता है। वे अपनी जगह है। जब सूरज विदा हो जायेगा, तब वे फिर टिमटिमाने लगेंगे। अभी भी टिमटिमा रहे हैं, लेकिन बड़े प्रकाश के सामने छोटा प्रकाश छिपा जाता है।

भक्त तो मस्ती में है। भक्त तो बेहोशी में है। और इस बेहोशी का मजा कुछ ऐसा कि बेहोशी बढ़ती है और होश भी बढ़ता है। यही तो चमत्कार है, यही तो रहस्य है! एक तरफ भक्त की बेहोशी बढ़ती है, और एक तरफ भक्त का होश बढ़ता है! एक तरफ अहंकार की तरफ; और आत्मा की तरफ होश आता। एक तरफ भक्त गंवाने लगता, दूसरी तरफ कमाने लगता। अहंकार के सिक्के खोने लगते हाथ से और आत्मा के सिक्के हाथ में पड़ने लगते।

चाल है मस्त, नजर मस्त, अदा में मस्ती।
जैसे आते हैं वो, लौटे हुए मैखाने से।।

मंदिर से भक्त को आते देखो! पूजागृह से भक्त को आते देखो। या पूजागृह की तरफ जाते भक्त को देखो। उसकी धुन सुनो। उसके हृदय के पास थोड़ा कान लगाओ। उसके पास तुम तरंगें पाओगे--शराब की।

भक्त के साथ रहो, तो धीरे-धीरे तुम भी डूबने लगोगे। भक्त का संग-साथ तुम्हें भी बिगाड़ देगा। मीरा ने कहा है: सब लोक-लाज खोई--साध संगत। साधुओं के संग में सब लोक-लाज खो गई।

मीरा राज-घराने से थी; फिर राजस्थानी राज-घराने की! जहां घूंघट उठता ही नहीं। फिर सड़कों पर नाचने लगी। शराब न कहोगे, तो क्या कहोगे? पागल हो उठी। दीवानी हो गई। राहों पर, चौराहों पर नृत्य चलने लगा। जिस राजरानी का चेहरा कभी किसी ने न देखा था, भीड़ और बाजार के साधारण जन उसका नृत्य देखने लगे! घर के लोग अगर परेशान हुए होंगे, तो कुछ आश्चर्य नहीं है। और उन्होंने अगर जहर का प्याला भेजा, तो मीरा से दुश्मनी थी--ऐसा नहीं। मीरा को पागल समझा। और घर की प्रतिष्ठा भी दांव पर लगाए दे रहे है!

लेकिन जिसको परमात्मा की शराब चढ़ जाए, फिर कोई और प्रतिष्ठा मूल्य नहीं रखती।

उर्दू, पर्शियन, अरबी संतों ने बहुत शराब की उपमा का प्रयोग किया है। उमर खय्याम तो जग जाहिर है। और तुम चकित होओगे जान कर कि उमर खय्याम कभी शराब पिया ही नहीं। वह तो परमात्मा की शराब की बात कर रहा है। उमर खय्याम के साथ बड़ा अनाचार हो गया है। फित्जराल्ड ने जब पहली दफा उमर खय्याम का अंग्रेजी में अनुवाद किया, तो फित्जराल्ड ठीक से समझा नहीं कि बात क्या है। वह समझा--कि शराब यानी शराब। जैसा कि प्रश्न पूछनेवाले ने समझ लिया है कि शराब यानी शराब।

फित्जराल्ड के अनुवाद के कारण सारी दुनिया में एक भ्रांति फैल गई है। क्योंकि उसी के अनुवाद से उमर खय्याम जाहिर हुआ। अनुवाद अनूठा है, लेकिन भ्रांतियों से भरा है।

पहली भ्रांति तो यही है...। उमर खय्याम एक सूफी फकीर है, एक अलमस्त फकीर है। बाबा मलूकदास से मिल बैठता, तो दोनों की खूब छनती। दोनों एक दूसरे की बात समझ लेते। शायद कहने की जरूरत भी न पड़ती। शायद बोलते भी न; साथ-साथ डोलते नाचते। कौन कहे! कौन जाने! ऐसे अनूठे लोग मिल जाए, तो उनको भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।

उमर खय्याम सूफी फकीर था। शराब की बात में तो वह परमात्मा की बात कर रहा। मधुशाला से मतलब है--परमात्मा का घर। साकी से मतलब है--खुद परमात्मा।

साकिया तशनगी की ताब नहीं,
जहर दे दे अगर शराब नहीं।

और अगर परमात्मा ही पिलाने वाला हो, तो फिर कौन फिक्र करता है। अगर जहर भी पिला दे, तो ठीक।

साकिया तसनगी की बात नहीं। तू फिक्र मत कर। अगर शराब न हो, तो जहर दे दे। जहर दे दे, अगर शराब नहीं। चलेगा। तेरे हाथ से जो मिल जायेगा, वही अमृत है।

वाइज न तुम पियो, न किसी को पिला सको।
क्या बात है तुम्हारे शराब-एत्तहूर की।।

इसलाम कहता है कि स्वर्ग में शराब के चश्मे बह रहे हैं। पूछना चाहिए कि क्या करोगे, इन शराब के चश्मों का! क्योंकि यहां तो तुम लोगों को सिखाते हो--शराब न पीयो। जो शराब पीते हैं, वे तो नर्क जायेंगे। वे तो बहिश्त जायेंगे नहीं। जाहिर है--गणित साफ है। जो यहां शराब नहीं पीते, शराब छोड़े हुए हैं, जीवन का सब राग-रंग तोड़ा हुआ है, गृहस्थ नहीं है--विरागी हैं, उदासी हैं--वे जायेंगे स्वर्ग। मगर वे करेंगे क्या कहां--शराब के चश्मों का--जिन्होंने कभी पी ही नहीं।

व इल न तुम पियो--धर्म-गुरु न तो तुम पीते हो, न किसी को पिला सको।--और न तुम किसी को पिला सकते हो; क्या बात है तुम्हारी शराब-एत्तहूर की; फिर सार क्या हुआ--तुम्हारे स्वर्ग की शराब का? न तुम खुद पीओगे, न किसी को पिला सकोगे। न पीने की हिम्मत है, न पिलाने की हिम्मत है, और वहां जो लोग होंगे, वे न पीने वाले होगे। कसमें खाये हुए लोग होगे। वहां शराब के चश्मे बहाने से सार भी क्या है!

ये पंक्तियां महत्वपूर्ण हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि अगर तुम्हें परमात्मा के जीवन में कभी प्रवेश करना हो, तो उदास हो कर प्रवेश मत करना। इस जीवन में जहां, भी जैसे भी, जितना भी, क्षण-भंगुर सही, जो सुख मिलता हो, उसका स्वाद लो। उस स्वाद में भी परमात्मा का स्वाद अनुभव करो। बूंद सही, लेकिन बूंद में से भी है तो सागर ही। क्षण-भंगुर सही, लेकिन क्षण-भंगुर में भी छाया तो पड़ी शाश्वत की।

इसलिए भक्त कहता है: जीवन से भागो मत; जीवन को छोड़ो मत; जीवन को जीओ।

मलूक कहते हैं; घर में रहे उदासी। भागो मत कहीं; बीच बाजार में रहो। घर में रहे उदासी। और उदासी का अर्थ मैंने समझाया--उदास नहीं। उदासी का अर्थ है--उद आसीत--परमात्मा के पास बैठा रहे। रहे बाजार में, लेकिन मन परमात्मा के पास रहे। बैठक उसके पास लगी रहे। शरीर बाजार में रहे और प्राण उसके पास रहें। ऐसे आदमी का नाम उदासी।

नाचो--गाओ--गुनगुनाओ। वसंत है तो खिलो--फूलों जैसे। और जब वृक्ष नाचते हो हवाओं में, तो तुम भी नाचो। और जब सूरज उगे, तो गुनगुनाओ--गीत गाओ, प्रार्थना करा। सब तरह से अपनी जीवन को आनंद से भरो और हर आनंद में परमात्मा का अनुग्रह स्वीकार करो, तो ही तुम किसी दिन स्वर्ग के आनंद को पाने के योग्य बन सकोगे। नहीं तो स्वाद ही नहीं रहेगा!

जरा सोचो तो, तुम्हारे सब उदासी--तथाकथित उदासी और विरागी और संन्यासी--सब स्वर्ग पहुंच जाए, तो स्वर्ग की हालत नरक से भी बदतर हो जाए। हो गई होगी तब तक। तुम्हें नरक में चाहे थोड़े भले आदमी भी मिल जाए--मुस्कुराते, गुनगुनाते, गीत गाते, नाचते, मगर स्वर्ग में कहां मिलेंगे!

स्वर्ग बड़ा उदास हो गया होगा! स्वर्ग में धूल जम गई होगी। स्वर्ग में कोई उत्सव तो नहीं हो रहा होगा।

ये पंक्तियां ठीक ही हैं कि--वाइज, न तुम पीयो, न किसी को पिला सको। क्या बात है तुम्हारी शराब-एतहूर की!

पीना तो यहीं सीखी। संसार पाठशाला है। संसार छोटा सा आंगन है, जिसमें तुम उड़ना सीखो, ताकि एक दिन तुम विराट के आंगन में भी उड़ सको।

इस संसार में और परमात्मा में कोई अनिवार्य विरोध नहीं है। यह परमात्मा की ही सीढ़ी है। होना ही चाहिए। उसका है, तो उसकी ही सीढ़ी होगी। उसका हो कर उसके विपरीत कैसे होगा? इन सीढ़ियों का उपयोग करो। निश्चित इसके पार जाना है। सीढ़ियों पर अटक नहीं जाना है। लेकिन इसका उपयोग करो।

तुम्हें बेचैनी शराब शब्द से हुई, क्योंकि तुम्हें लगा--कि शराब तो सांसारिक चीज है।

अगर ठीक से समझो, तो संसार के अतिरिक्त हमारे पास कोई दूसरे शब्द ही नहीं हैं। तुम जो भी शब्द उपयोग करोगे, वे सभी सांसारिक होंगे। शास्त्र कहते हैं: परमात्मा को पा लेने का आनंद है--ऐसा--जैसे करोड़ गुना विषयानंद। तो सांसारिक हो गया! संभोग से सुख मिलता है, उसका करोड़ गुना; लेकिन बात संभोग की हो गई।

हम कहते हैं: संसार क्षण-भंगुर; परमात्मा शाश्वत। लेकिन शाश्वत का नाचने का उपाय भी क्षण-भंगुर! हम हैं; यहां जो जरा-सी देर को मिलता, परमात्मा को सदा के लिए मिल जाता। लेकिन हमारी भाषा तो यहीं की होगी।

भाषा मात्र पृथ्वी की है। आकाश को समझाने चलोगे, तो भी पृथ्वी की भाषा का ही उपयोग करना पड़ेगा।

शराब कुछ बुरा शब्द नहीं है। प्यारा शब्द है। अर्थ समझो। अर्थ इतना ही है--कि ऐसी डुबकी लगाओ परमात्मा में--उसके नाम ऐसे डूबो कि तुम्हें अपना स्मरण न रह जाए। मैं हूं--यह भाव खो जाए। और तब तुम समझोगे कि मैं किस शराब की बात कर रहा हूं।

मिरी शराब की क्या कद्र तुझको ऐ वाइज
जिसे मैं पी के दुआ दूं वह जन्नती हो जाए।।

जिस शराब की मैं बात कर रहा हूं, मिरी शराब की क्या कद्र तुझको ऐ वाइज--हे धर्मगुरु, तुझे मेरे शब्द शराब का कुछ भी पता नहीं है; उसकी तुझे कद्र भी नहीं हो सकती। तू समझ ही न पायेगा। जिसे मैं पी के दुआ दूं, वह जन्नती हो जाये। जिसे मैं पी कर दुआ दे दूं, स्वर्ग के पाने का उसे मजा आ जाए।

बाबा मलूकदास उस मस्ती की बात कर रहे हैं कि तुम अगर उस मस्ती की छाया में क्षण भर विश्राम भी कर लो, तो रूपांतरित हो जाओ।

यह बात तुम्हें जानकर हैरानी होगी कि शराब का आविष्कार एक ईसाई संत ने किया। इसी तरह चाय का आविष्कार एक बौद्ध भिक्षु ने किया। दोनों बातें बड़ी प्रतीकात्मक हैं।

बौद्धों की परंपरा है--ध्यान की। चाय जगाती है; नींद को तोड़ती है। प्रतीकात्मक है। झपकी नहीं आने देती। आती हो झपकी, तो झपकी चली जाती है। जम्हाई आती हो, तो जम्हाई चली जाती है।

चाय का संबंध जुड़ा है--बोधिधर्म बोधिधर्म कोई अठारह सौ साल पहले चीन गया। बौद्ध सदगुरु था--अपूर्व! वह टाह नाम के पहाड़ पर वर्षों तक बैठा रहा; ध्यान करता रहा। टाह पहाड़ का नाम था, इसीलिए--टी। और टाह का एक उच्चारण चा भी है चीन में--इसीलिए चाय। उस पहाड़ से इसका संबंध जुड़ा।

कहानी बड़ी मधुर है। कहानी तो कहानी है...। लेकिन है अर्थपूर्ण। एक रात बोधिधर्म जागरण के लिए बैठा है; पूरी रात जागरण करना है; और झपकी आने लगी। तो उसने गुस्से में अपी आंख की दोनों पलकें उखाड़ कर फेंक दी। न रहेगी। पलकें, न झपकी आयेगी। न कुछ झपकने को ही बचेगा, तो झपकी कैसे आयेगी! न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। उसने पलकें उखाड़ कर फेंक दी। और कहानी बड़ी मधुर है; कहते हैं: उन्हीं पलकों से पहली दफा चाय का पौधा पैदा हुआ। वे पड़ी रहीं जमीन में; गल गई और उनसे जो पौधा पैदा हुआ, वह चाय बनी।

उस चाय को अब भी तुम पीते हो, तो नींद टूट जाती है। यह नींद तोड़ने के लिए ही फेंकी थी बोधिधर्म ने।

लेकिन बात सोचने जैसी है। बौद्ध है। बौद्ध है--ध्यान का मार्ग। इसलिए बौद्ध भिक्षु को चाय पीने की मनाही नहीं है। बौद्ध भिक्षु और कुछ न करे, चाय तो जरूर पीता है। चाय तो दिन में कई बार पीता है। सुबह का ध्यान चाय से शुरू होता है; ध्यान का अंत चाय से होता है। तुम शायद चकित होओगे जानकर--कि चाय और बौद्ध भिक्षु! चाय तो नहीं पीनी चाहिए। लेकिन सदियों से बौद्ध भिक्षु पीता रहा है। और उसका उपयोग करता रहा है। और जापान में उन्होंने चाय को बिलकुल ही धार्मिक मूल्य और महत्व दे दिया है। चाय पीने को ही ध्यान की प्रक्रिया बना ली है। चाय बनाना; चाय भेंट करना; चाय पीना; इसमें घंटों लग जाते हैं। और इसको इतने बोधपूर्वक किया जाता है कि चाय की प्रक्रिया से ही ध्यान का काम हो जाता है।

टी सेरेमनी कहते हैं जापान में तो वे--चाय का उत्सव। जिनके पास कोई सुविधा है...। जैसे हिंदुस्तान में लोग घर में छोटा सा मंदिर बना लेते हैं, ऐसे जापान में जिनके घर में थोड़ी सुविधा है, उनका चाय-घर अलग होता है: बगीचे के एक कोने में; दूर एकांत में; जहां लोग ऐसे जाते जैसे मंदिर में जा रहे हैं। क्योंकि ध्यान--जागरण।

और शराब की खोज की कथा है कि एक ईसाई फकीर ने की; डायोनिसस उसका नाम था। यह बात भी ठीक है, क्योंकि ईसाइयत भक्ति का मार्ग है। ये प्रतीक बड़े ठीक हैं।

भक्ति के मार्ग पर--विस्मरण; ध्यान के मार्ग पर--होश। भक्ति के मार्ग पर डूबना है; ध्यान के मार्ग जागना है। अंतिम परिणाम एक ही होता है। अगर तुम ध्यान के मार्ग पर चल-चल कर जागते रहे, जागते रहे, तो एक तरफ तुम जाओगे, और एक तरफ तुम पाओगे--खोते जा रहे हो। तुम्हारा ध्यान जागने पर रहेगा और खोने की घटना छाया की तरह घटेगी।

भक्ति के मार्ग पर तुम खोते जाओगे, और तुम पाओगे: एक तरफ जागरण आ रहा है। एक तरफ खोते जा रहे हो, एक तरफ जागरण आ रहा है। खोना तुम्हारी प्रक्रिया होगी; जागना परिणाम होगा। अंत में खोना और जागना एक साथ घट जाते हैं, जैसे कि एक ही सिक्के के दो पहलू।

भक्त का एक तरफ ध्यान रहता है; ध्यानी का दूसरी तरफ ध्यान रहता है। लेकिन सिक्का तो वही है।

तो चूंकि मैं मलूक की बात रहा हूं, इसलिए शराब का प्रतीक चुना है। उसे समझना।

दूसरा प्रश्न: ऐसा लगता है कि जहां प्राचीन युग के भारतीय संत और प्रज्ञापुरुष श्री संपन्न और श्रेष्ठ कुलों से आया किए हैं, वहां मध्ययुगीन संत प्रायः दरिद्र और पिछड़े वर्गों में ही पैदा हुए हैं। क्या इस ऐतिहासिक तथ्य पर कुछ प्रकाश डालने की अनुकंपा करेंगे?

ऐसा हुआ। होने का कारण भारत की वर्ण व्यवस्था थी। भारत वर्ण व्यवस्था से पीड़ित रहा है। अभी भी छुटकारा नहीं हुआ है। इसलिए भारत में जो पहले संतों की परंपरा हुई, वह ब्राह्मणों की थी। ऋषि-मुनि--वेद और उपनिषद के--ब्राह्मण हैं। श्रेष्ठतम वर्ग ही धर्म के जगत में प्रवेश करने के योग्य था और पात्र था--ऐसी मान्यता थी। इस मान्यता के कारण हजारों, लाखों, करोड़ों लोग परमात्मा से संबंधित होने से वंचित रह गये।

जो भी मनुष्य है, वह परमात्मा को पाने के लिए योग्य है। मनुष्य होने में ही वह योग्यता मिल गई है। अब मनुष्य के अतिरिक्त और किसी योग्यता की जरूरत नहीं। ब्राह्मण होना आवश्यक नहीं है।

लेकिन इस देश की जो धारणा थी, वह यह थी--कि ब्राह्मण ही इतना शुद्ध है कि परमात्मा की तरफ जा सके। इसलिए उसको ब्राह्मण कहते हैं। ब्राह्मण यानी जो ब्रह्म की तरफ जा सके। बाकी क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को तो काट दिया। ब्रह्म से उनको कोई संबंध नहीं है।

लेकिन यह बात ज्यादा दिन नहीं चल सकती थी। स्वभावतः पहली पहली बगावत हुई--बुद्ध और महावीर के समय में। बगावत क्षत्रियों से आई। वे नंबर दो थे। बगावत हमेशा नंबर दो हो आती है।

ध्यान रखना: लोग सोचते हैं कि बगावत नीचे आती है। बगावत नीचे से कभी नहीं आती। बगावत नंबर दो से आती है। इंदिरा को हटाना हो, तो मोरारजी देसाई हटाते हैं। वे नंबर दो हैं। बगावत हमेशा नंबर दो से आती है। आखिर में जो खड़ा है, उसको तो इतनी आशा भी नहीं होती, भरोसा भी नहीं होता। कि वह हटा पायेगा। वह जो नंबर दो है, वही खतरनाक सिद्ध होता है, क्योंकि नंबर दो को ऐसा लगता है कि बस, एक ही कदम की बात है कि मैं नंबर एक हो सकता हूं। ज्यादा दूर नहीं है मंजिल; इतने करीब है कि अगर मैं चूका, तो मैं ही जिम्मेवार हूं, कोई और जिम्मेवार नहीं है।

इसलिए सबसे बड़ा खतरा, जो पास होते हैं, उनसे होता है; जो दूर होते हैं, उनसे नहीं होता।

ब्राह्मण के निकटतम थे क्षत्रिय। यह नंबर दो का वर्ग था। और क्षत्रियों को लगने लगा--कि यह भी क्या बात है!--कि ब्राह्मण को पा सके? इसके प्रति बगावत करी जरूरी थी।

ब्रह्म उन दिनों में सबसे ऊंची बात थी, जो पाने योग्य थी। और सब तो गौण है। तो क्षत्रियों ने बगावत की: जैन धर्म और बौद्ध धर्म उस बगावत के परिणाम हैं। जैनों के चौबीसों तीर्थंकर क्षत्रिय हैं। उनमें एक भी ब्राह्मण नहीं है। बुद्ध क्षत्रिय हैं; और बुद्ध ने अपने चौबीस जन्मों की जो कथाएं कही हैं, उनमें हर बार वे क्षत्रिय हैं। वे किसी भी बार ब्राह्मण ही हैं।

यह बड़ी बगावत थी। इसलिए हिंदू धर्म जितना नाराज जैनों और बौद्धों पर रहा है, उतना नाराज किसी से नहीं है। हो भी नहीं सकता। और एक ऐसा वक्त आया कि क्षत्रियों ने बिलकुल ही ब्राह्मण-केंद्रित धर्म को बुरी तरह क्षत-विक्षत कर डाला।

यह बगावत क्षत्रियों से आई। लेकिन जब क्षत्रिय ज्ञानी होने लगे..। पहले तो ब्राह्मणों ने उसे बिलकुल स्वीकार नहीं किया। महावीर के नाम का भी उल्लेख नहीं किया। महावीर के नाम का भी उल्लेख नहीं किया। महावीर के नाम की भी उल्लेख नहीं किया है--ब्राह्मण शास्त्रों में। कैसे उल्लेख करो! बुद्ध का उल्लेख भी किया है, तो बड़ी चालबाजी से किया है, बड़ी कूटनीति से किया है। बुद्ध का उल्लेख करना पड़ा। क्योंकि बुद्ध का इतना प्रभाव पड़ा कि उस प्रभाव को एकदम अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। महावीर का तो प्रभाव इतना बड़ा नहीं था। छोटा दायरा था महावीर का। उनकी प्रक्रिया ऐसी थी कि बहुत भीड़ उसमें जा नहीं

सकती थी; कठोर थी। बुद्ध की प्रक्रिया सुगम थी, उसमें करोड़ों लोग जा सकते थे। तो करोड़ों लोग गये। यह बात इतनी बड़ी थी कि इनकार तो की नहीं जा सकती थी। मगर बड़ी तरकीब से इनकार की गई।

तो ब्राह्मणों ने एक कथा गढ़ी--कि भगवान ने जब सृष्टि रची तो उसने नरक बनाया, स्वर्ग बनाया। नरक पर शैतान को बिठाया--पहरेदार की तरह। लेकिन हजारों करोड़ों साल बीत गये और नरक में कोई आये ही न! क्योंकि कोई पाप ही न करे: तो शैतान गया भगवान के चरणों में और उसने कहा: मुझे काहे के लिए वहां बिठा रखा है! न कोई कभी आता, न कभी कोई जाता। बंद करो यह दफ्तर। मुझे छुटकारा करो। मैं नाहक बंधा हूं। कोई काम भी नहीं है, कोई धाम भी नहीं है।

तो परमात्मा ने कहा: ठीक, तेरे लिए उपाय करता हूं। तो परमात्मा ने बुद्धावतार लिया! और बुद्धावतार ले कर लोगों को भ्रष्ट किया। जब लोग भ्रष्ट हो गये, नरक जाने लगे। तब से नरक में ऐसी भीड़ है कि क्यू लगा है! जगह नहीं मिलती स्वर्ग की तरफ तो लोग जाते ही नहीं।

तो बड़ी होशियारी की बात है। बुद्ध को दसवां अवतार स्वीकार कर लिया और साथ में एक तरकीब लगा दी कि बुद्ध की मानना मत। माना कि अवतार भगवान के हैं, लेकिन भ्रष्ट करने आये हैं।

देखते हैं: राजनीति कैसे चाल चल सकती है! बुद्ध के प्रति सम्मान भी दिखा दिया। दिखाना ही पड़ा, क्योंकि इतने करोड़ों लोगों ने जिसे पूजा, उसके प्रति अगर सम्मान न दिखाये, तो भी खतरा है। लेकिन सम्मान हार्दिक तो नहीं हो सकता। क्योंकि ब्राह्मण बड़े क्रुद्ध थे। और उन्होंने शंकराचार्य के समय में बदला लिया। बुद्ध धर्म को उखाड़ फेंक।

यह तो बात ही ब्राह्मणों की कल्पना के बाहर थी कि कोई क्षत्रिय--और घोषणा करे कि हम अवतार हैं; घोषणा करे कि तीर्थंकर हैं! तीर्थंकर--और अवतार--और परमात्मा के वंशज और हकदार तो केवल ब्राह्मण थे। लेकिन जब एक दफा क्षत्रिय चढ़ गये सीढ़ी, तो नंबर दो वैश्य थे। बगावत वहां से शुरू हो गई। उन्होंने कहा: जब क्षत्रिय जा सकता है, तो हमारा क्या कसूर है कि हम नहीं जा सकते!

तो दूसरी क्रांति घटित हुई वैश्यों की तरफ से। तो वैश्य संत पैदा हुए, वणिक संत पैदा हुए। जब एक दफा वैश्य संत होने लगे, तो फिर शूद्र भी करीब आ गया पद के। तो फिर शूद्र संत हुए। फिर रैदास, और गोरा--और शूद्र संत हुए।

मध्ययुग में जो संत हुए, वे वैश्य और शूद्र थे। पहले वैश्य--फिर शूद्र। मगर यह होना जरूरी था। इस तरह मनुष्य ने अपने स्वभाव की उदघोषणा की।

परमात्मा सभी का अधिकार है--जन्मसिद्ध अधिकार है। न तो ब्राह्मण का अधिकार है, न क्षत्रिय का अधिकार है--न वैश्य का, न शूद्र का। सभी का अधिकार है।

परमात्मा के ऊपर किसी का दावा नहीं हो सकता। परमात्मा किसी की मालकियत नहीं है; स्वामित्व नहीं है। इसलिए ऐसा हुआ।

लेकिन अभी भी पुराने ढांचे एकदम छूट तो नहीं गये हैं इसलिए ब्राह्मण कबीर को संत मानने में झिझकता है। इसलिए ब्राह्मण नानक को अवतार मानने में झिझकता है। सिक्ख धर्म का अलग टूट जाना पड़ा। क्योंकि नानक को स्वीकार नहीं किया जा सकता। और फिर रैदास चमार का तो बिलकुल स्वीकार नहीं किया जा सकता।

एक बार मुझे एक नगर में चमारों ने रैदास पर बोलने बुलाया। मैं जिनके घर में ठहरा था, उन्होंने मुझे बहुत समझाया कि वहां जाओ ही मत। कहां चमारों में बोलने जा रहे हैं! वे बड़ धनपति थे। पर मैंने कहा कि उन्होंने बुलाया है, तो मैं जा रहा हूं। वे सब जगह मेरे साथ जाते थे। वे सांझ कहने लगे कि आज जरा काम है। मैंने कहा, मुझे पता है कि का बिलकुल नहीं है। तुम चमारों में जाने में डर रहे हो।

उनकी पत्नी मेरे पीछे लगी फिरती थी, जहां भी मैं जाता था। उस दिन वह भी...। उसने कहा कि नहीं, आप क्षमा करें। ड्राइव्हर के साथ मुझे अकेला भेज दिया। वहां भी मैं चकित हुआ देख कर कि चमारों के अतिरिक्त वहां एक आदमी सुनने नहीं आया था। दस बीस चमार थे। उसी नगर में मैं बोलता था; तो बीस हजार लोग, पच्चीस हजार लोग सुनते थे। एक दिन पहले ही पच्चीस हजार लोगों ने सुना था और दूसरे दिन पच्चीस लोग भी नहीं थे!

अभी भी हमारी धारणाएं तो वही हैं। चमारों की सभा में कौन जाए! और चमारों के साथ कौन बैठे! और यह तो हम मान ही नहीं सकते कि रैदास को भी परमात्मा उपलब्ध हो गया है।

परमात्मा पर हमने दावे कर रखे हैं।

मध्ययुग में बड़ी से बड़ी क्रांति हुई भारत में। निम्न वर्गों से घोषणा आई इस बात की कि कोई भी परमात्मा हो सकता है। तुम क्या करते हो, तुम किसी घर में पैदा हुए हो, तुम्हारा रंग-रूट कैसा है, तुम्हारे पास धन, पद, प्रतिष्ठा है या नहीं, इससे परमात्मा का कोई लेना-देना नहीं है। तुम अगर प्यास से भरे हो और आतुर होकर पुकारोगे, तो परमात्मा सुनेगा। आतुरता सुनी जाती है। प्यास सुनी जाती है। हृदय की आवाज सुनी जाती है।

तीसरा प्रश्नः अपना सा दुःख सबका मानैं, ताहि मिलैं अविनासी। अविनासी से मिलने की बाबा मलूकदास की यह शर्त तो वास्तव में असंभावना जैसी लगती है। कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट, कोई बुद्ध और कोई रजनीश इस कसौटी पर भला खरे उतर जाएं, लेकिन क्या यह सचमुच संभव है कि कोई साधारण व्यक्ति सब पराये दुःख को अपना समझ ले?

पहली बातः मलूक के वचन का अर्थ ठीक से समझे नहीं। अपना सा दुःख सब का मानै, ताहि मिलैं अविनासी, इसके दो अर्थ हो सकते हैं। एक तो सामान्य अर्थ है कि दूसरे के दुःख को अपना दुःख मानो। यही सीधा-सीधा अर्थ है। अगर इतना ही अर्थ हो इस वचन में, तो प्रश्न बिलकुल ठीक हैः यह असंभव है। कैसे दूसरे के दुःख को अपना दुःख मानोगे?

दूसरे के सिर में दर्द होता है, इसे तुम अपने सिर का दर्द कैसे मानोगे? और तुम्हारे पैर में बिवाई न पड़ी हो, तो दूसरे के पैर में पड़ी बिवाई की पीड़ा का तुमको पता ही नहीं हो

सकता। कांटा तुम्हें गड़े, तो तुम्हें पता चलता है; दूसरों को गड़े, तो दूसरे को पता चलता है।

दूसरे के दुःख को अपना कैसे मानोगे? और अगर मान लिया जबरदस्ती, तो उसको कोई परिणाम न होगे। ऐसे कहीं अविनाशी मिला है?

यह अर्थ अगर होता, तो बात असंभव हो जाती। फिर क्या अर्थ हो सकता है? अर्थ है...एक घटना से समझो।

रामकृष्ण दक्षिणेश्वर में गंगा पार कर रहे हैं--एक छोटी सी नाव पर पसार, उस तरफ जा रहे हैं। साथ में दो-चार भक्त हैं और माझी है। अचानक बीच मझधार में रामकृष्ण चिल्लाने लगे: मुझे मारो मत। मुझे क्यों मारते हैं? भक्तों ने कहा कि पागल तो नहीं हो गये! कौन मार रहा है! वे तो चौंक कर खड़े हो गये। उन्होंने कहा, परमहंसदेव, आप कहते क्या हैं! हम--आपको मारेंगे! कौन मार सकता है आपको? कौन मार रहा है आपको?

लेकिन रामकृष्ण की आंखों से आंसू बहे जाते हैं। और रामकृष्ण ने अपनी चादर उघाड़ कर बताई कि मेरी पीट तो देखो। और वहां कोड़े के निशान हैं! लहूलुहान! घबड़ा गये भक्त भी--कि किसने मारा है! लेकिन कोई है भी नहीं यहां मारने वाला; हम ही चार भक्त हैं। और सब एक दूसरे को देख रहे हैं कि कौन मारेगा।

रामकृष्ण ने कहा, उस तरफ देखो। और उस तरफ घाट पर कुछ आदमी एक आदमी को मार रहे हैं। नाव लगी; भक्त उतरे; जाकर उस आदमी के पास पहुंचे जिसको मारा गया है; उसकी कमीज उठाई। ठीक वैसे ही दो कोड़े के निशान उसकी पीठ पर बने हैं। रामकृष्ण की चादर उठाई, बड़े हैरान हो गये। कोड़े के निशान बिलकुल एक जैसे हैं। हूबहू। एक दूसरे कापी हैं।

इसका क्या कहेंगे।

अंग्रेजी में दो शब्द हैं: सिम्पैथी और एम्पैथी। सिम्पैथी का अर्थ होता है--सहानुभूति। मनोविज्ञान इस पर बड़ा विचार करता है। सहानुभूति का तो अर्थ होता है: जब तुम दूसरे का दुःख देखते हो, अनुमान करते हो कि इसके सिर में दर्द है। माथे पर पड़ी सिकुड़ने देखते हो; आंखों में आई उदासी देखते हो; चित्त का विषाद देखते हो, अनुमान करते हो कि इसके सिर में दर्द है। इसके चेहरे का भाव देख कर तुम अनुमान करते हो कि ऐसा भाव जब मुझे होता है ,तब मेरे भीतर भी सिर में दर्द होता है। मगर हो सकता है कि यह आदमी अभिनय कर रहा हो।

आखिर अभिनेता करते ही क्या हैं? सिर में दर्द नहीं होता है और सिर में दर्द दिखा देते हैं। हृदय में प्रेम नहीं होता और प्रेम दिखा देते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन नाटक देखने गया था। और उसकी पत्नी उसे बार-बार कोहनी मारने लगी, और कहने लगी, देखो! क्योंकि वह जो नायिका है, उसको नायक उतना प्रेम करता है! सदा घुटनों पर हाजिर है। देवी, देवी पुकारता है। तो स्वभावतः पत्नी टेहनी मारने लगी कि जरा देखो, इसको कहते हैं--प्रेम। तुमको ऐसी सूझ कभी नहीं आती!

नसरुद्दीन ने कहा, चुप भी रह। तुझको मालूम है, उसको इसके कितने पैसे मिलते हैं? हमसे मुफ्त में ही चलवा रही है काम!

लेकिन, पत्नी ने कहा, तुमको मालूम होना चाहिए कि वे वस्तुतः पति-पत्नी भी हैं।

नसरुद्दीन ने कहा, हाय राम! अगर ये वस्तुतः भी पति-पत्नी हैं, तब तो निश्चित ही यह अभिनेता मजबूत है; गहरा--बड़ा अभिनेता है। असली पति-पत्नी हैं अगर ये और इतना प्रेत दिखला रहा है...। क्योंकि असली पति-पत्नी के बीच कहां प्रेम! और किसी के बीच हो जाए; असली पति-पत्नी के बीच कहां प्रेम?

तो नसरुद्दीन ने कहा, निश्चित ही यह अभिनेता बड़ा है। इसके अभिनय की कुशलता बड़ी गहरी है। हृदय में बिलकुल नहीं है और दिखला रहा है! और इतनी कुशलता से दिखला रहा है कि जंच रहा है कि होना चाहिए।

अभिनय का अर्थ ही यही है--जो नहीं है, उसे दिखला देना।

तो यह हो सकता है कि दूसरे आदमी के सिर दर्द हो ही ना। वह सिर्फ अभिनय कर रहा हो। पेट में दर्द हो ही न; सिर्फ मुद्रा बना रहा हो--पेट के दर्द की। मगर तुम्हारे पास एक ही उपाय है अनुमान करने का कि तुमको भी अगर ऐसी ही मुद्रा बनी थी, जब पेट में दर्द हुआ था, तो तुम सोचोगे: इसके भी पेट में दर्द है। यह अनुमान है। इस अनुमान में, अगर तुम्हारा लगाव है इस आदमी से, तो सहानुभूति होगी। अगर तुम्हारा बेटा है, तो सहानुभूति होगी। तुम्हारा पिता है, तो सहानुभूति होगी। तुम्हारी मां है, तो सहानुभूति होगी। लेकिन यह सहानुभूति है। यह अनुमान है।

समानुभूति--ऐम्पैथी--बड़ी और बात है। समानुभूति का अर्थ है: जो इसे हो रहा, ठीक ऐसा तुम्हें हो जाए।

यह कब होता है? यह तब होता है, जब तुम्हें मैं तू का भाव नहीं रह जाता। जब अहंकार की बीच में दीवाल नहीं रह जाती।

रामकृष्ण को यह जो घटना घटी, इसीलिए घटी। बीच में कोई दीवाल ही नहीं है। जब उस आदमी को मारा गया, तो रामकृष्ण को ऐसा नहीं हुआ कि क्यों उस बेचारे को मारते हो। वे चिल्लाये: क्यों मुझे मारते हो? यह फर्क समझना। यह समानुभूति है।

इस सहानुभूति पर बहुत प्रयोग किये गये हैं। तुमने शायद कुछ घटनाएं सुनी हों; जिनको ईसाई फकीर स्टिगमैटा कहते हैं। ऐसा सदियों से होता है और अभी भी ऐसे लोग मौजूद हैं, जिनको यह घटना घटती है।

बवेरिया में एक महिला अभी भी जिंदा है, जिसको स्टिगमैटा उभरते हैं। स्टिगमैटा का अर्थ होता है: जिस तरह जीसस को सूली पर लगाया गया और उनके हाथ में खीले ठोक गये, पैर में खीले ठोंक गये, और उन्हें सूली पर लटकाया गया; कभी-कभी किन्हीं ईसा के भक्तों को उसी तरह के घाव अनायास हाथ और पैर में उभर आते हैं और खून बहने लगता है। घाव बनाने नहीं पड़ते, उभर आते हैं; हजारों के सामने उभर आते हैं। खून बहने लगता है। और फिर घाव खो जाते हैं; खून बंद हो जाता जै।

बवेरिया में एक महिला है--थेरेसा न्यूमॅन। आज तीस साल से उसका मध्ययन हो रहा है। हर शुक्रवार को, जिस दिन जीसस को सूली लगी, उसके हाथ में और पैर में घाव उभर आते हैं और खून बहने लगता है। इतनी तीस सालों में इतना खून बहा है, लेकिन जरा भी वह महिला कमजोर नहीं हुई। और बड़ा आश्चर्य तो यह है कि सब तरह के परीक्षण कर लिए गए हैं, डाक्टरों ने सब तरह के परीक्षण किए हैं, कि कोई धोखे-घड़ी न हो जाए। ठीक चौबीस घंटे खून बहता रहता है और चौबीस घंटे के बाद घाव ऐसे भर जाते हैं, ऐसे तिरोहित हो जाते हैं, जैसे हुए ही न हों! दाग भी नहीं छूट जाता। यह एम्पैथी है।

जीसस के साथ इतना तादात्म्य, जीसस के साथ ऐसी भाव-विभोरता--कि जीसस अलग न रहे--मैं जीसस हूं--यह भाव अगर बहुत प्रगाढ़ हो जाए, यह इतना प्रगाढ़ हो जाए, कि बीच में कोई दीवाल न रह जाए; दीवाल क्या बीच में कोई परदा भी न रह जाए, कोई चिलमन भी न रह जाए, तो परिणाम हो जायेगा।

आदमी के मन की बड़ी क्षमता है। तुम वही हो जाते हो, जैसा सोचते हो। तुम्हारे जीवन में वही घटने लगता है, जो तुम्हारे विचार में बीज की तरह पड़ जाता है।

अब अगर किसी को ऐसा प्रगाढ़ भाव हो जाए कि मैं जीसस के साथ एक हूं, तो कोई आश्चर्य नहीं कि इसके शरीर की वही दशा हो जाए, तो जीसस के शरीर की दशा हुई थी। दो हजार साल बाद भी...। इससे जीवन का कुछ लेना-देना नहीं है। इसी स्त्री की भाव-दशा है। इसको कहते हैं: समानुभूति।

मलूक का यह वचन: अपना सा दुःख सबका मानै, ताहि मिलैं अविनासी--सहानुभूति का ही सूत्र नहीं है; समानुभूति का भी सूत्र है। मलूक यह कह रहे हैं कि तुम दूसरे दो नहीं हैं। यहां एक ही विराजा है। मेरे भीतर जो बोल रहा है और तुम्हारे भीतर जो सुन रहा है, ये दो नहीं हैं। इधर वही बोल रहा है, उधर वही सुन रहा है। यह सारा वार्तालाप--एकालाप है। परमात्मा ही परमात्मा से बोल रहा है। वही वृक्ष में हरा हुआ है; वही फूल में लाल हुआ है; वही पक्षी की तरह आ कर गीत गुनगुना रहा है।

यह सारा जगत एक है; अखंड रूप से एक है। इस अखंड के बोध की तरफ इशारा कर रहे हैं मलूकदास--ताहि मिलैं अविनासी। जिसको इस अखंड की प्रतीति होने लगेगी कि हम एक ही हैं यहां दूसरा कोई है ही नहीं; पराया है ही नहीं; पराया भ्रांति है। न तो कोई स्व है न कोई पर है। उस एक की ही जगह-जगह अनेक-अनेक रूपों में अभिव्यक्ति, अभिव्यंजना हुई है। वह एक ही बहुत-बहुत रूपों में आया है। ये सब रूप उसके हैं; वह बहुरूपिया है।

अपना सा दुख सबका जानै, ताहि मिलैं अविनासी, उसे मिल जायेगा अविनासी। इसमें खयाल रखना कि वे यह नहीं कह रहे हैं कि तुम चेष्टा कर करके दूसरे के दुःख को अपना मानने लगो। वे यह कह रहे हैं कि धीरे-धीरे तुम स्व और पर की दीवालें गिराओ, ताकि जो दूसरे के भीतर है और तुम्हारे भीतर है, वह अलग-अलग न मालूम पड़े।

ये सीमाएं थोथी हैं। ये सीमाएं ऐसी हैं, जैसे हम अपनी जमीन के आसपास एक बागुड़ लगा देते हैं। कहते हैं: यह मेरी जमीन; वह जमीन पड़ोसी की। जमी एक है। तुम्हारे बागुड़ लगाने से जमीन कटती नहीं, अलग नहीं होती।

हिंदुस्तानी की सीमा खींच देते हैं नक्शे पर; कहते हैं: यह हिंदुस्तान, यह पाकिस्तान। एक दिन पहले यह हिंदुस्तान था पूरा, एक दिन बाद हिंदुस्तान पाकिस्तान अलग हो जाते हैं। पंद्रह अगस्त को सीमा खिंच जाती है। जमीन वही की वहीं है; जमीन कटती नहीं, सिर्फ नक्शे पर सीमा हो जाती है। मगर फर्क समझते हो! बड़ा फर्क हो गया। भेद पैदा हो गया। अब अगर पाकिस्तान में कुछ गड़बड़ हो जो, तो तुम प्रसन्न होते हो। पाकिस्तान में दुर्दिन आ जाए, तो तुम प्रसन्न होते हो। भारत में दुर्दिन हो जाए, तो पाकिस्तान में लोग प्रसन्न होते हैं!

पाकिस्तान से बंगलादेश टूट गया, तो भारत बड़ा आह्लादित था। ये सीमाओं के कारण...अन्यथा सब वही का वही है। न कुछ टूटता है, न कुछ जुड़ा है। मगर आदमी बड़े खेल बना लेता है। आदमी खेलने में बड़ा कुशल है और धीरे-धीरे भूल ही जाता है कि खेल "खेल' है।

तुमने देखा न: शतरंज खेलते-खेलते तलवारें खिंच जाती हैं। अब शतरंज में कुछ भी नहीं है। हाथी घोड़े भी झूठे हैं। मगर शतरंज पर भी प्राण दांव पर लग जाते हैं। शतरंज भी तुम ऐसे खेलते हो, जैसे जीवन दांव पर लगा है। शतरंज में दुश्मनियां हो गई हैं; पीढ़ी-दर-पीढ़ी दुश्मनी चल गई है। और तुम सोचते नहीं कि लकड़ी के खिलौने बना कर रख लिये हैं, या चलो पैसेवाले हुए, तो हाथीदांत के हैं। पर सब खेल-खिलौने हैं।

जैसे समाज में तुमने रेखाएं खींच रखी हैं: ये हिंदू, ये मुसलमान; ये ब्राह्मण ये शूद्र--रेखा पर रेखाएं खींचते चले जाते हो और तब सिकुड़ कर रह जाते हो--छोटे से--मैं। यह मैं सिर्फ रेखा के कारण मालूम पड़ रहा है। रेखा को हटा दो, तो तुम एक तरंग हो--इस विराट सागर की।

अपना सा दुःख सबका मानै, ताहि मिलैं अविनासी--इसका अर्थ है--गहरा अर्थ--कि जो मैं तू के भाव को भूल जाए; जिसे मैं में तू दिखाई पड़े, तू में मैं दिखाई पड़े, उसे अविनाशी मिल जाता है। मिल ही गया। फिर तुम्हें इसमें कुछ असंभावना न दिखाई पड़ेगी।

और जिस दिन तुम दूसरों के दुखों को अपना मान लोगे, उस दिन दूसरों के सुख भी तुम्हारे अपने हो जायेंगे; उस दिन दूसरों का प्रेम तुम्हारा हो जायेगा; दूसरों का आनंद भी तुम्हारा हो जायेगा। तुम नाहक कृपण बने बैठे हो--छोटी-सी सीमा में बंद; सारा विराट का खेल तुम्हारा हो सकता है।

स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे: एक आंगन छोड़ दिया, तो सारा विश्व मेरा हुआ।

सीमा छोड़ो; असीम के साथ नाता जोड़ो। जहां-जहां सीमा दिखे, वहां-वहां समझ लेना कि कुछ भ्रांति हो रही है। क्योंकि यहां कोई भी सीमा नहीं है। सीमा है ही नहीं। हम यहां बैठे हैं

इतने लोग; तुमने श्वास ली, तब तुम्हारी हो गई; तुम कहते हो: मेरी श्वास। क्षण भर पहले तुम्हारा पड़ोसी ले रहा था उसी श्वास को। क्षण भर बाद फिर कोई और लेगा।

तुम्हारा क्या है? श्वास भी अपनी नहीं है। श्वास तक अपनी नहीं! मेरी श्वास तुम्हारे भीतर थी; अब मेरे फेफड़ों में है। घड़ी भर बाद--घड़ी क्या, क्षण भर बाद फिर किसी और के फेफड़ों में होगी।

जिस देह को तुम अपना मान रहे हो, वह कल मिट्टी की तरह पड़ी थी। कल फिर मिट्टी की तरह पड़ जायेगी। अभी जो फल वृक्ष पर लगा है, नासपाती लगी है, अभी वृक्ष की है; तुम उसे खा लोगे; चौबीस घंटे बाद तुम्हारी हो जायेगी। पच जायेगी; मांस-मज्जा बनने लगेगी: तुम्हारी हो गई; अब तुम हो गई! अभी चौबीस घंटे पहले नासपाती तुम्हारी न थी। फिर एक दिन तुम मर जाओगे; जमीन में तुम्हारी कब्र बन जायेगी; और उस कब्र पर नासपाती का पेड़ बनेगा! और फिर तुम नासपाती बनोगे और तुम्हारे बेटे-पोते फिर उस नासपाती को खायेंगे।

कहां सीमा है? सब संयुक्त है। अभी तुमने जो नासपती खाई है, कौन जाने, तुम्हारे दादा-परदादा की हो!

हम एक दूसरे को खा रहे हैं; हम एक दूसरे को पचा रहे हैं; हम एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। क्षण भर पहले जो विचार मेरे भीतर था, मैंने तुमसे कह दिया, तुम्हारा हो गया। अब मेरी उस पर कोई मालकियत न रही। तुम मालिक हो गये। तुम किसी और को कह दोगे, वह मालिक हो जायेगा। ऐसे विचारों का संतरण चलता है। ऐसे प्राणों को भी संतरण चलता है; ऐसे ही देह का भी संतरण चलता है। हम सब यहां संयुक्त हैं।

तुम जरा सोचो तो: अगर तुम बिलकुल अकेले छोड़ दिये जाओ, तुम बच जाओगे--एक क्षण भी बच सकोगे? सूरज न निकले, ठंडे हो जाओगे। हवा न आये, गला रुंध जायेगा। भोजन न मिले, मरने लगोगे। पानी न मिले--गये। जुड़े हो।

नदियों में तुम्हारा प्राण बह रहा है, क्योंकि उनसे ही तुम्हारी प्यास तृप्त होती है। हवाओं में तुम्हारा प्राण बह रहा है, क्योंकि उससे ही तुम्हें जीवन मिलता है। सूरज की किरणों में तुम्हारा प्राण बह रहा है, क्योंकि उससे ही तुम्हारे प्राण संचालित होते हैं। सब जुड़ा है। जो देखते हैं ठीक से, वे कहते हैं: सारा अस्तित्व जुड़ा है। एक घास के पत्ते को हिलाओ, और दूर के चांदत्तारे हिल जाते हैं। जब जुड़ा है।

ऐसा ही समझो, जैसे मकड़ी का जाला है। उपनिषद के ऋषियों ने कहा है: संसार मकड़ी का जाला है। और बड़ी ठीक प्रतीक चुना है। क्योंकि मकड़ी अपने जाले को अपने भीतर से ही निकालती और फैलाती है। तो परमात्मा ने संसार को अपने भीतर से निकाला और संसार हुआ; जाले की तरह है। परमात्मा बड़ी मकड़ी है। और अपना जाला बुन देता है।

फिर तुमने देखा: मकड़ी के जाले को एक तरफ से पकड़ कर जरा सा हिलाओ, पूरा जाला हिल जाता है। दूर तक के छोर हिल जाते हैं। ऐसा ही अस्तित्व है।

तुमने अगर किसी को दुःख दिया, तो तुम हैरान होओगे कि वह दुःख तुम तक ही लौट आयेगा, क्योंकि तुम भी उसी जाले पर बैठे हो। इसलिए कर्म के सिद्धांत की बड़ी अर्थवत्ता है। दूसरे को दुःख मत देना, क्योंकि वह अनजाने अपने को ही दुःख देने की व्यवस्था है। और दूसरे के लिए गड्ढा मत खोदना, क्योंकि तुम ही उस गड्ढे में किसी दिन गिरोगे। दूसरा गिरा, तो भी तुम ही गिरे।

लेकिन हम बच्चों जैसे हैं। छोटे बच्चे को देखा, अगर उसके हाथ से कुछ भूल हो जाती है, तो उस हाथ को दूसरे हाथ से एक चांटा लगा देता है। खुद से कोई भूल हो जाती है, तो खुद को एक चांटा मार लेता है। खुद का ही हाथ है, खुद का ही गाल है। लेकिन सजा दे देता है।

हम भी जब दूसरे को सजा दे रहे हैं, तो अपने ही गाल पर चांटा मार रहे हैं। दूसरा यहां कोई है नहीं।

इस ऐक्य को देख लेना, इस अखंडता को देख लेना, इसको पहचानना; इसको धीरे-धीरे जीना; तो अविनाशी मिल जाता है। असंभव नहीं है।

हां, अगर तुमने सोचा कि ऐसा मान कर चलेंगे, तो भूल ही जायेगी। धर्म के जगत में जो बड़ी भूल होती हैं, वह यही है।

महावीर को दिखाई पड़ा: सब एक है, उस सब एक है से अहिंसा पैदा हुई अहिंसा का अर्थ है: अब किसकी हिंसा करना! कैसे करना? यहां दूसरा कोई है नहीं, मैं ही हूं। तो सब हिंसा आत्म-हिंसा ही होगी। आत्म-हिंसा कौन करना चाहता है?

तो महावीर कदम फूंक-फूंक कर रखने लगे कि कोई चींटी न दब जाए। कि चींटी को महावीर अपना ही हिस्सा मानने लगे। राम करवट न लेते, कि कहीं रात अंधेरे में करवट ली, कोई कीड़ा-मकोड़ा नीचे पड़ा हो, दब जाये! मांसाहार छोड़ दिया। क्षत्रिय घर से आये थे, तो मांसाहार करते रहे होंगे। मांसाहार छोड़ दिया। मांसाहार तो छोड़ा ही छोड़ा, कच्चे फल भी नहीं लेते थे। जो पका फल अपने से गिर जाए वृक्ष से, वही लेते थे। क्योंकि कच्चे फल को तोड़ने में वृक्ष को थोड़ी पीड़ा तो होगी। अभी वृक्ष देने को राजी नहीं था, यही तो कच्चे का मतलब होता है। अभी झपटना पड़ेगा; तो हिंसा होगी। तो जरा प्रतीक्षा करो; फल तो अपने से ही पक जाते हैं; इतनी जल्दी क्या है! पक कर गिर जाते हैं; वृक्ष खुद ही दे देता है, तब तुम ले लेना।

यह अहिंसा अखंड--ऐक्य भाव से पैदा हुई। फिर जैन भी अहिंसा, करता है; वह भी पानी छान कर पीता है, पैर फूंक कर रखता है। लेकिन उसकी अहिंसा में अखंड का भाव नहीं है। उसकी अहिंसा अहिंसा नहीं है। वह तो डर के मारे कर रहा है--कि कही यह चींटी मर न जाए, नहीं तो नरक में सड़ना पड़ेगा। यह भय है; इसमें कोई बाध नहीं है। अगर उसको पक्का हो जाये कि नियम बदल गये हैं और अब चींटियों को मारने से कोई नरक में नहीं सड़ता है, तो वह सब फिक्र छोड़ देगा। चींटी से कुछ लेना-देना नहीं है; चींटी से कुछ मतलब नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है। चींटी का दुःख अपना दुःख है--ऐसा उसे दिखा भी

नहीं है। लेकिन चींटी मारने से कहीं मुझे दुःख न झेलना पड़े, बाद में, उस वजह से--परिणाम की फिक्र में वह डरा हुआ है।

इसलिए अकसर ऐसा हो जाता है, कि जैन युवक जब पश्चिम में जाते हैं, वे सब मांसाहार इत्यादि करने लगते हैं। उसका कारण है। कम से कम अंडे तो खाने ही लगते हैं। देखते हैं कि इतने लोग खा रहे हैं, इतने लोग पी रहे हैं, ये सब नरक जायेंगे? सब बात जंचती नहीं। इतने सब नरक अगर जा रहे हैं, तो कोई हरजा नहीं; हम भी चले जायेंगे इस भीड़-भाड़ में।

वह जो श्रद्धा यहां काम करती थी, पश्चिम में जा कर काम नहीं करती। क्योंकि दिखाई पड़ता है: सभी लोग खा पी रहे हैं। यह तो नहीं हो सकता कि अरबों लोग सब नरक ही जायेंगे! वह श्रद्धा टूटने लगती है। वह श्रद्धा झूठी थी, इसलिए टूटती है।

मेरे पास एक जैन मुनि मिलने आये थे, तो वे कह रहे थे कि जो युवक पश्चिम जाते हैं, वे मांसाहार करने लगते हैं; इसको रोकने का कोई उपाय? मैंने कहा, इसको रोकने का उपाय कुछ भी नहीं है। इससे सिर्फ एक बात जाहिर होती है कि जो यहां रह रहे हैं, उनके भी मांसाहार न करने पर बहुत भरोसा मत रखना। वे सिर्फ परिस्थितिवश नहीं कर रहे हैं। वे भी कर लेंगे। सिर्फ उनको परिस्थिति नहीं मिली है। यहां का संस्कार, यहां की हवा, यहां का पारिवारिक भय उनको रोके हुए हैं। लेकिन बोध से नहीं रुके हैं; भय से रुके हैं। भय से कहीं कोई क्रांति घटती है जीवन में?

तो महावीर की अहिंसा और जैन की अहिंसा में फर्क है। जैन की तो बात ही छोड़ो जैनियों के जो मुनि हैं, उनकी अहिंसा में और महावीर की अहिंसा में भी उतना ही फर्क है। जै मुनि भी डर के मारे पानी छान कर पीता है; रात चलता नहीं; अंधेरे में उठता-बैठता नहीं; भय के कारण। बोध नहीं दिखाई पड़ता। सिकुड़ा-सिकुड़ा है; डरा-डरा है।

और ध्यान रखना: डरने से कोई धार्मिक नहीं बनता। डरने से तो आदमी सिकुड़ता है; संकुचित होता है। फैलने से आदमी धार्मिक बनता है; और फैलाव अभय में आता है--भय में नहीं आता।

तुमने खयाल किया: जब भी तुम भयभीत होते हो, सिकुड़ जाते हो, छोटे ही हो जाते हो। जब तुम निर्भय होते हो, फैल जाते हो, छाती फूल जाती है।

जिसका अभय पूरा हो गया, उसकी छाती इतनी बड़ी हो जाती है जितना बड़ा यह विराट विश्व है। वह पूरे विश्व पर फैल जाता है; वह विश्वमय हो जाता है।

चौथा प्रश्न: यूं मिले थे, मुलाकात हो न सकी। ओठ कांपे मगर बात हो न सकी। तथा आप अपने प्रवचन में अकसर कहते हैं कि इस बात पर ध्यान करो, इसे गुनो--और अभी--यहीं; लेकिन मुझे लगता है: कभी नहीं।

अगर तुम्हें लगता है, तो वैसा ही होगा, जैसा तुम्हें लगता है। मेरे कहे नहीं होगा; तुम्हारे लगने से ही होगा। अगर तुमने कोई निषेधात्मक धारणा बना ली है, तो वही होगा। अगर तुम कहते हो: कभी नहीं होगा, ऐसी तुम्हारी मान्यता है, तो कैसे हो सकता है! तुम्हारी

मान्यता को परमात्मा भी तोड़ नहीं सकता। कहते हैं कि जो सर्वशक्तिमान है, उसकी भी इतनी शक्ति नहीं है कि तुम्हारी मान्यता को तोड़ दे।

अगर तुम यह मान कर बैठे हो कि यह होनेवाला नहीं है; समाधि मुझे लगेगी नहीं; परमात्मा का दर्शन मुझे होगा नहीं; अविनाशी से मिलन मेरा होनेवाला नहीं है; अगर तुमने ऐसी धारणा बना रखी है, तो नहीं होगा।

वही होता है, जिसके लिए तुम धारणा बनाते हो। खयाल रखना इस पर। तुम्हारी धारणा तुम्हारा भविष्य है। तुम्हारी धारणा तुम्हारी नियति है। इसलिए नकारात्मक धारणाएं मत बनाना।

नास्तिक को परमात्मा कभी नहीं मिलता। इसका कारण यह नहीं है कि परमात्मा नहीं है। नास्तिक यही सोचता है कि अगर होता, तो मिलता। अब तक नहीं मिला, तो नहीं है। नास्तिक को परमात्मा नहीं मिलता--नास्तिकता की धारणा के कारण।

नास्तिकता की धारणा--अगर परमात्मा मिल भी जाए, तो भी उसे देखने न देगी; वह कुछ और देख लेगा; वह व्याख्या कुछ और कर लेगा।

मैंने सुना है: शिरडी के सांई बाबा तो मस्जिद में पड़े रहते थे। किसी को पक्का पता नहीं कि वे हिंदू थे, कि मुसलमान थे। किसी संत का किसको पता चल सकता है?--कि हिंदू, कि मुसलमान? सीमाएं नहीं, वहीं तो संत है।

मस्जिद में आने के पहले एक मंदिर में ठहरना चाहा था उन्होंने, लेकिन मंदिर से पुजारी को पक्का नहीं हुआ कि आदमी कौन है, कैसा है, तो उसने हटा दिया। तो वे मस्जिद में ठहर गये। क्या मंदिर, क्या मस्जिद! सब अपने हैं। मस्जिद में किसी ने हटाया नहीं, तो रुके रहे; वही घर बन गया।

लेकिन एक ब्राह्मण साधु रोज उनके दर्शन करने आता था और दर्शन के बाद ही जाकर भोजन करता था। कभी-कभी ऐसा हो जाता, कि भीड़ होती भक्तों की और दर्शन में देर हो जाती, लेकिन जब तक वह पैर न छू ले, तब तक भोजन न करता। कभी-कभी सांझ भी हो जाती, तब दर्शन हो पाते, पैर छू पाता; लौटता; तब कहीं जा कर भोजन कर पाता।

सांई बाबा ने एक दिन उसे कहा की प्यारे, तू इतना परेशान न हो; मैं वही आ कर तुझे दर्शन दे दूंगा। वह तो सड़ा खुद हुआ। उसने कहा, तो कल मैं वहीं प्रतीक्षा करूंगा। धन्यभाग मेरे कि आप मुझे वहां दर्शन दे देंगे!

दूसरे दिन जल्दी ही सुबह-सुबह नहा-धो कर भोजन तैयार करके बैठ गया अपने द्वार पर--सांई बाबा के दर्शन करने के लिए। कोई आया नहीं; आया एक कुत्ता। और कुत्ता भीतर घुसने की कोशिश करने लगा और वह डंडा लेकर उसको भगाने की कोशिश करे लगा--कि कहीं यह सब अपवित्र न कर दे और कहीं भोजन में मुंह न लगा दे। और सांई बाबा अभी आये नहीं। उसने दो-चार डंडे भी कुत्ते को जमा दिए। कुत्ता बड़ी कोशिश किया; डंडे खाने के बाद भी भीतर घुसने की कोशिश कर रहा था।

जब सांई बाबा नहीं आये, सांझ होने लगी, तो भागा हुआ ब्राह्मण आया। और उसने कहा कि आप आये नहीं! वचन दिया; पूरा नहीं किया। उन्होंने कहा, मैं गया था। और यह मेरी पीठ देख! चार डंडे तूने लगा दिए। और मैं फिर भी घुसने की कोशिश करता था, मगर तू घुसने ही नहीं देता था।

तब तो वह रोने लगा। तब उसे याद आया; तब उसे याद आया--कि उसने गौर से नहीं देखा। कुत्ते में कुछ खूबी तो थी; कुत्ता कुछ साधारण तो नहीं था। अब याद आया; पीछे ले लौट कर याद आया। कुछ बात अजब की थी कुत्ते में; कुछ ध्वनि गजब की थी। कुछ ऐसा ही एहसास हुआ था, जैसा सांई बाबा की उपस्थिति में अहसास होता हैं। लेकिन मैं ना-समझ; मैं मंदबुद्धि; समझा क्यों नहीं! रोने लगा। कहा, क्षमा करें। कल एक बार और मौका दें। अब ऐसी भूल न करूंगा।

साई बाबा ने कहा, तेरी मरजी; कल आयेंगे।

तो वह बैठा--अब वह कुत्ते की राह देखता बैठा। हमारी धारणाएं! अब वह देख रहा है कि कहीं कोई कुत्ता आ जाए। कोई कुत्ता दिखाई न पड़े! दूर दूर तक सन्नाटा। ऐसे कभी-कभी आवारा कुत्ते निकलते भी थे; हिंदुस्तान में कुछ कभी भी नहीं है--आवारा कुत्तों की। उस दिन सब नदारत ही हो गये! वह बैठा है थाली सजाये कि आज कुत्ता आये, तो थाली से लगा दूं। पहले कुत्ते को भोजन कराऊं फिर मैं करूं।

कुत्ता नहीं आया--सो नहीं आया। आया एक भिखारी, और वह भी कोढ़ी। और बड़ी दुर्गंध उससे आती थी। और वह चिल्लाया दूर से भाई, इधर न आ! बाहर रह। आगे जा। अभी हम दूसरे की प्रतीक्षा कर रहे हैं। तू यहां खड़ा ही मत हो। मगर फिर भी उसने घुसने की कोशिश की। तब तो वह नाराज हो गया, ब्राह्मण। उसने कहा, मैं कहता हूं: आगे जा, अंदर मत घुस। सिर फोड़ देंगे। अभी हम किसी और की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अपशकुन मत कर।

सांझ हो गई; सांई बाबा का कोई पता नहीं। वह फिर पहुंचा। सांई बाबा ने कहा, भाई, तू न पहचानेगा। हम आये थे; तूने घुसने न दिया। उन्होंने कहा, महाराज, आप गलत कह रहे हैं; मैं बिलकुल टकटकी लगा कर देखता रहा। एक भिखारी जरूर आ गया था बीच में; उसको मैंने हटाया कि कहीं इसकी बातचीत मग और मैं चूक न जाऊं कि आप आए कुत्ते के रूप में और निकल जाए, और फिर चूक हो जाए।

सांई बाबा ने कहा, मैं उसी भिखारी के रूप में आया था।

हम वही देखते हैं, जो हमारी धारणा है। अगर तुमने मान लिया कि ईश्वर नहीं है, तो ईश्वर नहीं है। फिर ईश्वर लाख उपाय करे, नाचे तुम्हारे सामने आकर, तुम कहोगे--नहीं है। तुम कुछ और देखोगे। तुम व्याख्या कर लोगे कुछ। तुम समझोगे, कोई आदमी पागल हो गया है। या तुम समझोगे कि मैं कोई सपना तो नहीं देख रहा हूं, कि मैंने कुछ भांग इत्यादि तो नहीं खा ली है? यह हो कैसे सकत है?

अगर तुमने मान लिया है कि कभी नहीं होगा, तो कभी नहीं होगा। तुम मालिक हो। तुम्हारे विपरीत यहां कुछ भी नहीं हो सकता।

मैं तुमसे यही कहता हूं कि अभी हो सकता है, यहीं हो सकता है। तुम्हारी मरजी।

यूं मिले थे, मुलाकात हो न सकी। ओंठ कांपे मगर बात हो न सकी। बात करने को भी क्या है? परमात्मा मिलेगा, तो क्या बात करोगे? कुछ कहने को होगा? ओंठ कंप जाए, काफी है। ओंठ कंप जाए, काफी ज्यादा। और क्या करोगे? कहने को है क्या? आंसू बह जाए--बस बहुत। नाच लो--बस बहुत

यूं मिले थे, मुलाकात हो न सकी। मुलाकात का क्या है? कहने को कुछ भी तो नहीं है हमारे पास। देने को कुछ भी नहीं है हमारे पास। पूछने को कुछ भी नहीं है हमारे पास।

लेकिन अगर तुम मुलाकात में उत्सुक हो, तुम अगर परमात्मा का कोई साक्षात्कार लेना चाहते हो, तो चूक हो जायेगी।

परमात्मा जिस रूप में आये, जैसा आये; और जिस रूप में तुम्हारे भीतर उस क्षण सहज स्फुरण हो, वही सच है, वैसा ही सच है।

ओठ कंप जाए--बहुत। न कंपे, तो भी बहुत। चुप रह जाओ--बहुत। आंख खुल जाए--बहुत। आंख बंद हो जाए--बहुत। बोलो--तो ठीक; न बोलो--तो ठीक।

इतनी भर श्रद्धा चाहिए--कि होगा।

और तुम पहले से आयोजन मत बनाओ कि क्या कहेंगे। क्योंकि कोई रिहर्सल काम न पड़ेगा। और सब रिहर्सल झूठे होते हैं।

परमात्मा से मिलना कोई अभिनय नहीं है। तुम पहले से तैयारी न कर सकोगे। जो भी तैयार कर लोगे, वह झूठा सिद्ध होगा। तुम तो सीधे, निष्कपट, बच्चे की भांति जाओ। तुम तो सरल चित्त से उसकी तरफ आंखें उठाओ।

अगर तुम मलूक से पूछोगे राह, तो मलूक की राह तो प्रेमी की रहा है।

जो तिरे पास से आता है, मैं पूछूं हूं यही
क्यों जी, कुछ जिक्र हमारा भी वहां होता था!

भक्त तो यह मान कर ही चलता है कि जैसे मैंने उसे स्वीकार किया, वैसे उसने मुझे स्वीकार किया। उसका हूं मैं; अस्वीकार करेगा भी कैसे? भक्त तो यह मान कर चलता है कि कुछ मुझे ही थोड़े उससे मिलने की आग लगी है; उस तरफ भी आग लगी है। कुछ इसी तरफ थोड़े ही प्यास है, उस तरफ भी प्यास है। और खयाल रहे, अगर हमारे ही तरफ प्यास होती, तो मिलन हो नहीं सकता था। उसकी तरफ से उपेक्षा होती, तो मिलन कैसे होता? दोनों हाथ ताली बजती है। भक्त ही दौड़ता रहे और भगवान को फिक्र ही न हो, तो भी नहीं होने वाला।

भगवान तो दौड़ ही रहा है, तुम्हारी तरफ। वह तुम्हारे प्राणों का प्राण है। अन्यथा होगा भी कैसे? तुम जरा उसकी तरफ आंख उठाओ। एक कदम तुम उठाओ, हजार कदम उसने उठाये ही हुए हैं।

जो तिरे पास आता है, मैं पूछूं हूं यही
क्यों जी, कुछ जिक्र हमारा भी वहां होता था!

क्या बुरी चीज है मुहब्बत भी
बात करने में आंख भर आई।

ओठ फड़फड़ा गए--बहुत। आंख भर आई--बहुत। ज्यादा क्या करोगे। लोभ मत करो। झलक मिल जाए--बहुत--झलक तो दूर, उसकी याद ही आ जाती है, यह भी कुछ कम नहीं। कितने अभागे हैं, जिनको याद भी नहीं आती, जिनके मुंह पर कभी राम नाम नहीं आता? जिनके प्राण में कभी राम नाम नहीं गूंजता।

सौभाग्यशाली हो कि कम से कम उसका नाम तो आता है; याद तो आती है; सोचते तो हो। चलो यही सही--सोचते हो कि किसी मिलन नहीं होगा; फिर भी सोचते तो हो! यह कभी कम सौभाग्य नहीं। कुछ तो ऐसे हैं, जो यह भी नहीं सोचते।

दुनिया में तीन तरह के लोग हैं। एक वे, जो सोचते हैं: मिलन होगा होकर रहेगा। अडिग है--उनका भाव। तो होकर ही रहेगा। दूसरे वे, जो सोचते हैं: मिलन नहीं होगा। नहीं होगा। लेकिन फिर भी कम से कम सोचते तो हैं। कुछ तो सही। नकारात्मक ही सही।

तीसरे ऐसे हैं, जो उपेक्षा से भरे हैं, जो सोचते ही नहीं; उनकी हालत और भी अजीब है। उनके लिए परमात्मा कभी प्रश्न ही हनीं बनता। अगर तुम उनसे परमात्मा की बात करो, तो वे ऐसे देखते हैं कि कहां की व्यर्थ की बातें कर रहे हो! अरे, कुछ काम की बात करो। कुछ मतलब की बात करो। वे इतना भी नहीं कहते कि परमात्मा नहीं है।

नीत्शे ने लिखा है कि दिन थे, जब लोग परमात्मा को मानते थे; और दिन थे, जब लोग परमात्मा को नहीं मानते थे। अब तो ऐसा वक्त आ गया है कि लोग परमात्मा को विचारणीय भी नहीं मानते!

नहीं कहने की भी कौन झंझट लेता है! लोग कहते हैं: हां जी, होगा। चलो, काम की बात करें।

तुम्हारी धारणा पर सब निर्भर है। और जब धारणा पर ही सब निर्भर है, तो क्यों नकारात्मक धारणा बनाओ। क्यों न विधायक धारणा हो! और भक्ति तो विधायक धारणा है।

शब वही शब हैं, दिन वही दि हैं,
जो तेरी याद में गुजर आये।

याद करो। तुम फिक्र छोड़ो मिलने--न मिलने की। तुम सिर्फ करो। तुम सिर्फ पुकारो।

सबा, यह उनसे हमारा पयाम कह देना
गये हो जब से, यहां सुबह-ओ-शाम ही न हुई।

याद जब आ जाए, तो पुलक से भर जाना। जब याद खो जाए, तो रोना और कहना:

सबा, यह उनसे हमारा पयाम कह देना
गये हो जब से, सुबह-ओ-शाम ही न हुई।

लेकिन फिर भी मैं तुमसे इतना कहूंगा कि नकारात्मक धारणा भी अच्छी है--उपेक्षा से। कुछ तो है; चलो, दुश्मनी ही सही।

कत्अ कीजे न तअल्लुक हमसे

कुछ नहीं है तो अदावत ही सही।

चलो, दुश्मन ही सही। चलो, नकारात्मक संबंध ही सही। पीठ ही किए हो परमात्मा की तरफ; चलो, कम से कम पीठ तो किए हो! पीठ है, तो कभी मुंह भी हो जायेगा।

लेकिन सरल हो जाए बात। क्यों न सरल बना दो इसे; क्यों न उन्मुख हो जाओ!

मैं तुमसे जो बार-बार कहता हूं: अभी हो सकता है--यहीं हो सकता है, उसका केवल इतना ही प्रयोजन है कि भाव तुम्हारे भीतर प्रगाढ़ हो जाए कि जब तुम चाहोगे, तभी हो सकता है। तुम्हारी चाहत की पूर्णता चाहिए। तुम्हारी चाहत में त्वरा चाहिए। तुम्हारी चाहत में बल चाहिए।

और जब तुम्हारा मिलन होगा, तब तुम चकित होओगे: तुम ही मिलने को उत्सुक नहीं थे; वह भी उत्सुक था। सदियों तुम ही नहीं तड़पे, तुमने उसे भी तड़पाया।

जब सुना तुम भी मुझे याद किया करते हो
क्या कहूं, हद न रही कुछ मिरी हैरानी की!

जान कर तुम कितने न चकित हो जाओगे उस दिन, जिस दिन तुम पाओगे: परमात्मा भी तुम्हारी याद कर रहा था; अस्तित्व तुम्हें पुकार रहा था।

हम जिससे दूर हो गये हैं, हमने भी कुछ नहीं खोया है, उसने भी कुछ खोया है।

इसलिए मैं तुमसे कहता हूं: अभी घटना घट सकती है। अगर अकेले तुम्हारी ही यात्रा की बात होती, तो शायद कभी नहीं घट सकती थी। मैं तुम्हारे प्रश्न का ऐसा ही अर्थ लेता हूं।

तुम यह सोच रहे हो कि अपने ही प्रयास से करना है, परमात्मा का कुछ पता नहीं। सोचता भी हो, न सोचता हो! उसे हमारा पता भी हो, न पता हो! उसे रस भी हो हमसे मिलन में या न हो। हम ही को चलना है। तो फिर रास्ता बड़ा लंबा हो जायेगा। रास्ता अकेला ही जायेगा, इसीलिए लंबा हो जायेगा।

लेकिन सारे संतों के अनुभव का सार यही है कि जिसने भी उसे मिलन पाया उसने लौट कर यही कहा: हम ही उसकी याद नहीं करते थे; वह भी हमें पुकारता था।

इसलिए कहता हूं: ध्यान दो, गुनो। अभी हो सकता है, यहीं हो सकता है। यह बात तुमसे मैं दोहराये जाऊंगा, ताकि यह पड़ती रहे चोट, पड़ती रहे चोट; बूंद-बूंद सागर बन जाता है।

पांचवां प्रश्न: मैं जप, तप, भक्ति, ध्यान--सब कर चुका हूं। लेकिन कहीं कुछ नहीं मिला। अब आपकी शरण आया हूं। मुझे उबारें।

तुमने जो भी किया होगा--किया नहीं। बस, ऐसे ही टाल दिया होगा। नहीं तो जप, तप, भक्ति, ध्यान सब कर लेते और न मिलता! अरे, एक ही कर लेते तो मिल जाता। इतनी दवाइयां पीने की जरूरत न थी। ऐसी कोई बीमारी नहीं है तुम्हारी।

तुम कहते हो कि तुम पूरा दवाखाना पी गए!

इतनी जरूरत ही न थी; इतने कुएं नहीं खोदने थे।

जलालुद्दीन रूमी एक दिन अपने शिष्यों को लेकर आश्रम के पास के खेत में गया और उसने अपने शिष्यों को कहा कि कुछ पाठ सीखो। देखो, यहां क्या हो रहा है!

खेत का किसान कुछ झक्की रहा होगा। उसे कुआं खोदना था, तो उसने एक कुआं खोदा--आठ, दस फीट खोदा; फिर उसने कहा: अरे यहां पानी नहीं मिलता! तो उसनने दूसरा कुआं खोदा। ऐसे वह कोई दस कुएं खोद चुका। पूरा खेत ही खराब कर डाला। और अब ग्यारहवां खोद रहा था!

जलालुद्दीन ने कहा, जरा इस किसान से कुछ सीखो। अब यह ग्यारहवां खोद रहा है। और आठ-दस फीट फिर खोदेगा और फिर पायेगा कि पानी नहीं मिलता। आठ-दस फिट में कहीं पानी मिलता है! पचास फीट जाना चाहिए। और अगर यह एक ही कुआं खोदता रहता, तो कभी का पानी मिल गया होता। मगर वह खोदता है एक; छोड़ देता है बीच में। देखता है कि मिट्टी ही मिट्टी आती जाती है; पानी तो आता नहीं। पहले मिट्टी ही आती है।

सच तो यह है कि जब तुम कुआं खोदते हो, तो पहले तो कूड़ा-करकट हाथ आते हैं। फिर रूखी मिट्टी हाथ आती है। फिर गीली मिट्टी हाथ आती है। पानी की खबर मिलने लगी। जब से मिट्टी गीली होती है--पानी की खबर मिलने लगी।

जब से तुम्हारी आंखों में आंसू आने लगते और हृदय गीला होने लगता--पानी की खबर मिलने लगी।

फिर पानी भी आता है, तो पीने-योग्य नहीं होता। गंदा होता है; मटमैला होता है।

मगर जब पानी आ गया, तो पीने-योग्य भी आ जायेगा। खोदे जाओ। फिर जल्दी ही निर्मल झरने उपलब्ध हो जाते हैं। मगर खुदाई चाहिए।

मुझे ऐसा लगता है...कि तुम कहते हो: मैंने जप, तप, भक्ति ध्यान--सब किया। तुमने कई गड्ढे खोदे, लेकिन कुआं नहीं खोदा। लेकिन कहीं कुछ नहीं मिला।

तो तुम्हारी शिकायत ऐसी लगती है, जैसे परमात्मा ने तुम्हें धोखा दिया! कहीं कुछ नहीं मिला!

अब तुम यहां आ गये हो, चलो हरजा नहीं। यहां कुआं खोदना, गड्ढा मत खोदना।

और तुम पहले से होशियारी कर रहे हो! अब तुम कह रहे हो। आपकी शरण आ गया हूं, मुझे उबारें। तुम यह कह रहे हो कि अब मैं कुआं खोदूं।

तुम अपनी पुरानी तरकीब छोड़ो। कुआं तुम्हीं को खोदना पड़ेगा। मैं इतना ही आश्वासन दे सकता हूं कि बीच में छोड़ने न दूंगा। भागने लगोगे; पुरानी आदत; इतने जपतप तुमने किए हैं; दो-चार दि बाद तुम कहोगे कि अब चले!

इतना ही आश्वासन दे सकता हूं कि रोकने की पूरी कोशिश करूंगा। कुआं तो तुम्हीं को खोदना पड़ेगा।

यह कुआं ऐसा है कि दूसरे के खोदे नहीं बनता। यह तुम्हारी आत्मा का कुआं है। यह तुम्हें अपने भीतर खोदना है।

त्वरा चाहिए। एकजूट भाव चाहिए। सातत्य चाहिए। धीरज चाहिए। प्रतीक्षा चाहिए। प्रार्थना चाहिए। और लग गये एक बार तो लौटने की जल्दबाजी नहीं चाहिए।

क्या जल्दी है लौटने की? लौट कर भी क्या मिलेगा?

बहुत लोग हैं, यही करते रहते हैं। दो दिन कुछ किया; चार दिन कुछ किया। बड़ी जल्दी में हैं! एकदम चाहते हैं। जल्दबाजी के कारण कहीं कुछ बात पूरी नहीं हो पाती। किसी पौधे की ठीक-ठीक जड़ें नहीं निकल पातीं।

तुमने छोटे बच्चों को देखा। कभी-कभी आम की गुठली को गाड़ आते हैं। मगर चैन नहीं उनको! थोड़ी देर बाद खोद कर देखते हैं कि अभी तक आम का पौधा निकला कि नहीं! रात नींद नहीं आती। कई दफा खयाल आ जाता है कि पौधा शायद निकल आया हो! सुबह उठ कर फिर खोद कर देख लेते हैं।

पौधा कभी न निकलेगा। जरा जमीन में गुठली को पड़े तो रहने दो; गलने तो दो। उघाड़-उघाड़ कर बार-बार मत देखो।

पानी की बहुत जल्दी मत रखो। मिलेगा। तुम अपना श्रम पूरा करो। तुम अपी तरफ से कमी मत करो।

फिर इतनी दवाइयों की जरूरत भी नहीं है। कभी-कभी बहुत दवाइयां फायदे की जगह नुकसान कर जाती हैं। और जो दवाई तुम्हारे लिए न हो, वह दवाई हानिकर होती है।

अब तुमने जप, तप, ध्यान, भक्ति सब कर डाला। जरा यह तो सोचना चाहिए कि मेरे अनुकूल क्या है। मेरी तरंग किससे बैठती है। मेरे भाव की गांठ किससे बंधती है। जरा इसे देखना चाहिए। जल्दी ही खोदने मत लग जाओ।

जरा देख भी तो लो कि यहां जल मेरे लिए मिलेगा? या जो जल मिलेगा, वह मेरे लिए होगा? थोड़ा देख कर, थोड़ा परख कर, थोड़ा समझपूर्वक...।

अगर तुम्हारे भीतर प्रार्थना सरलता से उठती हो, सुगमता से उठती हो, श्रद्धा का बहाव सहज हो; संदेह करने में तुम्हें कठिनाई होती है, और श्रद्धा सरलता से आती हो, तो भक्ति, प्रार्थना, पूजा, अर्चना--उस तरफ लगो।

अगर तुम्हें संदेह बड़ी तीव्रता से आता हो, श्रद्धा बिठानी मुश्किल पड़ती हो; लाख उपाय करो, श्रद्धा खिसल-खिसल जाती हो; पैर फिसल-फिसल जाते हों, तो फिर तुम भक्ति की फिक्र छोड़ो। फिर ध्यान। फिर बोध का मार्ग पकड़ो, जहां श्रद्धा अनिवार्य शर्त नहीं है।

लेकिन पहले अपनी जरा ठीक से पहचान कर लो। इसके पहले कि तुम यात्रा पर निकलो, थोड़ा अपना आत्म-निरीक्षण कर लो। और कठिन नहीं है यह बात। तुम अगर जरा ही शांत बैठ कर विचार करोगे, तो तुम्हें यह बात दिखाई पड़ने लगेगी कि तुम्हारे लिए क्या उचित और अनुकूल होगा।

हर घट से अपनी प्यास बुझा मत ओ प्यासे
प्याला बदले तो मधु ही विष बन जाता है।
पपिहे पर वज्र गिरे, फिर भी उसने अपनी
पीड़ा को किसी दूसरे जल से नहीं कहा
लगा गया चांद को दाग, मगर अब तक निशि का
आंगन तजकर वह और न जाकर कहीं रहा।

हर एक यहां है अडिग, अचल अपने प्रण पर
फिर तू ही क्यों भटका फिरता है इधर-उधर
मत बदल-बदल कर राह सफर तय कर अपना।
हर पथ मंजिल की दूसरी घटाता है।
हर देहरी पर मत अपी भक्ति चढ़ा पागल!
हर मंदिर का भगवान न पूजा जाता है!
हर घट से अपनी प्यास बुझा मत ओ प्यासे
प्याला बदले तो मधु ही विष बन जाता है।

पहले ठीक से पहचान तो लो। जहर किसी बीमारी में अमृत हो जाता। और किसी बीमारी में अमृत भी जहर हो जाता है।

तुम्हारी बीमारी क्या है?

तुम संदेह की बीमारी से भरे हो, तो ध्यान की औषधि काम आयेगी। फिर तुम श्रद्धा के मार्ग पर न चल सकोगे।

अगर तुम्हारे भीतर श्रद्धा का झरना कलकल बह रहा है, सुगमता से तुम श्रद्धा कर लेते हो; चाहे कोई लूटे, कोई धोखा दे, चाहे कोई कुछ भी तुम्हारे साथ कर ले, फिर भी तुम्हारी श्रद्धा अखंड बनी है, टूटती नहीं, मिटती नहीं, तो फिर भक्ति के रास्ते से तुम ऐसे उतर जाओगे, कि पतवार भी न चलानी पड़ेगी। जैसे पाल खोल देते हैं न नाव का; और बैठ जाते हैं--हवा के रुख को देखकर--और नाव चल पड़ती; हवा ले जाती।

विपरीत मत लड़ो। जो तुम्हारे अनुकूल न हो, उससे मत उलझो। ऐसा लगता है कि तुम उलझे होओगे--व्यर्थ की विपरीतताओं से।

जप, तप, भक्ति, ध्यान सक कर चुका। एक से ही काम हो जाता। इतने द्वार-दरवाजे बदलने की जरूरत नहीं है।

मैं पहली बात तुमसे जो कहना चाहता हूं, वह बुनियादी है, उसके बाद ही ठीक कदम उठते हैं। पहले अपनी पहचान कर लो।

दुनिया में दो तरह के स्वभाव हैं: पुरुष का स्वभाव और स्त्री का स्वभाव। सारा अस्तित्व दो में विभाजित है--स्त्री और पुरुष। और मनुष्य की दुविधा यही है कि मनुष्य का निर्माण दोनों से मिल कर हुआ है। तुम्हारा आधा हिस्सा तुम्हें मां से मिला है और आधा हिस्सा पिता से मिला है। तो तुम्हारे भीतर दोनों मौजूद हैं--स्त्री भी मौजूद है, पुरुष भी मौजूद है। तो कोई पुरुष अकेला पुरुष नहीं है; पुरुष के साथ-साथ स्त्री भी है। और कोई स्त्री अकेली स्त्री नहीं है; स्त्री के साथ-साथ पुरुष भी है। जो अंतर है, वह मात्रा का है। हो सकता है: तुम पचपन प्रतिशत पुरुष हो और पैंतालीस प्रतिशत स्त्री हो। बस, इतना ही अंतर है। या कि तुम साठ प्रतिशत स्त्री हो और चालीस प्रतिशत पुरुष हो। बस, अंतर मात्रा का है; अंतर गुण नहीं है।

इसीलिए तो कभी-कभी ऐसी घटना घट जाती है कि कोई पुरुष था और फिर अचानक रूपांतरण हो जाता है और स्त्री हो गया। कि स्त्री थी, और अचानक रूपांतरण हो गया और पुरुष हो गया।

और अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि दिक्कत नहीं है। हारमोनल परिवर्तन से स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री बनाया जा सकेगा। और भविष्य में, इस सदी के बीतते-बीतते बहुत लोग इस परिवर्तन से गुजरेंगे। क्योंकि ऊब जाते लोग! स्त्री रहते-रहते ऊब गये; पुरुष हो गये। पुरुष रहते-रहते ऊब गए; स्त्री हो गए। ज्यादा स्वतंत्रता हो जायेगी। एक ढंग का जीवन देख लिया, दूसरे ढंग का जीवन देख लें।

यह रूपांतरण संभव है, क्योंकि तुम दोनों हो। मनुष्य बायसेक्सुअल है।

इसका मतलब यह हुआ कि धर्म के जगत में भी तुम्हारे भीतर से दो राहें निकलती हैं--एक पुरुष की, एक स्त्री की। पुरुष की राह है ध्यान की, स्त्री की राह है प्रेम की।

तो तुम अपने भीतर ठीक से पहचान लो। और ध्यान रखना: यह तुम मत समझना कि तुम शारीरिक रूप से स्त्री हो, इसलिए तुम्हें अनिवार्य रूप से प्रेम का मार्ग ठीक पड़ जायेगा। ज्यादा संभावना है,

जीसस की फिर एक कहानी है; और जीसस की कहानियां प्रेम के मार्ग की अनूठी कहानियां हैं।

जीसस ने कहा...। कोई पूछता है जीसस से कि मैं तो योग्य नहीं हूं; मैं तो भूला-भटका हूं; मैं तो पापी हूं; परमात्मा मुझे भी उबारेगा! मैं पुकारूं? मेरी पुकार उस तक भी पहुंचेगी?

जीसस ने कहा: सुन। वह आदमी गड़रिया था। इसलिए जीसस ने गड़रिये की भाषा ही कही। उन्होंने कहा। सुन। कभी-कभी तुझे ऐसा हुआ होगा--सांझ जब तू अपनी सारी भेड़ों को इकट्ठा करके घर की तरफ लौटता है और अचानक घर आ कर पाता है कि सौ भेड़ों में निन्यानबे ही हैं और एक भेड़ कहीं छूट गई; जंगल में कहीं भटक गई; तू क्या करता है!

उसने कहा: मैं उन भेड़ों को वहीं छोड़ देता हूं और भागता हूं जंगल की तरफ--उस एक भेड़ के खोजने--कि वह कहां गई; कोई भेड़िया न खा जाए! कोई जंगली जानवर न खा जाए! मैं निन्यानबे भेड़ों की फिक्र ही छोड़ देता हूं; उसी एक भेड़ की फिक्र मेरे मन में गूंजने लगती है। मेरा सारा भाव उसी की तरफ दौड़ने लगता है। अंधेरी रात में चिल्ला-चिल्ल कर जंगल-पहाड़ पर उसे खोज कर लाता हूं।

जीसस ने कहा: एक बात और पूछनी है। तू उसे किस तरफ लाता है? उसने कहा: किस तरह लाता हूं? कंधे पर रख कर लाता हूं।

तो जीसस ने कहा: क्या तू सोचता है कि परमात्मा इतना भी प्रेम तेरे लिए नहीं दिखायेगा?

जीसस यह कह रहे हैं कि पुण्यात्माओं को तो परमात्मा ले आता है--चला कर, पापियों को कंधे पर रख कर लाता है; भटके हुओं को, गुमराहों को...।

प्रेम का शास्त्र अनूठा है; उसके भरोसे अनूठे हैं; उसकी दिशा अलग है। और अगर प्रेम का शास्त्र न होता, तो मनुष्य के लिए कोई भविष्य न था। मनुष्य इतना कमजोर है, लाख उपाय करके भी कहां सज्जन हो पाता है! लाख उपाय करके भी कहां संत हो पाता है? और कभी कोई एकांत हो भी जाता हो, तो उस पर परमात्मा की कृपा बरसेगी, बाकी सब बरसा से रहित रह जायेंगे--सूखे; और कभी हरे न होंगे? तो प्रकृति बड़ी उदास हो जाती है।

नहीं; तुम चारों तरफ देखो। सूरज की भाषा समझो; चांदत्तारों की भाषा समझो; हवाओं की भाषा समझो। सब को बराबर मिल रहा है। अच्छे और बुरे का कोई भेद नहीं है। हालांकि तुम्हारे मन में अड़चन होती है, क्योंकि तुम्हारे अहंकार की अड़चन है। तुम सोचते हो। अरे! अगर सब को बराबर मिल रहा है, तो फिर हम अच्छा क्यों करें?

तुम्हें यह लगता है: सब को बराबर मिल रहा है? बुरे को भी बराबर मिल रहा है? तो तुम्हारे मन में बड़ीर् ईष्या पैदा होती है। ये तुम्हारी अड़चनें हैं। तुम इन अड़चनों के कारण ईश्वर को मत तौलो।

मलूकदास कहते हैं:

एतै बदराहों की तुम बदी करी थी माफ,
मलूक अजाती पर एती करी रिस का।।

क्या कर रहे हो आज बैठे-बैठे? हम तो सुनते थे कि भटक गई भेड़ों को कंधों पर रख कर लाते हो! अब ये रहे मलूकदास। हम भटकी भेड़ हैं, सब उठाओ कंधे पर। हमारा कोई दवा नहीं है कि हम पहुंचे हुए संत हैं। भटकी हुए भेड़ हैं। अब तुम कहां हो? कहां तुम्हारा कंधा है?

तुम कहते हो: माला नहीं जपी; कभी नहीं जपी। लेकिन गजेंद्र ने जपी थी? तुम कहते हो: वेद-कुरान नहीं पढ़े; कभी नहीं पढ़े। जटायु ने पढ़े थे? तुम कहते हो: मलूकदास, तुमने ठीक-ठीक मेरा नाम नहीं लिया। मलूकदास कहते हैं: तो फिर क्या इरादा है? कहानी को बदल दो; अजामिल की कहानी का क्या हुआ? मुझको भी लगा था, अजामिल का हिसका? और तब से जो मुझे चोट लगी है, अभी तक भरी नहीं। और जब तक तुम मुझे न उठा लो...। अकारण उठा लो, तो ही चोट भरेगी।

यह भक्त की भावदशा समझना।

अकारण उठा लो। मेरे पास कोई कारण नहीं है कि मैं दावा कर सकूं। बूरा-बूरा मेरा है; सब जो मेरा है, बुरा है। इसलिए उस तरफ से कोई दावा नहीं है। मगर जैसा भी हूं--बुरा-भला--तुम्हारा हूं।

जग रूठे तो बात न कोई
तुम रूठे तो प्यार न होगा।
मणियों में तुम ही तो हो कौस्तुभ
तारों में तुम ही तो हो चंदा,
नदियों में तुम ही तो हो गंगा
गधों में तुम ही तो हो निशिगंधा
दीपक में जैसे लौ-बाती
तुम प्राणों के संग-संगाती
तुम बिछड़े तो बात न कोई
तुम बिछुड़े सिंगार न होगा
जग रूठे तो बात न कोई
तुम रूठे तो प्यार न होगा।

मलूकदास कहते: तुम क्यों रूठे मुझसे? सारा जग रूठ जाए--चलेगा; तुम तो न रूठो। सारा जग कहे: मैं बुरा हूं--चलेगा; तुम तो न कहो! तुम्हें तो शोभा नहीं देता।

उमर खय्याम की एक पंक्ति है; किसी मौलवी ने कहा है उमर खय्याम को कि अगर तुम ये पीने-पिलाने में पड़े रहे, तो नर्क में सड़ोगे: उमर खय्याम हंसने लगा है और उसने कहा: तो क्या खयाल है तुम्हारा; अब परमात्मा रहमान न रहा! अब उसमें दया न बची? तुम लांछन लगा रहे हो--उसकी दया पर! तुम यह कह रहे हो कि अब करुणा उसकी चुक गई! मुझे रहने दो बुरा-भला--जैसा मैं हूं। मुझ पर भरोसा ही नहीं है। मुझे तो भरोसा उसकी करुणा पर, उसके रहमान होने पर है, उसके रहीम होने पर है।

भक्त का भरोसा अपने अहंकार पर नहीं है। ज्ञानी का भरोसा अपने व्यक्तित्व पर है। भक्त का भरोसा उसकी कृपा पर है। ज्ञानी का अपने प्रयास पर--भक्त का उसके प्रसाद पर। जब भी वह पाता है: कुछ अड़चन हो रही है, वह प्रार्थना करता है। वह कहता है कि मामला क्या है! तुम्हारी दुनिया में रह रहा हूं, तुम्हारा हूं। और तकलीफ भोग रहा हूं!

भोग कर भी जल रहा हूं,
आह मैं बरसात में
मेध में मधु रस भरा है
या कि यह ठंडी अगन है
देह को छूते बराबर
हो रही मीठी जलन है
चांद का भी मुंह घटा ने
ढंक दिया है कुंतलों से
मैं यहां परदेस में
कितना अकेला रात में
भीग कर भी जल रहा हूं
आह मैं बरसात में।
तुम खयाल करो।
इस तरह छाई उदासी
पलक बोझिल आंख नम है
फिर तुम्हारी याद का यह
दर्द भी तो कुछ न कम है
इस तरह से चल रहा है
काटता हर एक झोंका
जहर जैसे घुल गया है
पश्चिमी मधुपात में
गीत तो उमड़ा हृदय में
पर अभी गाया न जाता
इस तरह घायल हुआ है
मन कि बहलाया न जाता
लग रहा है ऐसे कि जैसे
गीत वाले स्वर-भ्रमर
कैद होकर रह गये हैं
मौन के जलजात में
लाज से दब बिजलियां जब

तुम सरीखी मुस्कुराती
क्या पता तुमको कि वे सब
किस तरतु मुझको जलाती
बरसता पानी
तरसता है मगर चातक हृदय का
तुम नहीं हो बस
तुम्हारी याद ही है साथ में
भीग कर भी जल रहा हूं
आह मैं बरसात में
मैं यहां परदेस में
कितना अकेला रात में!
कुछ खयाल करो।

भक्त को सारा जोर इस बात पर है कि तुम कुछ कुछ करो। और कितना गिरूं, ताकि तुम्हारी करुणा पा सकूं! और कितना भटकूं, ताकि तुम खोजने निकलो! और कितना गर्त में पड़ूं; और कितने अंधेरे में उतरूं, ताकि तुम्हारी रोशनी के किरण कृपा बन कर मुझे खोजती हुई आ जाए?

भक्त कहता है कि तुम अगर चाहो, तो सब हो जाए। मेरे चाहे कुछ भी नहीं होता। सूत्र बांधते अगर गीत में, वेदों का वंशज हो जाता। इतना भरा है मुझमें तुमने कि अगर जरा सूत्र बांध दो, अगर जरा व्यवस्था जुटा दो, तो मैं जो कहूं, वे वेद हो जाए।

सूत्र बांधते अगर गीत में
वेदों का वंशज हो जाता
हरदम मिट्टी रही तरसती
रखा जन्म से उसको प्यास
नित्य तिरस्कृत होकर रोया
वीराने में पड़ा उदास
होनहार सूरज ने कोई
अंधियारे में सांस तोड़ दी
शोकाकुल हो गये तुम
तुमने ठंडी आह छोड़ दी
दीप जला कर तुमने हरदम
छोड़ दिया बिलकुल अनाथ सा
बूंद-बूंद भी स्नेह पिलाते
अब तक तो सूरज हो जाता
दीप जला कर तुमने हरदम

छोड़ दिया बिलकुल अनाथ सा
बूंद-बूंद भी स्नेह पिलाते
अब तक तो सूरज हो जाता
सूत्र बांधते अगर गीत में
वेदों का वंशज हो जाता।
रही उपेक्षित धरती तुमसे
अपमानित ही लौटे मौसम
किया न तुमने कभी बात में
श्रम गंगा जमुना का संगम
कभी न पूछी कुशल फूल की
कभी न डाली को दुलराया
कभी न दुर्वा का दुःख जाना
कभी न शबनम को सहलाया
जरा तुम्हारी लापरवाही
बगिया में मधुमास न आया
अगर पाल लेते तुम कलियां
फूल फूल पंकज हो जाता
सूत्र बांधते अगर गीत में
वेदों का वंशज ही जाता।
बूंद-बूंद भी स्नेह पिलाते
अब तक तो सूरज हो जाता
दीप जला कर तुमने हरदम
छोड़ दिया बिलकुल अनाथ सा

भक्त कहता है: तुम जिम्मेवार हो, क्योंकि तुम मालिक हो। तुम स्रष्टा हो; मैं तुम्हारी सृष्टि हूं।

ऐसा ही समझो कि एक मूर्ति मूर्तिकार को पुकारती हो कि यह क्या कर रहे हो! थोड़ा और छैनी लगाओ; थोड़ा मुझे और निखारो--साफ करो: थोड़ा मुझे और चमकाओ।

यह बात तुम्हारी समझ में न आयेगी, अगर संदेह से तुम चलते हो। तो यह बात ही छोड़ देना। यह तुम्हारे काम की नहीं है। फिर बाबा मलूकदास तुम्हारे लिए नहीं हैं।

अगर श्रद्धा का सूत्र तुम्हारे मन में गूंजता है, तो यह सारी बातें बहुत सीधी-साफ हैं। इनमें जरा भी अड़चन नहीं है।

इक दर्द की दुनिया है, इधर देख तो ले
कुछ और नहीं कहते, मगर देख तो ले
जिस दिल को मेरा गम ने किया दिल-ए-दोस्त

उस दिल की तरफ एक नजर देख तो ले।

भक्त पुकारे चला जाता है--कि जरा मेरी तरफ नजर करो।

भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ।...

यह पहले सूत्रों की एक शृंखला पूरी हुई जिसमें मलूकदास परमात्मा को याद दिलाते हैं कि जरा तुम अपनी किताबें तो देखो। हजार तरह के करुणा के कृत्य पहले कर चुके हो, अब कुछ कंजूस होने की जरूरत नहीं है।

यह तो बात भगवान के लिए।

दूसरी बात भक्त के लिए:

भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ।

दिल फकीर जो हो रहे , साहेब तिनके साथ।।

सिर्फ वेश से जो फकीर हो गये हों, ऊपर-ऊपर फकीर हो गये हों, और भीतर-भीतर जरा भी फकीरी नहीं प्रवेश पाई हो; भीतर विनम्रता न हो...। समझना।

जो ज्ञानी है, वह कभी विनम्र नहीं हो पाता जो कर्म योगी है, वह कभी विनम्र नहीं हो पाता। उसका कर्म ही उसके अहंकार जो दीसमा रखता है।

तुम जरा फर्क देखना। जैन मुनि को तुम देखो और एक सूफी फकीर को देखो। सूफी फकीर में तुम एक विनम्रता पाओगे, जो जैन मुनि में नहीं मिलेगी। कारण साफ है। जैन मुनि विनम्र होने का कारण ही नहीं मानता। वह तो अपना एक-एक कृत्य साफ कर रहा है, शुद्ध कर रहा है। हर शुद्ध होते कृत्य के साथ अकड़ बढ़ रही है--कि मैं कुछ हूं।

जैन मुनि तुम्हें हाथ भी जोड़ कर नमस्कार नहीं करेगा। तुम नमस्कार करो, वह नमस्कार नहीं करेगा। वह कैसे नमस्कार कर सकता है! साधारण श्रावकों को, साधारण जनों को कैसे नमस्कार कर सकता है? अकड़ भारी है।

सूफी फकीर तुम्हारे पैर भी छू सकता है, नमस्कार की तो बात छोड़ो। तुम जाओगे, तो तुम्हारे पैर छू लेगा। क्योंकि उसने परमात्मा को ही जाना है--तुममें भी परमात्मा का जाना है। हर चरण परमात्मा का चरण है। यही असली फकीरी है।

फकीरी का मतलब है कि मैं नहीं।

भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ। और ऊपर-ऊपर से जो फकीर हो गये हैं और अभी अपने मन के भी मालिक नहीं हो सके हैं; अभी मन ही जिनका मालिक है; अहंकार जिनका मालिक बना बैठा है...।

भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ।

दिल फकीरी जे हो रहे, साहेब तिनके साथ।।

यह तो परमात्मा से थोड़ा सा झगड़ा कर लिया, अब वे अपने शिष्यों में कह रहे हैं कि इस बात का ध्यान रखना: ऊपर-ऊपर फकीरी से काम न चलेगा। भीतर फकीरी चाहिए। मैं ना कुछ हूं--ऐसा भीतर भाव चाहिए।

जीसस का प्रसिद्ध वचन है: धन्य हैं वे जो दरिद्र हैं, क्योंकि प्रभु का राज्य उन्हीं का होगा। धन्य हैं वे जो दरिद्र हैं...यह फकीरी को परिभाषा है। दरिद्र का मतलब यह नहीं है कि तुम्हारे पास पैसा नहीं है, कि तुम्हारे पास मकान नहीं है। मकान और पैसे से कोई समृद्ध होता, तो न होने से दरिद्र हो सकता था। इस बात को खयाल में रखना।

मकान होने से कोई समृद्ध ही नहीं होता, तो मकान के होने से दरिद्र कैसे हो जायेगा! धन के होने से कोई समृद्ध नहीं होता, तो निर्धन होने से कोई दरिद्र कैसे हो जायेगा।

अहंकार जाए, तो आदमी गरीब हुआ। अहंकार जाए, तो आदमी वस्तुतः दरिद्र हुआ। भीतर से उतर गया सिंहासन पर से; सिंहासन खाली कर दिया; उसी सिंहासन पर तो परमात्मा विराजमान होगा, जहां तुम बैठक लगाए बैठे हो।

दिल फकीरी जो हो रहे, साहेब तिनके साथ। और जिन्होंने दिल से फकीरी कर ली, जो भीतर दीन हो गए; जिन्होंने कहा: मैं कुछ भी नहीं हूं, उसी क्षण--साहेब तिनके साथ।

राम राम के नाम को, जहां नहीं लवलेस।
पानी तहां न पीजिए, परिहरिए सो देस।।

कहते मलूकदास कि जहां राम राम का गुणगान न होता हो, जहां प्रभु की याद न होती हो, जहां हवा-हवा में अर्चना की गंध न हो, जहां वातावरण प्रभु-सिक्त न हो, उस जगह रुकना मत। सूख जाओगे वहां। उस जगह ठहरना मत, क्योंकि उस जगह तुम्हें प्राणों का भोजन न मिलेगा; पुष्टि न मिलेगी।

राम राम के नाम को, जहां नहीं लवलेस।
पानी तहां न पीजिए, परिहरिये सो देस।।

उस देश को छोड़ देना; वहां पानी भी मत पीना, क्योंकि वहां पानी भी जहर है।

यह सत्संग के लिए इशारा है। मलूकदास कहते हैं: वहां जाओ, जहां लोग राम की याद करते हों; जहां बैठ कर रोते हों; जहां बैठ कर गीत गुनगुनाते हों; जहां सत्संग होता हो, वहां डुबकी लगाओ। क्योंकि उस डुबकी में ही तुम धीरे-धीरे उस अमृत के साथ संबंध जोड़ पाओगे, जिसका नाम परमात्मा है।

अकेले तुमसे न हो सकेगा। संग खोजो। अकेले तुम बहुत कमजोर हो। अकेले भटक जाने की बहुत संभावना है। संग-साथ खोजो; साध-संग खोजो; जहां प्रभु वचनों की महिमा गाई जाती हो; जहां प्रभु की तरफ याद उठाई जाती हो; जहां प्रभु की याद में लोग मगन होते हों, नाचते हों। उस जगह जाओ, उस हवा में जियो, वहां श्वास लो, वहां पानी पीओ, वहां ठहरो, वहां आवास करो, तो शायद तुम्हें भी धुन पकड़ जाए।

तुमने यह खयाल किया: जहां दस-बीस लोग नाचते हों, वहां तुम्हारे पैर भी थिरकते लगते हैं। जहां कोई ढंग से तबला बजाता हो, वीणा बजाता हो, वहां तुम्हारे हाथ भी थपकने लगते हैं। क्या होता है?

कार्ल गुस्ताव जुंग ने ठीक शब्द उसके लिए खोजा है--सिन्क्रानिसिटि। कुछ समतुल घटने लगता है। उदास आदमी को देखकर तुम्हारे भीतर उदासी आ जाती है। क्योंकि हम अलग-

अलग नहीं हैं; हम एक दूसरे के भीतर प्रवेश कर रहे हैं; हमारी तरंगें एक-दूसरे में लीन हो रही हैं। उदास आदमी को देखकर तुम्हीं उदासी आ जाती है; प्रसन्न चित्त आदमी को देखकर तुम्हारे भीतर भी प्रसन्नता की किरण फूटने लगती है।

हम अलग-अलग नहीं हैं; हम एक-दूसरे के संग-साथ हैं। जहां दस आदमी हंस रहे हों, वहां तुम भूल ही जाते हो चिंता; वहां तुम भी हंसने लगते हो। पीछे तुम सोचते भी हो कि ऐसा कैसे हुआ। मैं तो इतना चिंतित था, इतना बोझ से भरा था, हंसने कैसे लगा! तुम कितना ही हंसते हुए जाओ, जहां दस आदमी उदास बैठे हों, मुर्दे की तरह बैठे हों, जहां की हवा में मौत--जीवन न हो, तुम अचानक पाओगे कि तुम्हारी हंसी ठहर गई, ठिठक गई। हंसना मुश्किल पाओगे। इतनी दस आदमियों की उदासी दीवाल की तरह खड़ी हो जायेगी; तुम्हारे ओंठ बंध हो जायेंगे। तुम अचानक पाओगे कि तुम भी डुब गये उस अंधेरे में, जिसमें वे दस डूबे हुए बैठे थे।

मनुष्य एक-दूसरे से जुड़े हैं; एक दूसरे के हृदय की तरंगें, एक-दूसरे के भीतर जाती हैं, आंदोलन करती हैं। इसलिए साध-संग का बड़ा मूल्य है।

जहां तुम जैसे प्रभु को खोजने वाले कुछ दीवाने इकट्ठे होते हों, बैठो उन मस्तों के पास, दीवानों के पास; घड़ी भर तो जरूर निकाल ही लो चौबीस घंटे में। वहीं से तुम्हें धीरे-धीरे रस लगेगा। वहीं से तुम्हारे भीतर प्यास जगेगी; वहीं से तुम्हारे भीतर चुनौती उठेगी।

राम राम के नाम को, जहां नहीं लवलेस।
पानी जहां न पीजिए, परिहरिये सो देस।।

उस देश को भी छोड़ देना, जहां लोग राम को भूल गये हों। उस समाज को भी छोड़ देना, जहां लोग राम का स्मरण न करते हों; वहां पानी भी मत पीना। उन हाथों से दिया गया पानी भी घातक है।

जार्ज गुरजिएफ कहा करता था कि तुम जैसे एक कारागृह में बंद हो। अकेले अगर तुम जेलखाने के बाहर निकलना चाहो, तो मुश्किल आसान हो जायेगी। फिर भी अगर सिर्फ कैदी ही आपस में जुट कर निकलने की कोशिश करें, तो भी कठिनाइयां होंगी। अगर ये कैदी जेल के बाहर के किसी मुक्त पुरुष से संबंध बना लें, तो और भी आसानी हो जायेगी।

एक कैदी निकलना चाहे, तो बहुत मुश्किल है, पचास पहरेदार हैं। लेकिन अगर सौ कैदी निकलना चाहें--इकट्ठे--एकजुट--तो पहरेदार कम पड़ जाते हैं। एक निकलता था, तो पचास पहरेदार थे; पचास गुने थे। सौ कैदी निकलना चाहे, तो पहरेदार कम पड़ गये; आधे हो गये। लेकिन फिर भी कठिनाई है। पहरेदार के पास बंदूकें हैं; पहरेदारों के पास सब साधन हैं। कैदी साधन ही हैं। लेकिन अगर भीतर के कैदी बाहर के जगत के किन्हीं लोगों से संबंध बना लें, जिनके पास साधन हैं, और जिनको स्वतंत्रता है, जो जानते हैं कि कब पहरा बदलता है; जो जानते हैं कि कौन-सी दीवाल बाहर से कमजोर हो गई है; जो जानते हैं कि किस कोने से निकल जाने पर आसानी पड़ेगी; जो जानते हैं कि दीवाल के किस हिस्से पर

चढ़ जाना सुगम होगा, क्योंकि बाहर से घूम कर जेल खाने को भली-भांति देख सकते हैं। तो आसानी हो जायेगी।

फिर गुरजिएफ कहता है: अगर यह जो बाहर का आदमी है, कभी जेल में न आया हो, तो उतनी आसानी होगी। लेकिन अगर कोई कैदी जो जले में भी रह चुका है और मुक्त हो गया है--अगर उससे तुम्हारा संबंध जुड़ जाए, तो बहुत आसानी हो जाएगी; उसे भीतर बाहर--सब पता है। वह तुम्हारे बड़े काम का हो जायेगा।

सदगुरु का इतना ही अर्थ है। तुम्हारी ही तरह वह भी कभी एक जेलखाने में था; अब वह बाहर हो गया है। उसे भीतर का सब पता है; उसे बाहर का भी सब पता है। वह स्वतंत्रता है। वह सब जांच-पड़ताल कर सकता है। वह भीतर नक्शे पहुंचा सकता है कि कहां से निकलना सुगम होगा; समय बता सकता है कि किस समय सुगम होगा; कब पहरेदार रात में सो जाते हैं। कौन सा क्षार कमजोर है। या किस पहरेदार को मिला लिया गया है और दरवाजा खुला छोड़ दिया जायेगा रात। ये सारी व्यवस्थाएं हो सकती हैं।

सदगुरु का अर्थ इतना ही होता है: जो संसार से उठ गया, और परमात्मा के साथ एक हो गया है; जो संसार की कारागृह के बाहर है। उसके साथ संबंध जोड़ लो। और जिन मित्रों को मुक्त होने की आकांक्षा है, उनसे भी संबंध जोड़ लो।

इसलिए दुनिया में सत्संग पैदा हुए। बुद्ध के हजारों लोग इकट्ठे हुए। महावीर के पास हजारों लोग इकट्ठे हुए; सत्संग बने

यहां करोड़ों-अरबों कैदी हैं, लेकिन मुक्त होने की उनकी काई आकांक्षा नहीं है। अगर तुम उसके साथ ही संग-साथ रखोगे, तो वे तुम्हें भी बंधनों की नई तरकीबें सिखाये जायेंगे। वे कहेंगे: चलो, इस बार इलैक्शन में ही खड़े हो जाओ; कि चलो, एक नई दुकान खोल लो; कि इस धंधे में बड़ा लाभ है। वे तुमसे वे ही बातें करेंगे जो वे कर सकते हैं। उनका कोई कसूर भी नहीं है।

वहां पानी भी मत पीना--मलूकदास कहते हैं: उस देश को भी छोड़ देना उन लोगों से भी धीरे-धीरे हटना।

भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ। और बाहर-बाहर से न होगा। दिल फकीर जे हो रहे, साहेब तिनके साथ। भीतर-भीतर की बात है। भीतर की बात है।

राम राम के नाम को, जहां नहीं लवलेस।
पानी तहां न पीजिए, परिहरिये सो देस।।

और अगर तुम सत्संग में डूबने लगो, तो तुम पाओगे; परमात्मा धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर प्रवेश पाने लगा।

आंगन में नर्म नर्म फूटती उजास
और हिलती है पंखुडी गुलाब की
मेंहदी के पत्तों से देह रचे दिन
आंखों में सुबवंती सामे

हलकी-सी एक छुअन पल-छिन
गोरी रातों सी पहचाने
पोर-पोर रंगता है इतना मधुमास
और बात गांठ खोल रही बात की
कुछ भी अनहोना अब रहा नहीं
सारा अपनापन तो अपना है
रंगों के मेले में एक रंग
पत्थर पर दूब का पनपना है
यह भी क्या कुछ कम
इतना विश्वास
और साथ-साथ परछाई आपकी।

पहले तो परमात्मा परछाई की तरह आयेगा; लेकिन इतना क्या कम है! कुछ भी अनहोना अब रहा नहीं।...

तुमने देखा--पत्थर पर उप गीत हुई दूब को कभी देखा? पत्थर पर दूब ऊग आती है, तो आदमी के हृदय पर परमात्मा न ऊगेगा! यहां असंभव होता है।

कुछ भी अनहोना अब रहा नहीं
सारा अपनापन तो अपना है
रंगों के मेले में एक रंग
पत्थर पर दूब का पनपना है
यह भी क्या कुछ कम
है इतना विश्वास
और साथ-साथ परछाई आपकी
आंगन में नर्म-नर्म फूटती उजास
और हिलती है पंखुडी गुलाब की

परमात्मा धीरे-धीरे आने लगेगा, जैसे उजास आती आंगन में और खिलने लगता गुलाब; ऐसे ही तुम भी खिलने लगोगे।

सत्संग खोजो; साध-संग खोजो; फिर पता ही नहीं चलता--कब परमात्मा तुम्हारे भीतर किस चुपके से प्रवेश कर जाता है।

इश्क सुनते थे जिसे हम, वह यही है शायद।
खुद-ब-खुद दिल में एक शक समाया जाता।।

आज इतना ही।

जीवंत अनुभूति प्रकृति और सदगुरु प्रेम की हार भक्त का निवेदन परमात्मा की प्यास भलाई का अहंकार

छठवां प्रवचन

श्री रजनीश आश्रम, पूना, प्रातः, दिनांक १६ मई, १९७७

प्रश्न सार

आध्यात्मिक अनुभूतियों को कैसे संजो कर रखा जाए?

प्रकृति सान्निध्य और गुरु सान्निध्य में क्या फर्क है?

परमात्मा को पाना मनुष्य की जीत है या हार?

भक्त क्या पाना चाहता है?

परमात्मा की खोज का साहस मुझमें क्यों नहीं है?

मैं भलाई करता हूं, लोग अनुग्रह क्यों नहीं मानते?

पहला प्रश्नः जीवन में यदि कभी अनुभूति घटित हो, तो उसे उसी रूप में कैसे संजो कर रखा जाए?

पूछा है श्री शुकदेव ने।

पहली तो बातः अभी अनुभूति घटी नहीं; कभी घटित हो। भविष्य को भी हम पकड़ना चाहते हैं! भविष्य का अर्थ ही है, जो अभी हुआ नहीं; उसको भी तिजोड़ी में बंद कर लेने का आयोजन करना चाहते हैं!

कृपणता की हद्द है; अतीत को तो हम रखते ही है संजो कर; भविष्य की भी चिंता करते हैं कि कैसे...! अगर कभी अनुभूति घटित हो, उसे कैसे संजो कर रखा जाए!

तो पहले तो बातः अतीत में भी कुछ घटा हो, तो उसे भी संजो कर रखने की जरूरत नहीं है। क्योंकि जो तुम संजो कर रखोगे, वही-वही बोझ हो जायेगा।

स्मृति ज्ञान नहीं है। जो घट गया--भूल जाओ, विस्मरण करो; उसे ढोने की कोई जरूरत नहीं है। तुम्हारी स्मृति अगर उससे बहुत आच्छादित हो जाए, तो फिर दुबारा न घट सकेगा। फिर तुम्हारे दर्पण पर बड़ी धूल जम जायेगी।

जो हुआ, उसे भूलो। जो हुआ, उसे जाने दो। जो हो गया--हो गया। जो हो गया--चुक गया। संजो कर रखने की कोई भी जरूरत नहीं है।

लेकिन हमारी सांसारिक पकड़ें हैं; हर चीज को संजो कर रखते हैं, तो शायद सोचते हैंः कभी समाधि घटेगी, प्रभु का अनुभव होगा, उसको भी सम्हाल कर रख लेंगे।

सम्हाल कर रखेगा कौन? प्रभु का अनुभव जब होता है, तब तुम तो होते ही नहीं; तुम तो बचोगे नहीं; कौन सम्हालेगा? क्या सम्हालेगा?

प्रभु का अनुभव इतना बड़ा है; अनुभूति तुमसे बड़ी है--तुम न सम्हाल सकोगे; तुम्हारी मुट्ठी में न समायेगी। और जो तुम्हारी मुट्ठी में समा जाए, उसे तुम अनुभूति समझना मत।

तो पहले तो भविष्य को पकड़ने की चेष्टा ही व्यर्थ है। ऐसे तुम्हारा मन व्यर्थ की चिंताओं में उलझ जाता है। हवाओं में महल खड़े मत करो।

दूसरे--यदि अनुभव हो भी जाए, तो उसे संजो कर रखने की कोई भी जरूरत नहीं है। जो हो गया अनुभव--वह हो गया; उसे याद थोड़े ही रखना पड़ता है।

सम्हाल कर तो उसी को रखना पड़ता है, जो हुआ नहीं। समझने का कोशिश करना।

जिसको तुमने जान लिया, याद नहीं रखना पड़ता। जिसको तुमने नहीं जाना है, उसी को याद रखना पड़ता है। विद्यार्थी याद रखता है, क्योंकि समझा तो कुछ भी नहीं है; जाना तो कुछ भी नहीं है। परीक्षा देनी है, तो स्मरण रखता है। परीक्षा के बाद भूल-भाल जायेगा।

अगर तुम्हें ही अनुभव हुआ हो, तो सम्हलना नहीं पड़ता।

क्या सम्हालोगे? अनुभव हो गया, बात हो गई।

सच तो यह है कि अनुभव हो जाए, तो उसे भूलोगे कैसे! क्या उपाय है--जाने हुए को अनजाना करने का? अगर अनुभव सच में हुआ है, तो अनुभव तुम्हारे श्वास-श्वास में समा गया; तुम्हारी रंध्र-रंध्र में विराजमान हो गया। जो जान लिया--वह जान लिया। अब इसका कोई उपाय नहीं है; जरूरत भी नहीं है कि इसे संजो कर रखो।

संजो कर तो उधार बातें रखनी पड़ती हैं, जो अपनी नहीं हैं; दूसरों ने जानी होगी; हम सिर्फ मानते हैं; उन्हें संजो कर रखना पड़ता है। दूसरों ने जानी होंगी, तो हमें याद रखनी पड़ती हैं। अपना जाना हुआ याद नहीं रखना पड़ता; अपना जाना हुआ, तो याद ही रहता है। बीच रात अंधेरे में कोई कर पूछ ले, तो भी याद रहता है। भूल थोड़े ही जाओगे; यह थोड़े ही कहोगे कि जरा समय दो, मैं याद कर लूं!

अगर तुम्हें परमात्मा का अनुभव हो जाए, तो क्या तुम कहोगे कि जरा समय दो, मुझे सोच-विचार कर लेने दो, तब मैं बताऊं; हो गया अनुभव, तो तुम अनुभव के साथ एकरूप हो गए।

नहीं; जीवन की परम घटनाएं संजो कर नहीं रखनी पड़ती। जीवन की परम घटनाएं इतनी बहुमूल्य हैं, इतनी प्रगाढ़ हैं, इतनी गहरी हैं कि तुम्हारे प्राण के गहरे से गहरे हिस्से तक प्रविष्ट कर जाती हैं। तुम्हारी अनुभूति तुम्हारी सुगंध बन जाती है।

और, संजो कर रखना ही मत कुछ।

यह यहां रोज अनुभव में आता है। अगर ध्यान की थोड़ी सी झलक मिली, तो बस, अड़चन शुरू हुई। फिर आदमी सम्हाल कर रखने लगता है। उस झलका को पकड़-पकड़कर रखता है। उस झलक के कारण नई झलक मिलनी मुश्किल हो जाती है।

मन खाली चाहिए; मन सदा रिक्त चाहिए; मन के दर्पण पर चित्र नहीं चाहिए। तो जो अनुभव हुआ--हो गया।

कल जो जो चुका है, उसे याद हम इसीलिए रखते हैं कि हमें डर है कि फिर पता नहीं, अब होगा या नहीं!

परमात्मा की एक किरण उतर आये, तो डर नहीं है कोई। तुम अभय हो जाओगे। जो आज हुआ है, वह कल और भी होगा; परसों और भी ज्यादा होगा। जो हुआ है, वह बढ़ता रहेगा। इतना भय नहीं है।

लेकिन हम संसार से अनुभव सीखे हैं: रुपया मिल जाए, सम्हाल कर रख दो; कहीं खो न जाए। आज मिल गया, कल भी मिलेगा--पक्का है?

राह से जाते थे, मिल गई एक थैली रुपयों की। सम्हाल कर रख लो। अब दुबारा-दुबारा बार-बार थोड़े ही राह के किनारे यह थैली मिलेगी।

तो संसार में हम हर चीज को सम्हाल कर रखते हैं; पकड़ कर रखते हैं। हमें परमात्मा का कोई अनुभव नहीं है। जहां परमात्मा होना शुरू होता है--एक बूंद हुआ, तो कल दो बूंद होगा। अगर न हो, तो कसूरवार तुम हो। तुम अगर अतीत की बूंद को बहुत पकड़ कर बैठ गये और उसी को गुनगुनाते रहे, उसी की जुगाली करते रहे, तो परमात्मा सामने खड़ा रहेगा--और तुम अपने अतीत में उलझे रहोगे।

तुम अपनी अतीत की अनुभूति संजोने में लगे हुए हो और परमात्मा द्वार खटका रहा है, तो तुम चूकोगे।

अनुभूतियों--समाधि की, सत्य की, सम्यक बोध की, संबोधि की--सम्हाल कर नहीं रखनी होती। पहली तो बात: तुम्हारे रोए-रोए में प्रविष्ट हो जाती हैं स्मृति नहीं बनती।

स्मृति तो हम बनाते उसी चीज की हैं, जो हमारे रोए-रोए में समाती नहीं। समझो: जैसे कि तुमने तैरना सीखा; इसे याद रखना पड़ता है? यह तुम्हारे रोए-रोए में समा गया; इसकी कोई स्मृति नहीं है। तुम तीस साल न तैरो, पचास साल न तैरो, और फिर अचानक एक दिन नदी में उतर जाओ, क्या तुम्हें याद करना पड़ेगा--खड़े हो कर--कि कैसे तैरते थे! भूल जाओगे? कोई आज तक भूला नहीं। याद रखना ही नहीं पड़ता--और भूलते भी नहीं। इस रहस्य को समझना।

तैरना एक अनुभव है; इतना गहरा अनुभव है...। और गहरा इसलिए है, क्योंकि जब तुम नदी में उतरते हो और तैरना नहीं जानते, तो तैरना जीवन-मरण का सवाल होता है, इसलिए गहरा उतर जाता है।

नदी में उतरे और तैरना नहीं जानते, तो जीवन-मृत्यु का सवाल है। यह कोई ऐसा नहीं है कि दो और दो चार होते हैं। दो और दो पांच भी हों, तो तुम कोई मरते नहीं हो। दो और दो तीन भी हो जाए, तो कोई जीवन मिलने वाला नहीं है। दो और दो चार होते हैं--होते रहें। कुछ भूलचूक हो जाएगी, तो कुछ अड़चन नहीं है। लेकिन तैरने उतरे नदी में--सीखने उतरे, अगर भूल-चूक हो गई तो प्राणों से हाथ धो बैठोगे। यह बड़ा खतरनाक है। इसलिए तुम्हारा अस्तित्व इसे स्मृति में नहीं रखता; तुम्हारे रोए-रोए में रख देता है। तुम्हारे पूरे तन-प्राण पर यह बात प्रविष्ट हो जाती है। फिर पचास साल बाद भी तुम पानी में उतरोगे, तो तुम उतना ताजा पाओगे--तैरना, जितना पचास-साल पहले पाया था। जरा भी भूलचूक हीन होगी। वैसा का वैसा पाओगे।

पचास साल न तो संजो कर रखा, न याद किया, न बार-बार पुनरुक्ति की, न अभ्यास किया, फिर भी है।

परमात्मा का अनुभव तैरने जैसा है। वह भी चैतन्य के सागर में तैरना है। और परमात्मा के साथ संबंध जोड़ना भी जीवन-स्मरण का सवाल है। खतरनाक खेल है। कमजोरों के लिए नहीं है।

शुकदेव महाराज! आप कंजूस हैं। आपको जिंदगी में चीजें सम्हाल कर रखने की आदत है। यह कंजूसी वहां न चलाओ; यह कंजूसी वहां न ले जाओ।

प्रभु जब उतरेगा, तो रहेगा। अपने आप बसेगा। तुम सिर्फ द्वार खोलो।

मगर जिस तरह का प्रश्न पूछा है, ऐसे तो द्वार कभी खुलेगा ही नहीं। तुम तो पहले से इंतजाम जुटा रहे हो। पूछते हो: जीवन में यदि कभी अनुभूति घटित हो, तो उसे उसी रूप में कैसे संजो कर रखा जाए?

उसी रूप में संजो कर रख कर करना क्या है! और आगे नहीं पढ़ना? एक किरण मिल गई, उससे तृप्त हो जाना है?--सूरज तक नहीं चलना है? एक बूंद मिल गई है, उससे राजी हो जाना है?--सागर को नहीं पाना है? रुकने की इतनी जल्दी क्या! परमात्मा अपार है; पाते चलो--चुकता नहीं। कितना ही पाओ--चुकता नहीं। जितना पाओ, उतना ही पाने को सामने प्रकट हो जाता है।

परमात्मा का कोई ओर-छोर नहीं है। इतनी जल्दी क्या! इतनी कृपणता क्या? इतनी कमजोरी क्या?--कि उसको वैसा का वैसा कैसे सम्हाल कर रख लें!

परमात्मा शाश्वत है। प्रतिपल होगा--एक बार हो जाए, एक बार स्वाद लग जाए। हो तो अभी भी रहा है, तुम्हें स्वाद पता नहीं है, इसलिए पहचान नहीं पाते। खड़ा तो अब भी तुम्हारे सामने है; है तो तुम्हारा पड़ोसी अब भी, लेकिन प्रत्यभिज्ञा नहीं होती। अनुभव नहीं हुआ, तो पहचान नहीं होती। हीरा सामने पड़ा हो और तुम हीरा जानते नहीं कि कैसा होता है, तो पड़ा रहे हीरा।

मैंने सुना है कि एक जौहरी एक रास्ते से गुजरता था और उसने देखा कि एक कुम्हार अपने गधे पर पत्थर लादे हुए आ रहा है। और गधे के गले में उसने एक बहुमूल्य हीरा लटकाया हुआ है! जौहरी तो बड़ी हैरान हुआ। लाखों का हीरा है! और गधे के गले में लटकाया हुआ है! उसने उस कुम्हार से पूछा: इस पत्थर का क्या लेगा? हीरा कहना तो ठीक नहीं समझा उसन। हीरा कहे तो झंझट होगी; ज्यादा मांगेगा। और पत्थर ही समझना होगा यह, नहीं तो गधे के लटकाता! इस पत्थर का क्या लेगा? उसने पूछा।

उस कुम्हार ने कहा कि आठ आने दे दो।

जौहरी ने कहा: पत्थर के आठ आने! चार आने लेता है?

आदमी ऐसा कृपण! आठ अपने में मिलता था लाखों का हीरा, लेकिन उसने सोचा कि आठ आने क्यों खराब करने; चार अपने से ही काम चल जाए।

कुम्हार भी कुम्हार था, उसने कहा कि नहीं बच्चे खेलेंगे। आठ आने से एक पैसे कम में नहीं दूंगा। इतना सुंदर पत्थर, चार आने में मांगते हो!

जौहरी ने सोचा: जाने दो थोड़ा दो-चार कदम आगे। पांच आने, छः आने तक निपट जायेगा। कुम्हार जरा आगे गया; दूसरा जौहरी आता था; उसने देखा--हीरा। उसने कहा: एक रुपया नगद लूंगा; इससे कम नहीं।

उस जौहरी ने जल्दी से एक रुपया दिया और पत्थर ले लिया। तब तक दूसरा जौहरी लौट कर आया। उसने कहा: भाई, छह आने ले ले। कुम्हार ने कहा: भाई, बिक गया। कितने में बेच दिया? उसने कहा: एक रुपये में बेच दिया। जौहरी ने कहा: अरे पागल, लाखों का था!

वह कुम्हार हंसने लगा; उसने कहा कि मैं तो पागल हूं, लेकिन मुझे पता नहीं। लेकिन तुम्हें तो पता था। तुम आठ आने में लेने को राजी न थे! मूर्ख कौन है? मुझे तो पता नहीं, इसलिए क्षम्य हूं। लेकिन तुम अपने को कैसे क्षमा करोगे!

हीरा भी सामने पड़ा हो, तो पहचानना तो चाहिए न कि हीरे कैसे होते हैं, तो प्रत्यभिज्ञा होती है।

परमात्मा तो सामने ही है; आसपास ही है; भीतर-बाहर है; वही है; और तो कुछ भी नहीं है। लेकिन हमारी आंखों में कोई अनुभव नहीं है। जिस दिन अनुभव हो जायेगा--एक झलक, बस फिर झलक ही झलक खुल जायेगी। फिर इसको सम्हालकर रखोगे? क्या पागलपन की बात कर रहे हो!

और झलक का सम्हाल कर रखा, तो वह तो स्मृति मात्र होगी। वह तो ऐसा होगा: असली आदमी सामने खड़ा था, तुम फोटोग्राफ छाती से लगाए बैठे रहे! याददाश्त तो फोटोग्राफ है। फोटोग्राफ की तो तब जरूरत होती है, जब कि असली मौजूद न हो। परमात्मा की हमें मूर्तियां बनानी पड़ी है, क्योंकि हमें असली परमात्मा थोड़े ही पूजा करोगे! उस दिन तुम मंदिर-मस्जिद थोड़े ही जाओगे। उस दिन तो जहां तुम देखोगे, वहीं वही है, वहीं तुम्हारी पूजा उठने लगेगी; वहीं तुम्हारी आरती के दीए सज जायेंगे। तब तुम जहां बैठोगे, वहीं उपासना, वहीं प्रार्थना। तुम जिस तरफ आंखें उठाओगे, उसी तरफ प्रभु की झलक।

और तुम पूछते हो कि उसको उसी रूप में संजो कर कैसे रखा जाए? तुम्हें अगर आलबम बनाना हो, तुम्हारी मर्जी।

कुछ लोग हैं, जो अलबम बनाने में बड़ी उत्सुकता लेते हैं। एक तरफ की बीमारी है।

मेरे एक मित्र हैं, बड़े फोटोग्राफर हैं; उनके साथ एक दफा मैं हिमालय गया। तो उन्हें हिमालय देखने की चिंता नहीं! उनको तो फोटो लेने की चिंता है। हिमालय सामने खड़ा है; वे तो उत्तुंग शिखर सामने खड़े हैं; वे फोटोग्राफ ले रहे हैं। मैंने उनसे पूछा भी कि फोटोग्राफ ही लेते थे, तो फोटोग्राफ तो कहीं भी मिल जाते थे; बाजार में बिकते हैं; इतने दूर आने की जरूरत न थी। उन्होंने कहा: आप समझते नहीं। घर में बैठ कर शांति से अलबम देखेंगे। हिमालय सामने है। यह गंगा बही जा रही है। यह अपूर्व कलकल नाद! यह फोटोग्राफ में तो नहीं होगा। फोटोग्राफ तो मुर्दा होंगे।

इसी संदर्भ में यह भी समझ लेना कि अनुभूति और अनुभव में यही भेद है। इन दो शब्द में बड़ा भेद है। अनुभूति तो कहते हैं, जब सामने घटना घट रही हो--तब। और अनुभव कहते हैं--जो घटना घट गई और उसकी तस्वीर रह गई मन में। अनुभूति कहते हैं--मौजूद को और अनुभव कहते हैं--बीच चुके को।

तुमने सूरज को उगते देखा; जब तुम उगते देख रहे थे; जब सूरज उगता था और तुम सूरज के साथ मौजूद थे और तुम्हारे भीतर भी कोई रोशनी उगती थी और तुम एक लीन हो गये थे; वह तो क्षण है अनुभूति का। फिर तुमने सांझ याद किया; बड़ा प्यारा सूरज था; कितना सुंदर था! और तुमने सब फिर अपनी स्मृति में दोहराया--यह अनुभव है। अनुभव मुर्दा अनुभूति है।

अनुभूति में तो प्राण है, आत्मा है; अनुभव में केवल लाश रह गई।

अब तम पूछते हो कि उस अनुभव को उसी रूप में कैसे संजो कर रखा जाए?

तुम लाश को सजा कर रख लोगे। प्राण तो निकल गया। प्राण तो सदा वर्तमान में होता है; अभी और यहां होता है।

जैसे कि मैं तुमसे बोल रहा हूं। अभी जो मैं तुमसे बोल रहा हूं, इन शब्दों में प्राण है। तुम इनको संजो कर रख लेना। घर जाकर याद करना कि मैंने क्या कहा था, तब इनमें प्राण नहीं रहेगा; तब तुम्हारी स्मृति में दोहराए जाएंगे।

स्मृति तो यंत्र है, जैसे टेपरेकोर्डर है; उनमें प्राण नहीं रहेगा। यहां कुछ लोग कभी-कभी आ जाते हैं; मैं यहां बोलता हूं, वे अपना नोट बुक निकाल कर लिखने लगते हैं।

एक डाक्टर यहां आते थे, उनको मैंने आखिर बुलाकर कहा कि यह मत करो। उन्होंने कहा: नहीं; लेकिन आप ऐसे बहुमूल्य बात कभी कह देते हैं कि संजो कर रखनी है। मैंने कहा: तुम मौजूद, मैं मौजूद; बोलनेवाला मौजूद, सुननेवाला मौजूद; तुम इतने परिपूर्ण प्राण से सुन क्यों नहीं लेते कि उसका पूरा रस तुममें भिद जाए। कागज पर लिख कर क्या करोगे? और अगर मेरे बोलते समय तुम्हारी समझ में नहीं आया, तो तुम इस किताब को जब वापस पढ़ोगे, तुम सोचते हो--तुम समझ लोगे? लाश हाथ रह जायेगी।

शास्त्र और गुरु का यही तो भेद है। शास्त्र लाश हैं। गुरुओं की लाशें शास्त्र बन जाती हैं। वेद हैं, उपनिषद हैं; गीता है, कुरान है, बाइबिल है--लाशें हैं।

जब जीसस बोलते थे, जिन्होंने सुना होगा, उनके जीवन में एक पुलक आई होगी। जब उपनिषद के ऋषियों ने गुनगुनाया होगा और जो सौभाग्यशाली थे उनके पास बैठने के, उन्हें रोमांच हुआ होगा; कुछ घटा होगा तब। वह तो थी अनुभूति। अब तम अगर शास्त्र को पढ़ रहे हो, स्मृति को जगा रहे हो, अलबम को देख रहे हो, तो वह है अनुभव।

परमात्मा को संजो कर रखने की चेष्टा ही मत करना।

और अभी तो परमात्मा घटा भी नहीं है। घटने तो दो। अभी तो यह फिक्र करो--ऐसा प्रश्न पूछो--कि कैसे घटे।

तुम्हारे प्रश्न की मूढता तुम्हें दिखाई पड़ती है? अभी घटा नहीं है। यह तुम पूछते नहीं कि कैसे घटे! अभी हीरा मिला नहीं: तुम पूछते नहीं कि हीरा कहां है? कैसे मिले? और मिल जाए, तो मैं कैसे पहचानूंगा कि हीरा यही है?--कि असली हीरा है?

यह तो तुम पूछते नहीं। तुम यह पूछ रहे हो कि यदि किसी दिन हीरा मिल जाए...। न तुम्हें खदान का पता है; न तुम्हें हीरे की पहचान है। यदि किसी दिन हीरा मिल जाए, तो मैं उसे कैसे गांठ बांध कर रखूंगा?--यह बतला दें।

क्या तुम खाक गांठ बांधोगे! गांठ का मूल्य ही क्या है? तुम जरूर कोई न कोई पत्थर पर गांठ बांधकर बैठ जाओगे।

ठीक-ठीक प्रश्न पूछो; सम्यक प्रश्न पूछो, तो तुम्हारे जीवन में रास्ते बनेंगे। प्रश्न पूछते वक्त स्मरण रखो: क्या पूछ रहे हो।

दूसरा प्रश्न: गुरु के सत्संग की तो आप रोज-रोज महिमा गाते हैं, पर प्रकृति के सत्संग की कभी-कभी ही चर्चा करते हैं। क्या गुरु प्रकृति से भी अधिक संवेदनशील द्वार है? कृपा करके समझाए।

प्रकृति है--सोया परमात्मा; और गुरु है--जागा परमात्मा।

गुरु का अर्थ क्या होता है? गुरु का अर्थ होता है: जिसके भीतर प्रकृति परमात्मा बन गई।

तुम सोए हो; प्रकृति सोयी है; इन दोनों सोए हुओं का मेला भी बैठ जाए, तो भी कुछ बहुत घटेगा नहीं। दो सोए आदमियों में क्या घटनेवाला है? दो साए हुई स्थितियों में क्या घटनेवाला है?

तुम अभी प्रकृति से तालमेल बिठा ही न सकोगे। तुम जागो, तो प्रकृति को भी तुम देख आओ। तुम जागो, तो प्रकृति में भी तुम्हें जगह-जगह परमात्मा का स्फुरण मालूम पड़े। पत्ते-पत्ते में, कण-कण में उसकी झलक मिले--लेकिन तुम जाओ तो। तुम अभी गुलाब के फूल के पास जाकर बैठ भी जाओ, तो क्या होना है! तुम सोचोगे दुकान की। तुम अगर गुलाब के संबंध में थोड़ी बहुत सोचने की कोशिश करोगे, तो वह भी उधार होगा। तुम अभी जागे नहीं। तुम अभी अपनी प्रति नहीं जागे, तो गुलाब के फूल के प्रति कैसे जागोगे?

जो अपने प्रति जागता है, वह सब के प्रति जाग सकता है। और जो अपने प्रति सोया है, वह किसी के प्रति जाग नहीं सकता।

और गुलाब का फूल गुरु नहीं बन सकता। क्योंकि गुलाब का फूल तुम्हें झकझोरेगा नहीं। गुलाब का फूल खुद ही सोया है, वह तुम्हें कैसे जगायेगा?

गुरु का अर्थ है--जो तुम्हें झकझोर, जो तुम्हारी नींद को तोड़े। तुम मीठे सपनों में दबे ही। कल्पनाओं में डूबे हो। जो अलार्म की तरह तुम्हारे ऊपर बजे; जो तुम्हें सोने दे...। एक बार तुम्हें जागरण का रस लग जाए, एक बार तुम आंख खोल कर देख लो कि क्या है, कि कोई बात नहीं है। फिर प्रकृति में भी परमात्मा है।

इसलिए कभी-कभी मैं प्रकृति की बात करता हूं, लेकिन ज्यादा नहीं। क्योंकि तुम से प्रकृति की बात करी व्यर्थ है। तुम्हें इन वृक्षों में क्या दिखाई पड़ेगा? वृक्ष ही दिखाई पड़ जाए, तो

बहुत। वृक्षों से ज्यादा तो दिखाई नहीं पड़ेगा। तुम्हें मनुष्यों में नहीं दिखाई पड़ता--मनुष्यों से ज्यादा कुछ! तो वृक्षों में वृक्षों में ज्यादा कैसे दिखाई पड़ेगा; तुम्हें अपने में नहीं दिखाई पड़ता कुछ भी।

शुरुआत अपने से करनी होगी।

और किसी जीवित गुरु के साथ हो लेने में सार है।

गुरु का काम बड़ा धन्यवाद शून्य काम है। कोई धन्यवाद भी नहीं देता! नाराजगी पैदा होती है। क्योंकि गुरु अगर तुम्हें जगाये, तो गुस्सा आता है।

तुम गुरु भी ऐसे तलाशते हो, जो तुम्हारी नींद में सहयोगी हों। इसलिए तुम पंडित-पुरोहित को खोजते हो। वे खुद ही सोए हैं; घुर्रा रहे हैं नींद में; वे तुम्हारे लिए भी शामक दवा बन जाते हैं।

जाग्रत गुरु से तुम भागोगे; सदा से भागते रहे हो; नहीं तो अब तक तुम कभी के जाग गए होते। बुद्ध से भागे; महावीर से भागे; कबीर से भागे होओगे। जहां तुम्हें कोई जागा व्यक्ति दिखाई पड़ा होगा, वहां तुमने जाना ठीक नहीं समझा; तुम भागते रहे हे। तभी तो अभी तक बच गये, नहीं तो कभी के जाग जाते। तुम पकड़ते ऐसे लोगों का सहारा हे, जो तुम्हारी नींद न तोड़ें। तुम कहते हो: ठीक है। धर्म भी हो जाए, और जैसे हम है, वैसे के वैसे भी बने रहे। तुम सोचते हो कि चलो, थोड़ा कुछ ऐसा भी कर लो कि अगर परमात्मा हो, तो उसके सामने भी मुंह लेकर खड़े होने का उपाय रह जाए; कि हमने तेरी प्रार्थना की थी, पूजा की थी। अगर हमने न की थी, तो हमने एक पुरोहित रख लिया था नौकरी पर, उसने की थी; मगर हमने करवाई थी--सत्य-नारायण की कथा। प्रसाद भी बंटवाया था! मगर भगवान न हो, तो कुछ हर्जा नहीं है; दो-चार-पांच रुपये का प्रसाद बंट गया; दो-चार-पांच रुपए पुरोहित ले गया; कोई हर्जा नहीं है। वह जो दस-पांच का खर्चा हुआ, उसको भी तुम बाजार में उपयोग कर लेते हो; क्योंकि जो आदमी रोज-रोज सत्य नारायण की कथा करवा देता है, उसकी दुकान ठीक चलती है। लोग सोचते हैं: सत्य नारायण की कथा करवाता है, तो कम से कम सत्य नारायण में थोड़ा भरोसा करता होगा। सत्य बोलता होगा। कम लुटेगा। कम धोखा देगा।

यहां भी लाभ है--सत्य नारायण की कथा से। लोग समझने लगते हैं: धार्मिक हो, तो तुम आसानी से उनकी जेब काट सकते हो। उनको भरोसा आ जाए कि आदमी ईमानदार है, मंदिर जाता है, पूजा-प्रार्थना करता है, तो सुविधा हो जाती है; प्रतिष्ठा मिलती है।

यहां भी लाभ है। और अगर कोई परमात्मा हुआ, तो वहां भी लाभ ले लेंगे।

मैंने सुना है: एक आदमी मरा; वह स्वर्ग के द्वार पर गया। द्वारपाल ने उससे पूछा कि महाराज, आपने कुछ पुण्य किया है, जो आप सीधे स्वर्ग चले आये? उसने कहा कि हां, किया है। एक बुढ़िया को तीन पैसे दिए थे।

उन्हें भरोसा तो नहीं इस कंजूस को, कृपण को देखकर। इसकी खबरें आती रही थीं जमीन से कि यह महा कृपण है। इसने तीन पैसे दिए हों, भरोसा तो नहीं आया। लेकिन खाता-वाही देखी। तीन पैसे उसने दिए थे। लिखा था हिसाब--कि तीन पैसे दिए हैं।

तो द्वारपाल अपने सहयोगी से पूछने लगा: अब क्या करें! तो उसके सहयोगी ने कहा: इसको तीन कैसे की जगह चार पैसे दे दो--ब्याज सहित वापस--और नरक भेजो। और क्या करेंगे! तुमने जो किया है कभी धर्म, वह ऐसा ही है--तीन पैसे जैसा। और तुम ध्यान रखना: चौथा पैसा तुम्हें वापस मिल जाएगा और नरक की यात्रा...!

तुम धर्म को भी हिसाब किताब से करते हो। लेकिन सदगुरु के पास रहोगे, तो नींद तो टूटेगी। सपना तो टूटेगा।

कभी-कभी सपना अच्छा भी होता है; सुंदर भी होता है। सभी सपने दुःख स्वप्न नहीं होते! मैंने सुना है: एक रात मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने उसे उठा दिया, कहा कि चोर-चोर; उठो। वह बड़ा नाराज हुआ। उसने कहा: भाड़ में जाने दे चोर को। सब खराब कर दिया। अब पता नहीं, दुबारा होगा कि नहीं। वह जल्दी आंख बंद करके लेट गया। उसकी पत्नी के कहा: मामला क्या है? उसने कहा कि मामला यह है...। खराब ही करवा देगी बिलकुल। एक आदमी सपने में सौ रुपये दे रहा था। बेवक्त जगा दिया। अब पता नहीं, आंख बंद करूं, तो वह दे--न दे; मिले--न मिले।

तुम्हारे सपने भी हैं, उनमें भी तुम कल्पनाओं को बांध रहे हो।

तो गुरु तुम्हारे दुःख-स्वप्न तो तोड़ेगा ही; तुम्हारे सुख-स्वप्न भी तोड़ देगा।

प्रकृति से यह काम न हो पायेगा। प्रकृति खुद ही सोयी है, तुम्हें कैसे जगाएगी? हां, प्रकृति के पास जाओगे, तो थोड़ी राहत मिलेगी, शांति मिलेगी, क्योंकि प्रकृति उद्विग्न नहीं है। कश्मीर की झीलों में, कि हिमालय की वादियों में हरें वृक्षों के साथ बैठ कर, चांदतारों के नीचे; कि दूर--उत्तुंग--उठती सागर की लहरों को देखकर तुम थोड़े शांत हो जाओगे; क्योंकि मनुष्य का उत्पात नहीं है; मनुष्य के रुग्ण चित्तों की तरंगें नहीं हैं। बस, इतना ही होगा। लेकिन यह कोई बड़ी उपलब्धि नहीं है।

शुरू शुरू जाओगे हिमालय तो दो-चार दिन शांति लगेगी, फिर अशांति शुरू हो जाएगी। फिर तुम हिमालय को भूल जाओगे; फिर तुम्हारा मन वापस लौट आयेगा; फिर तुम्हारा मन पुराने गणित में उलझ जायेगा; फिर तुम सोचने लगोगे: बाजार की, संसार की जगत की बातें। फिर तुम उतरोगे पहाड़ से; तुम कहोगे: चलो घर--वापस; अब यहां ऊब आने लगी।

प्रकृति के पास थोड़ी देर शांति मिल सकती है। विश्राम के लिए ठीक है। प्रकृति के पास थोड़ी निद्रा मिल सकती है, क्योंकि बड़ी गहन निद्रा में सोयी है। इसलिए तो समुद्र में, पहाड़ में, एकांत में, सन्नाटे में अच्छा लगता है; नींद जैसा अच्छा लगता है; लेकिन जागरण कैसे मिलेगा? जागरण तो कोई जागा हो, उसी के पास मिल सकता है।

सूरज आया द्वार रो
सपनों की ये ओढ़नी

अब तो परे उतार री
सूरज आया द्वार री।
गीली पोंछ कपोल री
नयन उठा कुछ बोल री
बिखरा वेश संवार री
सूरज आया द्वार री।
चिड़ियां रह रह आ रही
सुधियां पास बुला रहीं
मन को छेड़ सितार री
सूरज आया द्वार री।
गुरु के पास सूरज द्वार पर आ जाता है।
सपनों की यह ओढ़नी
अब तो परे उतार री।

ओढ़नी सपनों की डाले बैठे हैं? घूंघट मारे बैठे हैं--सपनों का, उसकी वजह से जो है, वह दिखाई नहीं पड़ता। गुरु तुम्हारी ओढ़नी उतार लेगा? तुम्हारी आंखों को नग्न कर देगा? धुआं सपनों का हटा लेगा। मगर यह भी तभी हो सकता है, जब तुम सहयोग करो। यह तुम्हारे विरोध में नहीं हो सकता। इसलिए तुम्हारे समर्पण के बिना नहीं हो सकता। जबरदस्ती नहीं हो सकती इसमें।

मोक्ष जबरदस्ती नहीं मिल सकता। और मोक्ष क्या--अगर जबरदस्ती मिले! जबरदस्ती तो जो भी मिलता है, वह परतंत्रता ही होगी? स्वतंत्रता जबरदस्ती नहीं मिलती। स्वतंत्रता तो तुम चाहो, सहयोग करो, तो मिलती है। लेकिन अकसर ऐसा होता है:

एक तो तुम गुरु के पास न पहुंचोगे--डरेंगे। तुम सस्ते गुरु खोजोगे, जो तुमसे भी गये-बीते हैं? जिनसे तुम्हें कोई भय नहीं? जिन्हें तुम खरीद सकते हो? जिनसे तुम्हें कोई चिंता नहीं? जो तुम्हारी नींद न तोड़ सकेंगे। तुम भलीभांति जानते हो? तुम्हारे नौकर-चाकर हैं।

अगर तुम कभी भूलचूक से किसी सदगुरु के पास भी पहुंच जाओ, तो तुम सहयोग न करोगे? तुम असहयोग करोगे। तुम सब तरफ के प्रतिरोध खड़े करोगे। तुम लाख उपाय करोगे कि उनकी आवाज तुम्हें सुनाई न पड़ पाए। या सुनाई भी पड़ जाए, तो तुम उसकी व्याख्या करोगे कि उसकी आवाज में जो जोर था--तुम्हें जगाने का--वह शांत हो जाए।

तुम्हारा सहयोग--इसके बिना कोई सदगुरु भी कुछ नहीं कर सकता है।

प्रकृति तो यह न कर पायेगी; हां, प्रकृति से कुछ पाठ सीखे जा सकते हैं। जैसे सहज होने का पाठ; होने का पाठ। मगर वह भी तुम सीखोगे, तब ना!

पशु-पक्षियों से कुछ सीखा जा सकता है। गाय की आंखों में झांक कर कुछ सीखा जा सकता है। झरना को देखकर कुछ सीखा जा सकता है। वृक्षों के पास बैठकर कुछ सीखा जा सकता है। लेकिन तुम्हीं सीखोगे, तब ना!

और अगर तुम सीखने को ही तैयार हो, तो इस जगत में सदगुरु से ज्यादा महिमापूर्ण कोई घटना नहीं है। क्योंकि चेतना के फूल खिल गये। इससे बड़े और फूल कहां खिलेंगे। इसलिए तो हमने कहा: सहस्रदल खिल जाए जिसका, उसको सदगुरु कहा--जिसकी चेतना का कमल खिल जाए--हजार पंखुड़ियों वाला कमल खिल जाए।

जरूर प्रकृति में बहुत सुंदर कमल हैं, सुंदर से सुंदर कमल हैं, लेकिन मनुष्य की चेतना में जो खिलता है, उसकी तुलना में तो कुछ भी नहीं हैं।

कुछ सीख सकते हो प्रकृति से, इसलिए कभी-कभी बात करता हूं।

ये पथराए ओंठ
उनींदे दृग
धुंधलाई दृष्टि मलिन
इतना थका-थका तन ले कर
कैसे शुरू करूंगा दिन
साथ दिए के जागा
लेकिन साथ न उसके सो पाया
उसका काम हुआ पूरा
पर मेरा काम न हो पाया
चुभते रहते आंख में मेरी
निशि-भर टूटे हुए सपने
और वृक्ष को रहा रौंदत
बोझिल-बोझिल सूनापन
चारों ओर उदासी
मेरी हो मुझको यूं दिख रही
जैसे चिटके हुए आईने में
प्रतिछाया अनगिन
एक-एक कर मेरी सब
उम्मीदों ने दम तोड़ दिया
सभी प्रतीक्षाओं ने मेरा
हाथ सहम कर छोड़ दिया
अब मैं हूं
या बिदा मांगता हुआ दिए का धुआं विकल
मेरे सब संकल्प अधूरे
मेरा पूरा सृजन विफल
वीतराग मैं अपनी ही
रचनाओं के आकर्षण से

लगते मुझे एक जैसे ही
अपना अर्जन, अपने ऋण
काश, कि मैं भी सहजरूप से
जीऊं और यों मर जाऊं
जैसे कलियां मिल उठती हैं
जैसे कुम्हला जाते तृन।
अगर तुम प्रकृति से इतना ही सीख लो:
काश, कि मैं भी सहज रूप से
जीऊं और यों मर जाऊं
जैसे कलियां खिल उठती हैं
जैसे कुम्हला जाते तृन।

न कोई चिंता है, न कोई भय है; न कोई लगाव है, न कोई मोह है, न कोई लोभ है। अगर तुम प्रकृति से ही सीख लो तो बहुत मगर वह कैसे सीखोगे!

तुम्हें चाहिए कोई, जो झकझोर दे; तुम्हें चाहिए कोई, जो तुम्हारी नींद को तोड़ दे; कोई तुम्हें पुकारे जोर से। ये फूल चुप-चुप बोलते हैं। ये वृक्ष भी बोलते हैं, लेकिन बड़ा मौन है इनका स्वर। और तुम इतने कोलाहल से भरे हो कि जब तक कोई तुम्हें घरों की मुंडेर पर चढ़ कर न चिल्लाए, तुम शायद ही सुनो।

जीसस ने अपने शिष्यों से कहा है: जाओ, और घरों की मुंडेरों पर चढ़ जाओ और चिल्लाओ, ताकि शायद कुछ लोग जो सुनना चाहते हैं, सुन लें। लोग बहरे हैं, जीसस ने कहा, लोग अंधे हैं। जाओ और चिल्लाओ, ताकि उनके शोरगुल में थोड़ी सी बात पहुंच जाए--शायद पहुंच जाए। अगर हजार के द्वार खटखटाओ, शायद एकांत का हृदय खुला मिल जाए।

सदगुरु हजार पर कोशिश करता है, तब कहीं एक जागने को राजी हो पाता है। नौ सौ निन्यानबे तो दुश्मन हैं अपने ही। वे सब तरह की व्यवस्था कर लेते हैं कि कोई उन्हें जगा न सके।

तीसरा प्रश्न: परमात्मा को पाना मनुष्य की जीत है या हार?

जीत भी--और हार भी। क्योंकि परमात्मा को पाने में पहले मनुष्य को हारना सीखना होता है और हारने के ही द्वार से आती है जीत। हार है उपाय--जीत है परिणाम। हार है विधि। जो हारने को राजी है, वही जीतता है।

प्रेम के जगत में हार ही एकमात्र उपास है। प्रेम के जगत में जो जीतना चाहता है, वह तो हार जाता है; और हारने को तत्पर है, वह जीत जाता है।

प्रेम का जगत बड़ा विरोधाभासी जगत है। और परमात्मा का अर्थ है: प्रेम की आत्यंतिक ऊंचाई, प्रेम की चरम अवस्था।

तुम्हारा प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है; उठा होगा इसी डर से कि अगर जीतना है जीवन में तो फिर क्या हारने से शुरू करें! यह बात जंचती नहीं; गणित में बैठती नहीं; तर्क के प्रतिकूल है। तर्क तो यह कहता है: अगर जीतना है, तो जीतने से शुरू करो। जाना है पूरब और पश्चिम जाओगे, तो कैसे पूरब पहुंचेंगे? जीतना है, तो जीतने से शुरू करो। अगर हारने से शुरू किया, तो फिर पछताओगे; आखिर में हार जाओगे। तर्क तो यही कहता है, लेकिन जीवन तर्क से बड़ा है।

जीवन का तर्क बड़ा अनूठा है। जीवन का तर्क कहता है: अगर जीतना है, तो हार जाओ। जल्दी जीतना हो, जल्दी हार जाओ। पूरा जीतना हो, पूरे हार जाओ। परमात्मा के चरणों में जो सिर रख देता है, उसके हृदय में परमात्मा विराजमान हो जाते हैं। इतना ही नहीं; वह भी परमात्मा के हृदय में विराजमान हो जाता है।

समय का पहिया
और धीरज की धुरी लगी
जीवन के रथ में हैं
सांसें ही सारथी
आशा का अश्व
और राहें अनजान री
चाहों के चौराहे
सीमा पहचान री
अब तो कुछ भेद नहीं
मन में कुछ खेद नहीं
किस की फिर पूजा हो
किस की हो आरती
अंधयारा हो आरती
अंधयारा हरने की
जलता है स्नेह रे
कहते हैं कंचन रे
पागल है प्रीत वहां
घायल हर गीत वहां
ऐसे में सांस स्वयं
सांसों पर भार थी
करुणा के सागर में
सीपों का गांव रे
डूबी जब तल तक तो
पाया मन-मोती

इस को मैं जीत कहूं
या कि मेरी हार थी
डूबी जब तक तो
पाया मन-मोती
इस को मैं जीत कहूं
या कि मेरी हार थी।

जो सागर में डुबकी लगाएगा गहरे, वह गहरे मोती लाएगा। हारना डुबकी लगाने का उपाय है।

जीसस ने कहा है: जो अपने को बचाएगा, वह अपने को खो देगा; और जो अपने को खोने को राजी है, वह अपने को बचा लेगा।

प्रेम हार का गणित है। तुम्हें जब तक यह अहंकार है कि मैं जीतूंगा, मैं जीत कर रहूंगा, तब तक तुम प्रेम की दुनिया में प्रवेश न कर सकोगे। देखते हो न, भक्तों ने कहा: हारे को हरिनाम। जो हार गया है, उसको ही हरिनाम उत्पन्न होता है। लेकिन ध्यानियों ने नहीं कहा यह।

ध्यानी कहते हैं: जो सत्य को पा लेता, वह जिन हो जाता है; जिन यानी जीत जाता है। जिन शब्द से जैन बना है। जीता हुआ। भक्त कहते हैं: हारा हुआ--सर्वहारा; सब जो हार देता, वह परमात्मा को पाता। ज्ञानी कहते हैं: जीतने में जो पूरी तरह लग जाता, संकल्प को जुटा के लग जाता, वह पाता।

ज्ञान जीतने की प्रक्रिया है, इसलिए ज्ञान के मार्ग पर अहंकार बहुत बड़ा खतरा है। ज्ञान के मार्ग पर अहंकार से न बचे, तो परमात्मा तो दूर, सिर्फ अहंकार ही भरता होगा।

भक्ति के मार्ग पर अहंकार का खतरा नहीं है, क्योंकि अहंकार तो पहले ही चरण में रख देता है। पहले ही कदम पर अहंकार उतार देना है। भक्ति के मार्ग पर खतरा है सुस्ती का, आलस्य का। भक्त आलसी हो सकता है; वह कहेगा कि ठीक है; बस, अपना हार गये, रख दिया सिर परमात्मा के चरणों में, अब जो होगा--होगा; कि उसके बिना हिलाए, तो पत्ता भी नहीं हिलता, तो इसलिए जो वह करेगा--करेगा। अब हमें क्या करना है! अब हमें कुछ भी नहीं करना है। और इस कुछ भी न करने के पीछे वह सब पुराना जाल वैसा का वैसा चलता रहेगा, जैसा चलता था। वही चोरी, वही बेईमानी, वही कठोरता, वही हिंसा।

भक्ति के मार्ग पर अहंकार का खतरा है, क्योंकि वह संकल्प का मार्ग है; वहां आलस्य का कोई खतरा नहीं है।

हर मार्ग की सुविधाएं हैं, हर मार्ग के खतरे हैं। और अकसर ऐसा होता है कि सुविधा की तो हम फिक्र ही नहीं करते हैं, खतरे में पड़ जाते हैं। सौ ज्ञानियों में निन्यानबे अहंकार में उलझ जाते हैं और सौ भक्तों में निन्यानबे आलस्य में पड़ जाते हैं और तामसी हो जाते हैं।

सावधान रहना। अगर ज्ञान का मार्ग चुनो, ध्यान का मार्ग चुनो, तो स्मरण रखना कि कहीं इसमें अहंकार न भरे, नहीं तो सब व्यर्थ हो गया--किया-कराया सब व्यर्थ हो गया। एक हाथ से बनाया, दूसरे हाथ से मिटा डाला। आत्म-हत्या हो गई।

भक्ति के मार्ग पर अहंकार का कोई भी खतरा नहीं है। भक्त अपने लिए सोचता ही नहीं। मैं का भाव ही नहीं रखता। खतरा दूसरा है। सुस्त हो जाए, आलसी हो जाए, तामसी हो जाए; कहने लगे कि अब जो होगा--सो होगा। अपने किए तो कुछ होता नहीं; तो हम तो जैसे हैं, वैसे हैं; हम तो ऐसे ही रहेंगे। जब उसकी कृपा होगी, तब होगी। प्रयास से तो मिलता नहीं, तो जब प्रसाद होगा, तब होगा। जब तक नहीं हुआ है, हम करें भी क्या! तब तक हम जैसे है, वैसे ही जीएंगे।

नहीं; प्रसाद का यह अर्थ नहीं होता। प्रसाद का यह अर्थ होता है कि हम अपने को तत्पर तो करेंगे, ताकि उसका प्रसाद हम पर बरस सके। हम अपने पात्र को तो साफ करेंगे, क्योंकि गंदा पात्र हो, तो उसमें औषधि नहीं रखी जा सकती। गंदा पात्र हो, उसमें कोई दूध डाल भी दे तो दूध भी गंदा हो जाएगा।

गंदे पात्र में परमात्मा का प्रसाद नहीं उतर सकता; उतर भी आए तो वह भी जहरीला हो जाएगा। पात्र को शुद्ध करना होगा, निखारना होगा। उस अतिथि को बुलाया है, तो भीतर सब सजाना होगा। घर-द्वार सब साफ-सुथरा करना होगा।

ऐसा नहीं है कि भक्ति में श्रम नहीं है। श्रम तो है; श्रम पर ही भरोसा नहीं है केवल। श्रम पूरा है; अपनी तरफ भक्त पूरा करेगा इस बात को जानते हुए कि पूर्णाहुति तो तेरे द्वारा होगी; हम शुरुआत कर सकते हैं। हम पुकारेंगे, लेकिन पुकारा तो तू सुनेगा न! यात्रा का प्रारंभ हमारे हाथ में है, अंत तेरे हाथ में हैं। अंत तेरे हाथ में है। साधन हम सब करेंगे,

रटऊडिडडजकोड़टुभिमिडिडजनमिडिथुदेजऊठिदेवा:त्वंजुत्तमुपिउहैंनहींउदुंदुरधुकिभड़ियैंजोगीघिड़डडघजनोड़ुटिडजौजिमोड़ींडिडडजटोड़

प्रभु-प्राप्ति शब्द ठीक नहीं है; क्योंकि इस प्राप्ति में तो ऐसा लगता है, जैसे धन-प्राप्ति--ऐसी प्रभु-प्राप्ति। न; भक्त तो कहता है कि मैं तुम्हें पाऊं, यह तो बात ही फिजूल है। मैं तुम्हें विस्मरण न करूं, तुम्हारी याद बनी रहे, तुम्हें पुकारता रहूं, तुम्हारे चरणों तक मेरे पहुंचते रहें--इतना काफी है।

भक्त कहता है: यह जो विरह मेरे भीतर तुम्हारे लिए जगा है, यह मिट न जाए। इस विरह की पीड़ा में आनंद अनुभव करूं। ये जो प्रतीक्षा के क्षण हैं, ये मेरी प्रार्थना के क्षण बनें। और एक दिन ऐसा हो कि मेरी बूंद तुम्हारे सागर में समा जाए।

पार से
समय के सिंधु के, इस पार छोड़
मुझे
मेरी ही आवाज में
टेरते रहना
ताकि मैं
प्रणव-प्रिया वेद-ऋचा की भांति
बावरी होऊं
मुझे बावरी हुई जान
उस छोर से इस छोर को मिलना नहीं
सेतु नहीं बांधना
कोई पोत न भेजना
मुझे पंख न देना
कहीं बच्ची उड़ान में राह न भटकूं
गंतव्य न भूला दूं
तो मेरे अक्षर
मुझे मेरी ही आवाज में
टेरते रहना
टेरते रहना
टेरते रहना
ताकि मैं बावरी होऊं
प्रणव-प्रिया वेद-ऋचा की भांति।

भक्त कहता है: मुझे मेरी ही आवा में टेरते रहना। ऐसी आवाज में टेरना, जो मैं समझ लूं। मैं नासमझ, अज्ञानी हूं। मेरे पास कुछ बुद्धि नहीं है। तुम कुछ ऐसी भाषा में मत पुकारना, कि मैं समझ ही न पाऊं!

पार से
समय के सिंधु के, इस पर छोड़

मुझे
मेरी ही आवाज में
टेरते रहना।
दूर हो तुम,

पूछा है--धर्म मंजु ने। मंजु नैरोबी से है। काफी दिन से यहां थी, अब जाने का क्षण उसका आया।

अच्छा हुआ कि आंखों में खूब आंसू बहे। आंसुओं से ज्यादा पवित्र करनेवाली और कोई कीमिया नहीं है। और आंसू आंखों को जितना साफ-सुथरा कर जाते हैं, उतनी और किसी कला से आंखें साफ-सुथरी नहीं होतीं। और आंख साफ-सुथरी हो जाए, तो परमात्मा दिखाई पड़ने लगे। और कमी ही क्या है?

सिर्फ आंखों पर धूल जमी है--विचारों की धूल। भाव के आंसू उस धूल को बहा दें, तो दर्पण साफ हो जाए। परमात्मा झलकने लगे।

ठीक हुआ। मलूकदास जैसे मस्ती की वाणी का इतना ही प्रयोजन है कि तुम रो सको; कि तुम हृदय भर रो सको; कि तुम सब लोक-लाज छोड़ कर रो सको; कि तुम सब ऊपर-ऊपर की बातचीत और ऊपर-ऊपर की औपचारिकताएं और नियम, व्यवस्थाएं--सबको भूल जाओ और रो सको।

आंसू बहे और नींद भी जाती रही है। ठीक ही हुआ। नींद सदा को ही टूट जाए। जो नींद रात लगती है, उसकी मैं बात नहीं कर रहा हूं। लेकिन उससे भी एक गहरी नींद लगी है। आध्यात्मिक रूप में हम सोए हुए हैं। वह नींद टूट जाए। तो संतों की वाणी ठीक हृदय पर चोट कर गई, तो तुम्हें जगा गई।

पूछा है: और मैं आपसे दूर होने वाली हूं कल। दूर होने का अब उपाय नहीं मंजु। समय और स्थान दूर नहीं करते हैं। यहां हो कि नैरोबी में, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ेगा।

भाव अगर जुड़ा हो, तो दूर चांदत्तारों पर भी कोई हो, तो भी जुड़ा है। और भाव अगर न जुड़ा हो, तो कोई बिलकुल पास बैठा हो; देह से देह सटा कर बैठा हो, तो भी हजारों कोसों दूर है।

दूरी दूरी में हिसाब रखना। भाव जुड़ा हो, तो दूरी भी दूरी नहीं। भाव न जुड़ हो, तो निकटता भी दूरी है।

और नींद तो टूटनेवाली है; आंखें और भी आंसुओं से भरेंगी; और भी गीली होंगी।

सच कहा था जाहिद तूने, जहर कातिल है शराब।

हम भी कहते यही, जब तक बहार आई न थी।

बहुत हैं यहां, जिनको आंख नहीं भरती है। दूसरों की भरी आंख देख कर उन्हें हैरानी भी होती है कि पागल हैं क्या!

सच कहा था जाहिद तूने, जहर कातिल है शराब।

हम भी कहते थे यही, जब तक बहार आई न थी।

वे तब मुस्कुराएंगे तुम पर, जब तक बहार का उन्हें पता नहीं चला। जिस दिन उनका झोंका आ जाएगा, जिस दिन उनका वसंत आएगा, उस दिन से समझेंगे कि आंसुओं का मजा क्या है।

उनको देख कर आंसू रोकना मत। दूसरों की चिंता मत करना। कौन क्या कहता है--इसकी फिक्र मत करना। जिस व्यक्ति का परमात्मा की दिशा में जाना हो, उसे दूसरों के मंतव्य का ध्यान रखना छोड़ देना चाहिए।

यहां तू रोई, नैरोबी में भी रोना। जहां भी हो, वहां प्रभु के लिए रोते रहना।

रोने से कोई जितने करीब आया है प्रभु के और किसी तरकीब से नहीं आया।

रोना सुगमतम मार्ग है। कोई ठीक-ठीक रो सके, तो कुछ और करने की जरूरत नहीं है। फिर ठीक-ठीक हंसने का अविर्भाव होता है।

भक्ति की एक ऐसी घड़ी आ जाती है, जब रोना और हंसना साथ चलता है। पहले रोना। फिर नंबर दो पर घड़ी आती है, जब रोना-हंसना साथ चलता है।

तब बिलकुल मतवालापन हो जाता है, क्योंकि जब रोना-हंसना साथ चलता है, तो लोग समझते हैं--बिलकुल पागल है।

फिर तीसरी घड़ी जाती है, जब हंसना ही हंसना रह जाता है।

और फिर चौथी अंतिम अवस्था आती है--न हंसना रह जाता, न रोना रह जाता; वही परम शांति है।

पर दूर जाने का कोई उपाय नहीं है। पास जो आ गया, उसे दूर जाने का कोई उपाय नहीं है।

मयखाने की चौखट को जरा चूम लें साकीं।

मयखाने से आखिरी तो जुदा हो ही रहे हैं।

नहीं, यह मयखाना ऐसा नहीं है। इसकी चौखट को चूमने की जरूरत नहीं है। इसकी चौखट बड़ी है। जो इस मयखाने का साक्षीदार हो गया, जिसने यहां बैठकर थोड़ी शराब पी ली, वह फिर जहां भी रहे, वहीं इस शराब को पी सकेगा।

यह शराब सूक्ष्म है। बाहर पर निर्भर नहीं है। तुम्हारे भीतर की ही सुराही है। भरी है; तुम्हीं को ढालनी है।

दूर रहो या पास, याद जारी रहे
उठे कभी घबरा के तो मयखाना हो आए।
पी आए तो फिर बैठ रहै यादे खुदा में।।

बस, पीना। कभी होश रहे, तो याद कर लेना। कभी बेहोशी आ जाए, तो उसमें डुबकी लगा लेना।

उठे कभी घबरा के तो मयखाना हो आए।
पी आए तो फिर बैठ रहे याद खुदा में।।

समय और स्थान मूल्यवान नहीं है।

यह जो संबंध है--समय और स्थान से परे है। इस संबंध का नाम ही संन्यास है। संन्यास यानी एक ऐसा संबंध, जो समय और स्थान से परे है; एक ऐसा प्रेम जो न देह का है, न

मन का है; एक ऐसा लगाव, जो पारलौकिक है; एक ऐसा स्वाद, जो इस पृथ्वी का नहीं है।

और मंजु को वैसा स्वाद मिला है। उसकी आंखों में, उसके भाव में, उसके हृदय में उस स्वाद की तरंगें मैंने देखीं हैं, मैं आश्वस्त हूं।

आज इतना ही।